https://archive.org/details/bk1332/page/n0/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

All Items on https://archive.org/details/realpatidar

Full Library on https://realpatidar.com/library

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.5

1

ओ३म्

र्म और दर्शन

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n1/mode/1up

Real Patidar Library

https://www.realpatidar.com/library

This book/literature/article/material may be used for research, teaching, and private study purposes. Any substantial or systematic reproduction, redistribution, reselling, loan, sub-licensing, systematic supply, or distribution in any form to anyone is expressly forbidden.

The library does not give any warranty express or implied or make any representation that the contents will be complete or accurate or up to date. The library shall not be liable for any loss, actions, claims, proceedings, demand, or costs or damages whatsoever or howsoever caused arising directly or indirectly in connection with or arising out of the use of this material.

Full terms and conditions of use: http://www.realpatidar.com

About Real Patidar books

Real Patidar's mission is to organize the information on Satpanth religion, which is a Nizari Ismaili sect of Shia branch of Islam, and to make it universally accessible and useful. Real Patidar Books helps readers discover the material on Satpanth online while helping authors and researchers in their studies. You can know more by visiting http://www.realpatidar.com

You can resize and move this box in any PDF Application like Adobe Acrobat Reader.

Use the Bookmarks facility in the PDF to directly go to the pages containing Highlights.

For Reference See Pages: 184, 185.
For page numbers, see the page footer. Page numbers are in 'Page x of y' format

References by: RealPatidar.com - Created using: step2-QR-and-3-RM-v18.py

https://archive.org/details/bk1332/page/n2/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

Digitally signed by realpatidar.com
DN: cn=realpatidar.com, c=IN, o=realpatidar.com, email=mail@realpatidar.com
Reason: I have reviewed this document
Date: 2026.02.23 13:29:46 +05'30'

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.5
1

ओ३म्

...ग और दर्शन

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n3/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n4/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी....... पु०सं०...1665... भारती पुस्तकालय

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n5/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-खण्ड

योगशास्त्र

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n6/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान ... पुस्तक० 1664 ... भारती पुस्तकालय

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n7/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n8/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1664

वक्तव्य

भारतीय धर्म तथा दर्शन के जिज्ञासुओं के सामने यह पुस्तक प्रस्तुत करते समय लेखक को विशेष हर्ष हो रहा है। यह पुस्तक आज से लगभग पन्द्रह साल पहिले छपी थी। थोड़े ही दिनों में वह संस्करण समाप्त हो गया। तब से इसकी माँग निरन्तर होने पर भी अनेक कारणों से यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी।

भारतीय संस्कृति धर्म के पीठ पर प्रतिष्ठित है। धर्म सामान्य कर्मकाण्ड का प्रतीक न होकर महनीय तत्त्वों के आधार पर अवलम्बित है। भारत धर्मप्राण देश है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि हिन्दी में धर्मविषयक ग्रन्थों का नितान्त अभाव है जो उसके नाना रूपों तथा विभिन्न तथ्यों का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करें। इसी अभाव की आंशिक पूर्ति के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की जाती है। इसमें मेरे समय-समय पर लिखे गये लेखों का संग्रह है। इन सब लेखों में एकसूत्रता है। वे भारतीय धर्म के विभिन्न रूपों के विषय में हैं जिनका जानना धर्म की सर्वांगीण जानकारी के लिए बहुत आवश्यक हैं।

ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं—(१) धर्म खण्ड (२) दर्शन खण्ड तथा (३) समन्वय खण्ड। धर्म-खण्ड के भीतर अनेक अवान्तर खण्ड हैं जिनके अन्तर्गत तत्सम्बद्ध लेख रखे गये हैं। लेखक की दृष्टि ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक है। और इसलिए पाठकों को दोनों प्रकार की व्याख्याओं से परिचय पाने का अवसर मिलेगा। दर्शन-खण्ड में विभिन्न दर्शनों से सम्बद्ध लेखों का चयन है। समन्वय खण्ड में दर्शनों में विद्यमान समन्वय का रूप प्रदर्शित किया गया है जिससे पाठकों को भारतीय दर्शन के विकाश में सोपान-प्रणाली का परिचय मिलेगा।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n9/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम अध्याय में धर्म का दर्शन के साथ सामंजस्य दिखलाया गया है कि किस प्रकार धर्म दर्शन का पूरक होता है, व्याघातक नहीं। सब लेख लेखक की रचनायें हैं। विषय की पूर्ति के लिए केवल एक लेख (प्रथम खण्ड का १६ वाँ लेख) 'कल्याण' से यहाँ साभार उद्धृत किया गया है।

मेरे 'भारतीय दर्शन' में धार्मिक सम्प्रदायों के वर्णन का अवसर न था। दर्शन के अन्य सिद्धान्तों का भी वर्णन अपेक्षाकृत न्यून था। इस ग्रन्थ में इस कमी की पूर्ति की गई है तथा 'धर्म और दर्शन' के अन्योन्य उपकार्योपकारक भाव को स्पष्टतः दिखलाया गया है। इस प्रकार इस को 'भारतीय दर्शन' का पूरक ग्रन्थ समझना चाहिए। अन्त में विश्वनाथ से प्रार्थना है कि भारतीय धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा तथा जिज्ञासा सन्तत जागरुक हो जिससे वे उसके तत्त्व को जानकर अपने जीवन को मंगलमय बनावें।

धर्मो रक्षति रक्षितः।

काशी
वैशाखी पूर्णिमा, सं २०१८

बलदेव उपाध्याय
३०—४—६१

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n10/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सं० 1664 भारती पुस्तकालय

विषयसूची

धर्म-खण्ड

वैदिक धर्म

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n11/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n12/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपी ...... पुस्तक 1664

धर्म और दर्शन

[वैदिक धर्म]

(१) वेद में देवता-तत्त्व

वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन के प्राण हैं। भारतीय धर्म में जो जीवनी शक्ति दृष्टिगोचर होती है उसका मूल कारण वेद ही है। वेद अक्षय विचारों का मानसरोवर है जहाँ से विचारधारा प्रवृत्त होकर भारतभूमि के मस्तिष्क को उर्वर बनाती हुई निरन्तर बहती है तथा अपनी सत्ता के लिए उसी उद्गमभूमि पर अवलम्बित रहती है। ये भारतीय साहित्य के ही सर्व-प्रथम ग्रन्थ नहीं हैं, प्रत्युत मानवमात्र के इतिहास में इनसे बढ़कर प्राचीन ग्रन्थ की अभी तक उपलब्धि नहीं हुई है। भारतीय धर्म तथा तत्त्वज्ञान की आकृति तथा प्रकृति, उद्गम तथा विकास के समुचित अनुसन्धान के लिए इन ग्रन्थमणियों का पर्यालोचन नितान्त आवश्यक है! परन्तु श्रुति-सम्मत दार्शनिक विचारों की रूप-रेखा के विषय में पर्याप्त मतभेद है। वेदों का अध्ययन आजकल दो प्रकार से किया जाता है—प्राचीन पद्धति से तथा अर्वाचीन पाश्चात्य रीति से। पाश्चात्य पद्धति वेदार्थ-परिशीलन के लिए अन्य देशों के साहित्य की सहायता की अपेक्षा रखती है। प्राचीन पद्धति इतिहास-

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n13/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण को वेदार्थ का उपबृंहण मानती है[1] तथा वैदिक रहस्यों के यथार्थ ज्ञान के लिए उनकी सहायता को बहुमूल्य बतलाती है। इसी दृष्टिभेद की मीमांसा उभयमत में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है। पाश्चात्य वर्ग वेदों को असभ्य या अर्धसभ्य आरम्भिक आर्यजनों के अनगढ़ गायनों से बढ़कर महत्त्व देना नहीं चाहता, परन्तु भारतीय कल्पना के अनुसार वेद नित्य हैं, निखिल ज्ञान के अमूल्य भाण्डागार हैं, धर्म को साक्षात्कार करनेवाले महर्षियों के द्वारा अनुभूत परमतत्त्व के परिचायक हैं। इष्ट-प्राप्ति तथा अनिष्ट-परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाले ग्रन्थ वेद ही हैं[2]। वेद की 'वेदता' इसी में है कि वे प्रत्यक्ष से अगम्य तथा अनुमान के द्वारा अनुद्भावित-अलौकिक उपाय का बोध कराते हैं[3]।

वेदों में देवतास्तुति ही प्रधान विषय है। निरुक्तकार यास्क ने स्थान विभाग की दृष्टि से देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—पृथ्वीस्थान, अन्तरिक्षस्थान, तथा द्युस्थान। पृथ्वीस्थान देवताओं में अग्नि का स्थान सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है, अन्तरिक्षस्थान देवताओं में इन्द्र का तथा आकाशस्थान देवताओं में सूर्य, सविता, विष्णु आदि सौर देवताओं का। अग्नि प्राणियों का सबसे अधिक हितकारक देवता है। अग्नि प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों के द्वारा स्तुति किया जाता है। उसकी ही कृपा से दिन प्रतिदिन प्राणी धन, अन्न, पुत्र, पौत्र तथा समृद्धि प्राप्त करता है। वरुण का स्थान वैदिक देवताओं में नितान्त

---

१ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥
—महाभारत (आदिपर्व १।२६८)

२ द्रष्टव्य सायणकृत तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका पृ० २.

३ श्रुतिश्च नः प्रमाणमतीन्द्रियार्थविज्ञानोत्पत्तौ।
—शाङ्करभाष्य २।३।१

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n14/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान पु० सं० 1669 भारती पुस्तकालय

महत्त्वपूर्ण है। वह विश्वतश्चक्षुः (सर्वत्र दृष्टि रखनेवाला), धृतव्रत (नियमों को धारण करनेवाला), सुक्रतु (शोभन कर्मों का निष्पादन करनेवाला) तथा सम्राट् (सम्यक्रूप से प्रकाशित होनेवाला तथा शासन करनेवाला) कहा गया है[1]। सर्वज्ञ वरुण प्राणीमात्र के शुभा-शुभ कर्मों का द्रष्टा तथा तत्तत् फलों का दाता है। इन्द्र[2] वीर योद्धाओं को संग्रामाङ्गण में विजय प्रदान करनेवाले देवता हैं। वज्रबाहु (वज्र के समान बलशाली बाहुवाले) इन्द्र के हाथ में वज्र है, जिसकी सहायता से वह वृत्रादि अनेक दानवों को मार डालते हैं तथा शत्रुओं के किलाबन्द नगरों को छिन्न भिन्न कर डालते हैं (पुरन्दर)। इन्हीं के अनुग्रह से आर्यों ने काले रंगवाले दास्युओं या दासों को पहाड़ियों में खदेड़ दिया है तथा वृत्र के द्वारा रोकी गई गायों को वे गुफा तोड़-कर निकाल बाहर करते हैं। इन्द्र वृष्टि के देवता हैं। विष्णु आकाश-गामी सन्तत क्रियाशील सूर्य के प्रतीक हैं। उन्होंने तीन डगों से इस विश्व को नाप डाला है[3]। इस कारण वे 'उरुगाय' तथा 'उरुक्रम' कहलाते हैं। तीसरे लोक में जहाँ उनका तृतीय पाद-विन्यास किया गया है मधु का कूप है। उस लोक में शीघ्रगामिनी भूरिश्रृङ्ग गायें (किरणें) इधर से उधर सतत आया जाया करती हैं। (यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः—ऋ० वे० १।१५४।६)[4] सवितृ देव सुप्त प्राणियों में जीवन

१ ऋग्वेद—१ मण्डल २५ सूक्त।

२ ऋग्वेद—२ मण्डल १२ सूक्त।

३ यही कल्पना वामनावतार की कल्पना की जननी है। इसी कारण वामन 'त्रिविक्रम' कहे जाते हैं। पुराणों में 'उरुगाय' तथा 'उरुक्रम' शब्दों का हरि के लिए प्रयोग इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर किया गया है।

४ वैष्णवों के गोलोक की कल्पना का आधार यही मंत्र है। भगवान् के परम पद का नाम 'गो लोक' है अर्थात् वह लोक जहाँ सूर्य की किरणों का निरवच्छिन्न तथा अनवरत प्रसार हो। द्रष्टव्य बृहद्ब्रह्मसंहिता ३।१।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n15/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संचार कर पुनः प्रवृत्त करते हैं। पूषा (ऋ० वे० ६।५३) भूले भटकों को राह लगाते हैं। उनका रथ बकरों के द्वारा खींचा जाता है तथा उनके हाथ में चाबुक रहता है। यह मृत प्राणियों को पितरों के पास ले जाते हैं। 'मित्र' मानवमात्र का कल्याण साधन करते हैं। देवों के साथ साथ देवियों की भी कमनीय कल्पना ऋग्वेद में पाई जाती है। सब से सुन्दर देवी उषा है जो द्यौः (आकाश) की पुत्री हैं। वह तमोमयी रजनी की रमणीय रूपधारिणी भगिनी है। वह पुराणी युवति हैं—पुरानी होने पर भी सतत युवति है। वैदिक मन्त्रों में सब से सुन्दर कमनीय कल्पना वाले मंत्र उषा की स्तुति में प्रयुक्त किये गये हैं (ऋ० वे० ३।६१)। आगे चलकर देवताओं की संख्या में भी वृद्धि-ह्रास होता रहा। वरुण की महिमा में ह्रास होने लगा, और मन्यु, श्रद्धा आदि नये २ देवताओं की सृष्टि होने लगी।

इन देवताओं के स्वरूप का विवेचन करना नितान्त आवश्यक है। प्रकृति की विचित्र लीलायें मानवमात्र के दिन-प्रतिदिन के अनुभव के विषय हैं। इस पृथ्वीतल पर जन्म-ग्रहण के समय से ही मनुष्य अपने को कौतुकावह प्राकृतिक दृश्यों से चारों ओर घिरा हुआ पाता है। प्रातःकाल प्राची-दिशा में कमनीय किरणों को छिटकाकर भूतल को कांचन-रञ्जित बनाने वाला अग्निपुञ्जमय सूर्यबिम्ब तथा सायंकाल में रजत रश्मियों को बिखेर कर जगत् मण्डल को शीतलता के समुद्र में गोता लगाने वाले सुधाकर का बिम्ब किस मनुष्य के हृदय में कौतुक-मय विस्मय उत्पन्न नहीं करते ? वर्षाकालीन नील गगनमण्डल में काले काले विचित्र बलाहकों की दौड़, उनके पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न कौंधने वाली बिजुली की लपक तथा कर्ण कुहरों को बधिर बना देनेवाले गर्जन की गड़गड़ाहट आदि प्राकृतिक दृश्य मनुष्य मात्र के हृदय पर एक विचित्र प्रभाव जमाये बिना नहीं रह सकते ? वैदिक आर्यों ने इन प्राकृतिक लीलाओं को सुगमतया समझाने के लिए भिन्न-भिन्न

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n16/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1864

देवताओं की कल्पना की है। यह विश्व भिन्न-भिन्न देवताओं का क्रीड़ा-निकेतन है। वैदिक आर्यों का विश्वास है कि इन्हीं देवताओं के अनुग्रह से जगत् का समस्त कार्य संचालित होता है तथा भिन्न-भिन्न प्राकृतिक घटनायें उनके ही कारण सम्पन्न होती हैं। पाश्चात्य वैदिक विद्वानों की वैदिक देवताओं के विषय में यही धारणा है कि वे भौतिक जगत् के प्राकृतिक दृश्यों के — अधिष्ठाता हैं। भौतिक घटनाओं की उपपत्ति के लिए उन्हें देवता मान लिया गया है। ऋग्वेद के आदिम काल में बहुत देवताओं की सत्ता मानी जाती थी जिसे वे पॉलीथीजम (बहुदेववाद) को संज्ञा देते हैं। कालान्तर में जब वैदिक आर्यों का मानसिक विकास हुआ तब उन्होंने इन बहु देवताओं के अधिपति या प्रधान रूप में एक देवता विशेष की कल्पना की। इसी का नाम है—मॉनोथीजम (एकेश्वर-वाद)[1]। अतः बहुदेवतावाद के बहुत काल के पीछे एकदेववाद का जन्म हुआ और उसके भी अवान्तरकाल में सर्वेश्वरवाद (पैनूथीजम) की कल्पना की गई। सर्वेश्वरवाद का सूचक पुरुषसूक्त दशम मण्डल का ९० वाँ सूक्त है जो पाश्चात्य गणना के हिसाब से दशतयी के मण्डलों में सबसे अधिक अर्वाचीन है।

पश्चिमी विद्वानों की सम्मति में वैदिक देवतावाद की उत्पत्ति तथा विकास का यही संक्षिप्त क्रम है, परन्तु हमारी यह दृढ़ धारणा है कि वैदिक धर्म का यह विकासक्रम नितान्त निराधार है, देवतातत्त्व के न जानने का ही यह परिणाम है। वैदिक ग्रंथों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि देवता की कल्पना इतनी भौतिक न थी जितनी वे लोग बतलाते हैं।

यास्क ने निरुक्त दैवत-काण्ड (सप्तम अध्याय) में देवता के

१ मैकडोनल—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ११६-१३८।
Macdonell : History of Sanskrit Literature.

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n17/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप का विवेचन बड़े ही स्पष्ट शब्दों में किया है। इस जगत् के मूल में एक ही महत्त्वशालिनी शक्ति विद्यमान है जो निरतिशय ऐश्वर्यशालिनी होने से ईश्वर कहलाती है। वह एक, अद्वितीय है। उसी एक देवता की बहुत रूपों से स्तुति की जाती है—

माहाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ॥ (७।४।८,९)

अतः यास्क की सम्मति में देवतागण एक ही देवता की भिन्न-भिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं। बृहद्देवता निरुक्त के कथन का अनुमोदन करती है।[1] परन्तु पिछले साहित्य के निरीक्षण की आवश्यकता नहीं, ऋग्वेद के अध्ययन से ही देवतातत्त्व का रहस्य हम भलीभाँति समझ सकते हैं।

सर्वव्यापी सर्वात्मक ब्रह्मसत्ता का निरूपण करना ही ऋग्वेद का प्रधान लक्ष्य है। यही 'कारणसत्ता' कार्यवर्गों में अनुप्रविष्ट होकर सर्वत्र भिन्न-भिन्न आकारों से परिलक्षित हो रही है। प्रकृति की कार्यावली के मूल में एक ही सत्ता है, एक ही नियन्ता है, एक ही देवता वर्तमान है; अन्य सकल देवता इसी मूलभूत सत्ता के विकाशमात्र हैं। इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न प्रकारों से वैदिक ऋषियों ने किया है। ऐतरेय आरण्यक ने[2] स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि "एक ही महती सत्ता की उपासना ऋग्वेदी लोग 'उक्थ' में किया करते हैं, उसी को यजुर्वेदी लोग याज्ञिक अग्नि के रूप में उपासना किया करते हैं तथा सामवेदी लोग 'महाव्रत' नामक याग में उसी की उपासना किया करते हैं"। शंकराचार्य ने (१।१।२५ सूत्र

१ बृहद्देवता—अध्याय १, श्लोक ६१—६५,

२ एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नावध्वर्यव एतं महाव्रते छन्दोगाः—ऐतरेय आरण्यक— ३।२।३।१२

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n18/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1664

के भाष्य में) इस मंत्र का उल्लेख किया है। ऋग्वेद का प्रमाण इस विषय में नितान्त सुस्पष्ट है।

देवतागण को ऋग्वेद में 'असुर' कहा गया है[1]। असुर' का अर्थ है असुविशिष्ट अथवा प्राणशक्ति-सम्पन्न। इन्द्र, वरुण, सविता, उषा आदि देवता असुर हैं। देवताओं को बल-स्वरूप कहा गया है। देवतागण अविनश्वर शक्ति मात्र हैं। वे आतस्थिवांसः (स्थिर रहनेवाले), अनन्तासः (अनन्त), अजिरासः, उरवः विश्वातस्परि (५।४।१२) कहे गये हैं। वे विश्व के समस्त प्राणियों को व्याप्त कर स्थित रहते हैं। उनके लिए 'सत्य' 'ध्रुव' 'नित्य' प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया गया उपलब्ध होता है। इतना ही नहीं, एक समस्त सूक्त (ऋ० वे० तृतीय मण्डल ५५ वाँ सूक्त) में देवताओं का 'असुरत्व' एक ही माना गया है। 'असुरत्व' का अर्थ है बल या सामर्थ्य। देवताओं के भीतर विद्यमान सामर्थ्य एक ही है, भिन्न-भिन्न, स्वतन्त्र, नहीं है। इस सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में यही पद बार-बार आता है—महद् देवानामसुरत्वमेकम्=देवों का महत् सामर्थ्य एक ही है। एक ही महामहिमशालिनी शक्ति के विकसित रूप होने से उनकी शक्ति स्वतन्त्र नहीं है, प्रत्युत उनके भीतर विद्यमान शक्ति एक ही है। "जीर्ण ओषधियों में, नवीन उत्पन्न होनेवाली ओषधियों में, पल्लव तथा पुष्प से सुशोभित औषधियों में तथा गर्भ धारण करनेवाली औषधियों में एक ही शक्ति विद्यमान रहती है। देवों का महत् सामर्थ्य वस्तुतः एक ही है"।

ऋग्वेद में 'ऋत' की बड़ी मनोरम कल्पना है। ऋत का अर्थ है सत्य, अविनाशी सत्ता। इस जगत् में 'ऋत' के कारण ही सृष्टि की

---

१ तद् देवस्य सवितुः असुरस्य प्रचेतसः (४।५३।१)
(पर्जन्यः) असुरः पिता नः (५।८३।६)
महद् विष्णोः (इन्द्रस्य) असुरस्य नामा (३।३८।४)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n19/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्ति होती है[1]। सृष्टि के आदि में 'ऋत' ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ[2]। विश्व में सुव्यवस्था, प्रतिष्ठा, नियमन का कारणभूत तत्त्व यही 'ऋत' ही है। इस 'ऋत' की सत्ता के कारण ही विषमता के स्थान पर समता का, अशान्ति की जगह शान्ति का, साम्राज्य विराजमान है। इस सुव्यवस्था का कारण क्या है? 'ऋत' अर्थात् सत्यभूत ब्रह्म। देवतागण भी ऋत के स्वरूप हैं या ऋत से उत्पन्न हुए हैं। सोम ऋत के द्वारा उत्पन्न (ऋतजात) तथा वर्धित होते हैं, वे स्वयं ऋत रूप हैं (ऋग्वेद ६।१०८।८)। सूर्य ऋत का ही विस्तार करते हैं तथा नदियाँ इसी ऋत को वहन करती हैं[3] (ऋ० वे० १।१०५।१२)। सकल देवताओं के भीतर सकल कार्यों के अन्तर में यही ऋत या कारण-सत्ता अनुप्रविष्ट है। इसी सत्ता का अवलम्बन कर कार्य-वर्ग अपनी स्थिति बनाये हुए हैं।

ऋग्वेद में देवताओं के द्विविध रूप का वर्णन मिलता है—एक तो स्थूल दृश्य रूप है और दूसरा सूक्ष्म अदृश्य गूढ़ रूप है। उनका जो रूप हमारे नेत्रों के सामने आता है वह है उनका स्थूल रूप (या आधिभौतिक रूप), परन्तु जो रूप हमारी इन्द्रियों से अतीत हैं, भौतिक इन्द्रियों में जिसे ग्रहण करने की शक्ति नहीं है वह है उनका गूढ़रूप (आधिदैविक रूप)। इनसे अतिरिक्त एक तृतीय प्रकार—आध्यात्मिक रूप—का भी परिचय किन्हीं मन्त्रों में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए विष्णु, सूर्य तथा अग्नि के द्विविध रूप की समीक्षा कीजिए। जिस रूप में विष्णु ने पार्थिव लोकों का निर्माण किया, 'उत्तर सधस्थ' अन्तरिक्ष को स्थिर किया तथा तीन क्रमों से इस

१. द्रष्टव्य ऋ० वे० ३।५५।५
२. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ऋ० वे० १०।१९०।१।
३. ऋतमर्षन्ति सिन्धवः।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n20/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व को माप डाला, वह उनका एक रूप है[1], परन्तु इससे अतिरिक्त उनका 'परम पद' है जहाँ विष्णु का सूक्ष्म रूप निवास करता है। उस लोक में विष्णु के भक्त लोग अमृत पान करते हुए आनन्दानुभव किया करते हैं। उसमें मधुचक्र हैं—अमृतकूप है[2]। उस परमपद को ज्ञान-सम्पन्न जागरणशील विप्रलोग विद्वज्जन ही—जानते हैं[3]। विष्णु के परमपद की प्राप्ति ब्रह्म की ही उपलब्धि है। इसीलिए श्रुति विष्णु को हमारा सच्चा बन्धु बतलाती है।

इसी प्रकार सूर्य के त्रिविध रूपों का नितान्त स्पष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। ऋषि अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के तीन रूपों का वर्णन करते हैं—उत्, उत्+तर=उत्तर, उत्+तम=उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्य में बढ़कर है। सूर्य की उस ज्योति का नाम 'उत्' है जो इस भुवन के अन्धकार के अपनयन में समर्थ होती है। देवों के मध्य में जो देव-रूप से निवास करती है वह 'उत्तर' है, परन्तु इन दोनों से बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है, उसकी संज्ञा इस मंत्र में 'उत्तम' है। अतः ये तीनों शब्द सूर्य के कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्य-कारण से अतीत अवस्था के द्योतक हैं। अतः इस एक ही मन्त्र में सूर्य के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है[4]। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

---

१. ऋ० वे० १।१५४।१

२. „ „ „ ।५

३. तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ ऋ० वे० १।२२।२१।

४. उद् वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
—ऋ० वे० १।२०।१०.

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n21/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जंगम तथा स्थावर समस्त विश्व का आत्मा सूर्य है) इस मंत्र का लक्ष्य क्या आधिभौतिक सूर्य है ? 'आत्म' शब्द स्पष्टतः सूर्य के परमात्म-तत्त्व को लक्ष्य कर प्रयुक्त किया गया है ।

अग्नि के इसी प्रकार स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों की मनोरम कल्पना ऋग्वेद में मिलती है । ऐतरेय आरण्यक का कहना है कि अग्नि दो प्रकार का होता है—(१) तिरोहित अग्नि और (२) पुरोहित अग्नि । 'तिरोहित' शब्द अग्नि के अव्यक्त, गूढ़ तथा सूक्ष्म रूप का परिचायक है । अतः पुरोहित अग्नि व्यक्त, पार्थिव अग्नि का प्रतिपादक है । 'अग्निमीडे पुरोहितम्' मन्त्र में पुरोहित अर्थात् अभिव्यक्त, पार्थिव अग्नि की सत्ता का निर्देश किया गया है[1] ।

इन प्रमाणों के आधार पर हम निःसन्देह कह सकते हैं कि देवताओं की जो भौतिक दृश्यों के अधिष्ठाता या प्रतीक रूप में पाश्चात्य कल्पना है वह निर्मूलक है तथा उसी के साथ वैदिकधर्म के विकास का कल्पित क्रम भी उतना ही निःसार है । सच बात तो यह है कि ऋग्वेद इस विश्व के अनुपम शक्तिशाली एक नियन्ता से परिचित है तथा वह विभिन्न देवताओं को उसी की नाना शक्तियों का प्रतिनिधि बतलाता है । अतः वैदिक धर्म ही अद्वैत-तत्त्व के ऊपर अवलम्बित है । **नाना** के बीच में एकता की भावना, भिन्नता के बीच **अभिन्नता** की कल्पना दार्शनिक जगत् में एकदम मौलिक तत्त्व है और इस निगूढ़तम तत्त्व के अनुसन्धान करने का समस्त गौरव हमारे वैदिक-कालीन आर्षचक्षुःसम्पन्न महर्षियों को ही है ।

———

१. देवतातत्त्व के विशद विवेचन के लिये देखिए कोकिलेश्वर शास्त्री—अद्वैतवाद (बँगला), पञ्चम अध्याय ।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n22/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) रुद्र का वैदिक स्वरूप

शिव की महत्ता के उदय होने का इतिहास बड़ा मनोरम है। पौराणिक काल में तथा आजकल रुद्र को जितना महत्त्व तथा प्राधान्य प्राप्त है उतना वैदिक काल में न था। आजकल विष्णु के साथ शिव ही हम हिन्दुओं के प्रधान देवता हैं, परन्तु इस प्रधानता का क्रमिक विकास धीरे धीरे अनेक शताब्दियों में सम्पन्न हुआ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अध्ययन करने से रुद्र के विषय में अनेक ज्ञातव्य वातों का पता लगाया जा सकता है। ऋग्वेद में केवल तीन सूक्त—प्रथम मण्डल का ११४वाँ सूक्त, २मण्डल का ३३वाँ सूक्त तथा ७ मण्डल का ४६वाँ सूक्त—रुद्र देवता के विषय में उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ इनका नाम लगभग ५० बार आता है। ऋग्वेद में रुद्र का स्थान अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवताओं की अपेक्षा बहुत ही कम महत्त्व का है, परन्तु यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रुद्र का स्थान बहुत कुछ महत्त्व-संवलित है। यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही इनकी स्तुति में प्रयुक्त किया गया है। यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है। तैत्तिरीय संहिता का १६ वाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है। अथर्ववेद के ११ कान्ड के द्वितीय सूक्त में रुद्रदेव की स्तुति की गई है।

ऋग्वेद में रुद्र का स्वरूप इस प्रकार का वर्णित है : रुद्र के हाथ तथा बाहु हैं (ऋ० २।३३।०)। उनका शरीर अत्यन्त बलिष्ठ है। उनके ओठ अत्यन्त सुन्दर हैं (सुशिप्रः) उनके मस्तक पर बालों का एक जटाजूट है जिसके कारण वे 'कपर्दी' कहलाते हैं (ऋ० १।११४।१)। उनका रंग भूरा है (बभ्रु) तथा आकृति देदीप्यमान है। वे नानारूप

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n23/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करनेवाले हैं (पुरुरूपः) तथा उनके स्थिर अङ्ग चमकनेवाले सोने के गहनों से विभूषित हैं। वे रथ पर सवार होते हैं। यजुर्वेद के रुद्राध्याय में तथा अथर्व के रुद्रसूक्त में उनके स्वरूप का इससे कहीं अधिक विशद वर्णन उपलब्ध होता है। रुद्र के मुख, चक्षु, त्वच्, अङ्ग, उदर, जिह्वा, तथा दाँतों का उल्लेख किया गया है (अथर्व ११ काण्ड २ सूक्त ५-६ मन्त्र)। उनके सहस्र नेत्र हैं (सहस्राक्षः)। उनकी गर्दन का रंग नीला है (नीलग्रीवः), परन्तु उनका कण्ठ उज्ज्वल रंग का है (शितिकण्ठः)[1] उनके माथे पर जटाजूट का वर्णन भी है, साथ ही साथ कभी कभी वे मुण्डित केश (व्युप्तकेश शु० यु० १६।२९) भी कहे गए हैं। उनके केश लाल रंग या नीले रंग के हैं (हरिकेशः)। वे माथे पर पगड़ी पहननेवाले हैं (उष्णीषी यजु० १६।२२) रंग उनके शरीर का कपिल है (बभ्लुशः १६।१८)।

रुद्राध्याय के अनुसार रुद्र एक बलवान् सुसज्जित योद्धा के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके हाथ में धनुष तथा बाण हैं। उनके धनुष का नाम 'पिनाक' है (शु० यजुर्वेद १६।५१)। उनका धनुष सोने का बना हुआ, हजारों आदमियों को मारनेवाला, सैकड़ों बाणों से सुशोभित तथा मयूरपिच्छ से विभूषित बतलाया गया है (धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्मयं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम्—अ० ११।२।१२) बाणों के रखने के लिये वे तरकस (इषुधि) धारण करते हैं जो संख्या में सौ हैं। उनके हाथ में तलवार भी चमकती रहती है (निषङ्गी) तथा इस तलवार के रखने के लिये उनके पास स्थान (निषङ्गधि) है। वे वज्र भी धारण करते हैं। वज्र का नाम सृक है (शु० य० १६।२१)। शरीर की रक्षा करने के लिये वे अनेक साधनों को पहने हुए हैं। माथे की रक्षा करने के लिये वे शिरस्त्राण धारण करते हैं (बिल्मी शु० य०

---

१. नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च—शु० य० १६।२८

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n24/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६।३५) और देह के बचाव के वास्ते कवच तथा वर्म पहने हुए हैं। महीधर की टीका के अनुसार वर्म कवच से भिन्न होता था[1]। कवच कपड़ों का सिला हुआ 'अँगरखा' के ढंग का कोई पहनावा था। वर्म खासा लोहे का बना हुआ जिरहबख्तर था। कवच के ऊपर वर्म पहना जाता था। रुद्र शरीर पर चर्म का कपड़ा पहनते हैं (कृत्तिं वसानः—शु० य० १६।५१)। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस तरह रथ पर चढ़कर धनुर्बाण से सुसज्जित योद्धा रणाङ्गण में शत्रुओं के संहार के लिये जाता है, उसी भाँति रुद्र सिर पर बिल्म तथा देह पर कवच और वर्म पहनकर रथ पर आसन मार धनुष पर बाण चढ़ाकर अपने भक्तों के वैरियों को मारने के लिये मैदान में उतरते हैं। वे धनुष पर बाण हमेशा चढ़ाए रहते हैं। इसीलिए उनका नाम है—आततायी। इनके अस्त्र-शस्त्र इतने भयानक हैं कि ऋषि इनसे बचने के लिये सदा प्रार्थना किया करते हैं—

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवान् उत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥
—शु० य० १६।१०

रुद्र का शरीर नितान्त बलशाली है। ऋग्वेद में वे क्रूर बतलाए गए हैं। वे स्वर्गलोक के रक्तवर्ण (अरुप) वराह हैं (ऋ० १।११४।५)। वे सबसे श्रेष्ठ वृषभ हैं; वे तरुण हैं और उनका तारुण्य सदा टिकनेवाला है; वे शूरों के अधिपति हैं और अपने सामर्थ्य से वे पर्वतों में टिकी हुई नदियों में बल का प्रवाह उत्पन्न कर देते हैं। उन्हें न माननेवाले मनुष्यों को वे अवश्य अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर देते हैं, परन्तु अपने उपासक मनुष्यों के लिये वे अत्यन्त उपकारी हैं। इसीलिए वे

---

१. पटस्यूतं कर्पासगर्भं देहरक्षकं कवचम्। लोहमयं शरीररक्षकं वर्म।
—शु० य० १६।३५ पर महीधरभाष्य।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n25/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शिव' नाम से भी पुकारे जाते हैं। उनके सम्बन्धियों का परिचय मन्त्रों के अध्ययन से चलता है। रुद्र मरुतों के पिता हैं (ऋ० १।११४।६)। यही कारण है कि अनेक मन्त्रों में मरुत् तथा रुद्र की स्तुति एक साथ की गई मिलती है। मरुतों के 'रुद्रिय' संज्ञा पाने का यही रहस्य है। रुद्र के मरुतों के पिता होने के विषय में षड्गुरु-शिष्य ने 'सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थदीपिका' में रोचक आख्यान दिया है। इसी प्रसङ्ग को लेकर चा द्विवेद ने 'नीतिमञ्जरी' में यह उपदेश निकाला है—

दृष्ट्वा परव्यथां सन्त उपकुर्वन्ति लीलया।
दितेर्गर्भव्यथां हत्वा रुद्रोऽभून्मरुतां पिता॥

पिछले ग्रन्थों में रुद्र के लिये 'त्र्यम्बक' शब्द का व्यवहार प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस 'त्र्यम्बक' का प्रयोग ऋग्वेद के केवल एक ही मन्त्र में किया गया है जो शुक्ल यजुर्वेद (अ० ३, ६० मं०) में भी उद्धृत पाया जाता है। रुद्र का स्तुतिपरक यह मन्त्र नितान्त प्रसिद्ध है:—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

—ऋ० ७।५९।१२

'त्र्यम्बक' शब्द का अर्थ समस्त भाष्यकारों ने 'तीन नेत्र वाला' किया है, परन्तु पाश्चात्य विद्वानों को इस अर्थ में आस्था नहीं है। वे यहाँ 'अम्बक' शब्द को जननी वाचक मानकर रुद्र को तीन मातावाला बतलाते हैं, परन्तु यह स्पष्टतः प्रतीत नहीं होता कि रुद्र की ये तीन मातायें कौन सी थीं। वैदिक काल के अनन्तर रुद्र की पत्नी के लिये प्रयुक्त 'अम्बिका' शब्द का प्रथम प्रयोग वाजसनेयी संहिता (३।५७) में आता है, परन्तु इतना अन्तर अवश्य है कि यह उनकी पत्नी का नाम न होकर उनकी भगिनी का नाम बतलाया गया है—एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया, तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः (शु० य० ३।५७)। इनकी पत्नी के अन्य नाम वैदिक ग्रन्थों में मिलते

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n26/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। 'पार्वती' शब्द तैत्तिरीय आरण्यक में और 'उमा हैमवती' शब्द केनोपनिषद् में प्रयुक्त हैं।

इस प्रकार ऋग्वेदीय देवमण्डली में रुद्र का स्थान नितान्त नगण्य-सा प्रतीत होता है, परन्तु अन्य संहिताओं में इनका महत्त्व बढ़ता-सा दीख पड़ता है। रुद्राध्याय में रुद्र के लिये भव, शर्व, पशुपति, उग्र, भीम शब्दों का प्रयोग ही नहीं मिलता, प्रत्युत हर एक दशा में वर्तमान प्राणियों के ऊपर इनका अधिकार जागरूक रहता है। विश्व में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, चाहे वह स्वर्लोक में, अन्तरिक्ष में, भूतल के ऊपर या भूतल के नीचे हो, जहाँ भगवान् रुद्र का आधिपत्य न हो। यह समस्त विश्व सहस्रों रुद्रों की सत्ता से ओतप्रोत है। रुद्र जगत् के समग्र पदार्थों के स्वामी हैं। वे अन्नों के, खेतों के, वनों के अधिपति हैं। साथ ही साथ चोर, डाकू, ठग आदि जघन्य जीवों के भी वे स्वामी हैं। अथर्ववेद में रुद्र के नामों में भव, शर्व, पशुपति तथा भूतपति उल्लिखित हैं (११।२।१) पशुपति का तात्पर्य इतना ही नहीं है कि गाय आदि जानवरों के ही ऊपर उनका अधिकार चलता है, प्रत्युत 'पशु' के अन्तर्गत मनुष्यों की भी गणना अथर्ववेद को मान्य है :—

तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः (अ० ११।२।६)

इस प्रकार 'पशु' के तांत्रिक अर्थ का आभास हमें अथर्व के इस मन्त्र में सर्वप्रथम मिलता है। जिसमें समग्र भुवन निवास करते हैं वह नाना वस्तुओं को धारण करनेवाला विस्तृत ब्रह्माण्डरूपी कोश रुद्र की अपनी वस्तु है। रुद्र का निवास अग्नि में, जल में, औषधियों तथा लताओं में ही नहीं है, बल्कि उन्होंने इन समस्त भुवनों की रचना कर इन्हें सम्पन्न बनाया है—

यो अग्नौ रुद्रो य अप्स्वन्त
र्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n27/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य इमा विश्वाभुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥
—अथर्व ७।८३.

यह सुन्दर मन्त्र रुद्र की महिमा स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर रहा है। यह तो हुई यजुः और अथर्व संहिताओं की बात। ब्राह्मण काल में तो रुद्र का महत्त्व और भी बढ़ता ही चला गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के एक दो उल्लेखों से ही रुद्र की महनीयता की पर्याप्त सूचना मिलती है। ३।३।३३ में प्रजापति के उनकी कन्या के सहगमन का प्रसंग उठाकर रुद्र की उत्पत्ति की चर्चा की गई है वहाँ गौरव के खयाल से इनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, प्रत्युत 'एष देवोऽभवत्' कहकर संमाननीय शब्द ही व्यवहृत किया गया है। ऋग्वेद के एक विनियोग वाक्य में रुद्र का नाम प्रयुक्त किया गया है, वहाँ ऐतरेय की यह व्यवस्था है कि इस नाम को गौरव की दृष्टि से छोड़ देना चाहिए।

उपनिषदों में रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें भली भाँति मिलता है। छान्दोग्य (३।७।४), बृहदारण्यक (३।६।४), मैत्री (६।५) महानारायण (१३।२), नृसिंहतापनी (१।२), श्वेताश्वतर (३।२,४) आदि प्राचीन उपनिषदों में रुद्र के वैभव तथा प्रभाव का वर्णन उपलब्ध होता है। श्वेताश्वतर में रुद्र की एकता, जगन्निर्माण में निरपेक्षता, विश्व के आधिपत्य, महर्षित्व तथा देवताओं के उत्पादक तथा ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्पष्ट भाषा में किया गया है। 'एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः' (३।२),

'यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु' (३।४)

— आदि श्वेताश्वतर श्रुति के प्रसिद्ध मन्त्र इस विषय में प्रमाणरूप

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n28/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उद्धृत किए जा सकते हैं। अवान्तरकालीन उपनिषदों में अनेक का विषय रुद्र-शिव की प्रभुता, महनीयता, अद्वितीयता दर्शाना है। अतः अथर्वशिर, कठरुद्र, रुद्रहृदय, पाशुपतब्रह्म आदि शिवपरक उपनिषदों के नामोल्लेखमात्र से हमें यहाँ सन्तोष करना पड़ता है।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस रुद्र को ऋग्वेद तथा पिछली संहिताएँ 'उग्र' नाम से पुकारती हैं उस रुद्र का प्राकृतिक आधार क्या था ? प्रकृति के किस व्यक्त तथा दृश्य पदार्थ का निरीक्षण कर उसे 'रुद्र' की संज्ञा प्रदान की गई है। 'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति से इस समस्या के हल होने की तनिक भी सूचना नहीं मिलती। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सर्वत्र 'रुद्र' की व्युत्पत्ति 'रुद्' (रोना) धातु से निष्पन्न बतलाई गई है। शतपथ ब्राह्मण (६।१।३।८) में रुद्र की उत्पत्ति की मनोरम कहानी दी गई है कि प्रजापति ने जब सृष्टि करना आरम्भ किया तब एक कुमार का जन्म हुआ जो जनमते ही अपने नामकरण के लिये रोने लगा। नामकरण आगे किया गया अवश्य, परन्तु जन्म के समय ही रोदन-क्रिया के साथ सम्बद्ध होने के कारण उस कुमार का नाम 'रुद्र' रखा गया (यदरोदीत् तस्मात् रुद्रः)। बृहदारण्यक (३।६।४) में इसी प्रकार दशों इन्द्रियों तथा मन को एकादश रुद्र के रूप में ग्रहण किया गया है। इन्हें 'रुद्र'[1] कहने का तात्पर्य यही है कि जब ये शरीर छोड़कर बाहर निकल जाते हैं, तो मृतक के सगे सम्बन्धियों को रुलाते हैं (ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्ति अथ रोदयन्ति। तद् यद् रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति।) पाश्चात्य वेदानुशीली विद्वानों ने रुद्र के प्राकृतिक आधार को ढूँढ निकालने का विशेष परिश्रम किया है (इन सब मतों के लिये डा० ए० बी० कीथ का 'रिलिजन ऐण्ड फिलासफी

---

१. 'रुद्र' की अन्य व्युत्पत्तियों के लिये देखिए ऋ० १।११४।१ का सायण भाष्य।

२

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n29/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आफ् वेद' पृ० १४६–७ देखिए ।) डा० वेबर रुद्र को तूफ़ान का देवता मानते हैं । डा० हिलेब्रान्त की सम्मति में ये ग्रीष्मकाल के देवता हैं तथा किसी विशिष्ट नक्षत्र से भी इनका सम्बन्ध है । डा० आदेर के विचार में मृतात्माओं के प्रधान व्यक्ति को देवत्व का रूप प्रदान कर रुद्र मान लिया गया है, क्योंकि यह वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है कि मृतकों की आत्माएँ आँधी के साथ उड़कर ऊपर जाती हैं । डा० ओल्डेन-बर्ग इस मत में आस्था रखते हुए रुद्र का सम्बन्ध पर्वत तथा जङ्गल के साथ स्थापित करना श्रेयस्कर मानते हैं । रुद्र का सम्बन्ध पर्वत के साथ अवश्य है । उनकी पत्नी उमा हैमवती कही जाती हैं । अतः इस मत के लिये भी कुछ आधार हैं । परन्तु इन कथनों में कल्पना का विशेष उपयोग किया गया है । रुद्र के पूर्ववर्णित स्वरूप का पूरा सामञ्जस्य इन कथनों से कथमपि नहीं बैठता । इस विषय में प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री रुद्र के मौलिक तथ्य पर प्रकाश डालती है ।

वस्तुतः रुद्र अग्नि के ही प्रतीक हैं । अग्नि के दृश्य, भौतिक आधार पर रुद्र की कल्पना खड़ी की गई है । अग्नि की शिखा ऊपर उठती है । अतः रुद्र के ऊर्ध्व लिङ्ग की कल्पना की गई है । अग्नि वेदी पर जलते हैं । इसी कारण शिव जलधारी के बीच में रखे जाते हैं । अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है । इसलिये शिव के ऊपर जल से अभिषेक किया जाता है । शिव भक्तों के लिये भस्म धारण करने की प्रथा का भी स्वारस्य इसी सिद्धान्त के मानने से भलीभाँति हो जाता है । इस सिद्धान्त के पोषक वैदिक प्रमाणों पर अब ध्यान दीजिए । ऋग्वेद (२।१।६) ने 'त्वमग्ने रुद्रो' कहकर इस एकीकरण का संकेत मात्र किया है । अथर्व (७।८३) 'तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये' मन्त्र में इसी ओर इङ्गित करता है । शतपथ (३।१।२) ब्राह्मण का प्रमाण नितान्त स्पष्ट है । 'अग्निर्वै रुद्रः' अत्यन्त स्पष्ट भाषा में दोनों की एकता का प्रतिपादन कर रहा है । रुद्र की आठ मूर्तियाँ आठ भौतिक पदार्थों की प्रतिनिधि हैं । 'रुद्र'

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n30/mode/1up
1961 -Dharma Aur Darshan (1332)
realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि है; 'शर्व' जलरूप है; 'पशुपति' औषधि है, 'उग्र' वायु है; 'अशनि' विद्युत् है; 'भव' पर्जन्य है; 'महान् देव' (महादेव) चन्द्रमा है, 'ईशान' आदित्य है। शतपथ से पता चलता है कि रुद्र को प्राच्य लोग (पूरब के निवासी) 'शर्व' के नाम से तथा वाहीक (पश्चिम के निवासी) लोग 'भव' नाम से पुकारते थे, परन्तु ये सब वस्तुतः अग्नि के ही नाम हैं :—

अग्निर्वै स देवः। तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते। भव इति यथा वाहीकाः, पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति तान्यस्याशान्तान्येवेतराणि नामानि, अग्निरित्येव शान्ततमम्।

—शतपथ १।७।३।८

शुक्लयजुर्वेद (३९।८) में अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव, उग्र—ये सब एक ही देवता के पृथक् पृथक् नाम कहे गए हैं। शतपथ की व्याख्या के अनुसार 'अशनि' का अर्थ है विद्युत्। इस प्रकार यजुर्वेद के प्रमाण से स्पष्ट है कि पृथ्वीतल पर जो रुद्र देवता अग्निरूप से निवास करते हैं, आकाश में काले मेघों के बीच से चमकनेवाली विद्युत् के रूप में वे ही प्रकट होते हैं। अतः रुद्र को विद्युत् का अधिष्ठातृ देव मानना नितान्त उचित प्रतीत होता है। अथर्ववेद में एक स्थान पर (११।२।१७) रुद्र के संसार को लीलने के लिये जीभ लपलपाने का वर्णन मिलता है। मुझे जान पड़ता है कि 'जिह्वया ईयमानम्' शब्दों के द्वारा काले बलाहकों के बीच में कौंधनेवाली क्षण-क्षण में चमकनेवाली बिजुली की ओर स्पष्ट संकेत है। इसी को पुष्ट करनेवाली अथर्ववेदीय प्रार्थना है कि हे रुद्र, दिव्य अग्नि से हमें संसक्त न कीजिए। यह जो बिजुली दीख रही है उसे मेरे शिर पर न गिराकर कहीं अन्यत्र गिराइए—

मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम्। —अ० ११।२।२६

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n31/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विवेचन की सहायता से हम रुद्र के 'शिवत्व' को भली भाँति पहचान लेते हैं। वह भयानक पशु की भाँति उग्र तथा भयद अवश्य है, परन्तु साथ ही साथ वह अपने भक्तों को विपत्तियों से बचाता है तथा उनका मंगल साधन करता है। उसके रोग निवारण करने की शक्ति का अनेक बार उल्लेख आता है। उसके पास हजारों औषधें हैं जिनके द्वारा वह ज्वर (तक्मन्) तथा विष का निवारण करता है। वैद्यों में वह सबसे श्रेष्ठ वैद्य है (भिषक्-तमं त्वा भिषजां शृणोमि— ऋ० २।३३।४)। इस प्रसङ्ग में रुद्र के दो विशिष्ट विशेषण उपलब्ध होते हैं—जलाष (ठंढक पहुँचानेवाला), तथा जलाषभेषज (ठंढी दवाओं को रखनेवाला)।

क्व स्य ते रुद्र मृळयाकु-
र्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः। (ऋ० २।३३।७)

वस्तुतः अग्नि के दो रूप हैं—घोरातनु और अघोरातनु। अपने भयङ्कर घोर रूप से वह संसार के संहार करने में समर्थ होता है, परन्तु अघोर रूप में वही संसार के पालन में भी शक्तिमान् है। यदि अग्नि का निवास इस महीतल पर न हो, तो क्या एक क्षण के लिये भी प्राणियों में प्राण का संचार रह सकता है? विद्युत् में संहारकारिणी शक्ति का निवास अवश्य है, परन्तु वही विद्युत् भूतल पर प्रभूत जलवृष्टि का भी कारण बनती है और जीवों के जीवित रहने में मुख्य हेतु का रूप धारण करती है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रलय में भी सृष्टि के बीज निहित रहते हैं, संहार में भी उत्पत्ति का निदान अन्तर्हित रहता है। महाकवि कालिदास को अग्नि की संहारकारिणी शक्ति में भी उपादेयता दीख पड़ती है—

कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीज प्ररोह जननीं ज्वलनः करोति। (रघु० ९।८०)

अतः उग्ररूप के हेतु से जो देव 'रुद्र' हैं, वे ही जगत् के मंगल

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n32/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन करने के कारण 'शिव' हैं। जो रुद्र है, वही शिव है। रुद्र और शिव की अभिन्नता अवान्तर वैदिक ग्रन्थों में सुस्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित की गई है, परन्तु इस अभिन्नता की प्रथम सूचना ऋग्वेद में ही उपलब्ध होती है (२।३३।७)ऋग्वेदीय ऋषि गृत्समद के साथ साथ रुद्रदेव से हम भी प्रार्थना करते हैं कि रुद्र के बाण हम लोगों को स्पर्श न कर दूर से ही हट जायँ तथा हमारे पुत्र और सगे सम्बन्धियों के ऊपर उस दानशील की दया सतत बनी रहे :—

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ (ऋ० २।३३।१४)

---

(३) श्रीगणपतिरहस्य

१

आध्यात्मिक रहस्य

गणपतितत्त्व निरूपण करने के पहले ही गणेश के वैदिकत्व के विषय में सामान्य चर्चा कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त माना जाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से विकास सिद्धान्त के अनुसार प्रायः सब पौराणिक देवताओं का मूलरूप वेद में मिलता है। धीरे धीरे ये विकाश को प्राप्त होकर कुछ नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। गणेशजी भी वैदिक देवता हैं, परन्तु इनका नाम वेदों में गणेश न होकर 'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेद में 'ब्रह्मणस्पति' के नाम से अनेक सूक्तों में अभिहित किये गये हैं उन्हीं देवता का नाम पीछे पुराणों में 'गणेश'

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n33/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपति की ही स्तुति में है—

"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ
नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥"

इसमें आप 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। ब्रह्मन् शब्द का अर्थ वाक्—वाणी—है। अतः ब्रह्मणस्पति का अर्थ वाक्पति—वाचस्पति—वाणी का स्वामी हुआ। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में ब्रह्मणस्पति का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है—

"एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म, तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः।
वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः ॥"

'ज्येष्ठराज' शब्द जो पीछे गणपति के लिए प्रयुक्त किया गया मिलता है यहीं का है। इसका अर्थ है सब से ज्येष्ठ—सब से पहले उत्पन्न होनेवाले देवताओं के राजा—शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवों के अधिपतिमात्र हैं, परन्तु इन्द्र के भी प्रेरक होने से आप का नाम ज्येष्ठराज है। इस मन्त्र से गृत्समद ऋषि देवगणों के अधिपति, क्रान्तदर्शी—अतीत अनागत के भी द्रष्टा—कवियों के कवि, अनुपमेय कीर्तिसम्पन्न ज्येष्ठराज ब्रह्मणस्पति का आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे आवाहन मन्त्र को सुनते हुए आप अपनी रक्षा के साथ हमारे गृह में आकर निवास कीजिये। यह पूरा का पूरा सूक्त ब्रह्मणस्पति गणपति—की प्रशंसा में है। अन्य सूक्तों में भी आप की स्तुति मिलती है अत; गणेशजी को ब्रह्मणस्पति के रूप में वैदिक देवता होने में तनिक भी सन्देह नहीं। और भी एक बात है— गणेश के जिस विशिष्ट रूप का वर्णन पुराणों में उपलब्ध होता है उसका आभास वैदिक ऋचाओं में स्पष्ट रीति से मिलता है। निम्नलिखित मन्त्रों में गणपति को

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n34/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती' कहा गया है—

"आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन॥
एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो 'दन्ती' प्रचोदयात्॥"

'गणपतितत्त्वरत्नम्' में गणपति के वैदिक स्वरूप का अच्छा वर्णन मिलता है।

गणपति शब्द का अर्थ है—'गणों का पति।' इसी अर्थ में गणों के ईश होने से इन्हें गणेश भी कहते हैं। यहाँ 'गण' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। 'गण् समूहे' इस समूहवाचक गण् धातु से 'गण' शब्द बना है। अतः इसका सामान्यार्थ समूह–समुदाय होता है। परन्तु, यहाँ पर इसका अर्थ देवताओं का गण, महत्तत्त्व अहंकारादि तत्त्वों का समुदाय तथा सगुण-निर्गुण ब्रह्मगण है। अतः गणपति शब्द से यह सूचित होता है कि आप समस्त देवतावृन्द के रक्षक हैं, महत्तत्त्व आदि जितने सृष्टि-तत्त्व हैं उनके भी आप स्वामी हैं अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति इन्हीं से हुई है। सगुण-निर्गुण ब्रह्मसमुदाय के पति होने से गणपति ही इस जगत् में सबसे श्रेष्ठ तथा माननीय देवाधिदेव हैं। 'गण' की दूसरी व्याख्या से आपका जगत्कर्तृत्व और भी अधिक रूप से स्पष्ट प्रतीत होता है। मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्य विश्व का वाचक 'ग' अक्षर है तथा मनोवाणीविहीन रूप का ज्ञान 'ण' अक्षर कराता है। इस प्रकार 'गण' शब्द के द्वारा जितना मनोवाणीसमन्वित तथा तद्विरहित जगत् है, सबका ज्ञान हमें होता है। उसके पति—ईश होने के कारण हमारे आराध्य गणेश सर्वतोमहान् देव हैं। 'गण' शब्द की यह व्याख्या 'मौद्गल पुराण' में इस प्रकार कथित है—

"मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n35/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम् ।
णकारात्मकरूपं तत् णकारस्तत्र संस्थितः ॥"

गणपति का मुख हाथी के आकार का बतलाया जाता है । इसी से उन्हें गजानन, गजास्य, सिन्धुरानन आदि नामों से अभिहित किया जाता हैं । इस विचित्र रूप के लिए पुराण में समुचित कथानक भी वर्णित है । परन्तु, इस रूप के द्वारा जिस अव्यक्त भावना को व्यक्त रूप दिया गया है वह नितान्त मनोरम है । गणपति के अन्तर्निहित गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्व को जिस ढंग से इस रूप के द्वारा सर्वजनसंवेद्य बनाने की कल्पना की गयी है वह वास्तव में अत्यन्त सुन्दर है । गणपति के बाह्य रूप को समझना क्या है, उनके आभ्यन्तर गुहास्थित सत्य रूप की पहचान करना है । उनके रहस्य जानने के लिए यह बड़ी भारी मूल्य-वाली कुंजी है ।

गणेशजी का सकल अंग एक प्रकार का नहीं है । मुख है गज का, परन्तु कण्ठ के नीचे का भाग है मनुष्य का । इनके देह में नर तथा गज का अनुपम सम्मिलन है । 'गज' किसे कहते हैं ? 'गज' कहते हैं साक्षात् ब्रह्म को । समाधि के द्वारा योगीजन जिसके पास जाते हैं—जिसे प्राप्त करते हैं वह हुआ 'ग' (समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति गः) तथा जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है वह हुआ 'ज' (यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगत् जायते इति जः) विश्वकारण होने से वह ब्रह्म गज कहलाता है । गणेश का ऊपरी भाग गजाकृति है अर्थात् निरुपाधि ब्रह्म है । ऊपरी भाग श्रेष्ठ अंश होता है—मस्तक देह का राजा है । अतः गणपति का यह अंश भी श्रेष्ठ है क्योंकि यह निरुपाधि-उपाधिरहित—मायावच्छिन्न ब्रह्म का संकेतक है । नर से अभिप्राय मनुष्य—जीव—सोपाधि ब्रह्म से है । अधोभाग ऊपरी भाग की अपेक्षा निकृष्ट होता है । अतः सोपाधि अर्थात् मायावच्छिन्न चैतन्य—जीव—का रूप होने से अधोभाग निकृष्ट है । अथवा 'तत्त्वमसि' महावाक्य की

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n36/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से हम कहेंगे कि गणेशजी का मस्तक 'तत्' पदार्थ का तथा अधोभाग 'त्वं' पदार्थ का निर्देश करता है। 'तत्' पद मायावच्छिन्न शुद्ध चैतन्य निरुपाधि ब्रह्म का वाचक है अतः उसके द्योतन के लिए गजानन का उत्तमाङ्ग नितान्त उचित है। 'त्वं' पद उपाधिविशिष्ट ब्रह्म अर्थात् जीव का संकेतक है अतः गजानन का नराकार अधोभाग उसकी अभिव्यक्ति करने में समुचित ही है। इन दोनों पदार्थों का 'असि'—पदप्रतिपाद्य समन्वय ('तत् त्वमसि' इस महावाक्य में) गणपति में प्रत्यक्षरूप से दिखायी पड़ता है। जिस 'तत् त्वमसि' महावाक्य के अर्थ का परिशीलन सतत समाधिनिष्ठ ज्ञानीजन अनेक उपायों से किया करते हैं, जिसकी प्राप्ति अनेक जन्मसाध्य सत्कर्मों का जाग्रत परिणाम है, उसी की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हमारे जैसे सर्वसाधारण उदरम्भरि पामर जन के लिए है। श्री गजाननजी महाराज की मङ्गलमूर्ति 'श्रीगणेशाथर्वशीर्ष' की आदिम श्रुति—"त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि" के 'प्रत्यक्ष' पद का सकल-विद्वज्जनमनोरम अभिप्राय यही है जो ऊपर अभिव्यक्त किया गया है। इस सिद्धान्त की पुष्टि 'गणेशपुराण' के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध 'गणपति-सहस्रनाम' के द्वारा होती है। वहाँ गणेशजी के सहस्रनामों में एक नाम है—'तत्त्वंपदनिरूपितः।' यथा—

"तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वंपदनिरूपितः।
तारकान्तरसंस्थानस्तारकस्तारकान्तकः ॥३६॥"

इस अभिधान के द्वारा गणपति-स्वरूप का जो जीव-ब्रह्मैक्यप्रतिपादनपरक श्रुतिसम्मत तात्पर्य निरूपण किया गया है उसकी सुचारु रूप से प्रतिपत्ति होती है।

गणपति की मनोज्ञ मूर्ति की आध्यात्मिकता पर जितना विचार किया जाता है उतनी ही उनके साक्षात् पर ब्रह्म होने की वास्तविकता प्रकट होने लगती है। गणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका दाहिना ही दाँत विद्यमान है। पुराणों में उनके बाएँ दाँत के भंग होने की कथा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n37/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती है। अतः उन्हें 'भग्नवामरद' कहा गया है। इस नाम के यथार्थ ज्ञान से उनके सत्यरूप का हमें पता चलता है। 'एक' शब्द यहाँ माया का बोधक है तथा 'दन्त' शब्द सत्ताधारक मायाचालक ब्रह्म का द्योतक है, अतः इस नाम से प्रकट है कि गणपति साक्षात् सृष्टि के लिए माया की प्रेरणा करनेवाले जगदाधार समस्त सत्ता के आधारभूत परम ब्रह्म के ही अभिव्यक्त रूप हैं। 'मौद्गलपुराण' से इसकी पुष्टि होती है—

"एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत्॥
माया भ्रान्तिमती प्रोक्ता सत्ता चालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः॥

गणेश का एक दूसरा नाम 'वक्रतुण्ड' है। इससे भी ऊपर के सिद्धान्त की सिद्धि होती है। यह मनोवाणीमय जगत् सर्वजन-साधारण है। सब के लिए यह सम भाव से अनुभवगम्य है। परन्तु आत्मा इस जगत् से—सतत गमनशील वस्तु से—सर्वथा भिन्न है—पृथक् है—टेढ़ा है। अतएव यहाँ 'वक्र' शब्द से मनोवाणीहीन अविनश्वर, अपरिवर्तनशील चैतन्यात्मक आत्मा का बोध होता है। वही आत्मा गणेशजी का मुख है—मस्तक है। 'तत्त्वमसि' के साक्षात् स्वरूपधारी गजानन के कण्ठ के नीचे का भाग जगत् है और ऊपर का अंश आत्मा है। अतः उन्हें 'वक्रतुण्ड' कहना नितान्त उपयुक्त है—

"कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं तत्र विघ्नेश तेनायं वक्रतुण्डकः॥"

भगवान् गणेश की चार भुजाओं में चार हाथ हैं। इन भुजाओं के द्वारा आप भिन्न-भिन्न लोकों के जीवों की रक्षा अभयदान देकर किया

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n38/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। एक भुजा स्वर्ग के देवताओं की रक्षा करती है तो दूसरी इस पृथ्वी तल के मानवों की, तीसरी असुरों की तथा चौथी नागों की। इन भुजाओं में आपने भक्तों के कल्याण के लिए चार चीजें धारण कर रखी हैं—पाश, अङ्कुश, रद और बर। पाश मोहमय है। उसे आपने भक्तों के मोह हटाने के लिए ले रखा है। अङ्कुश का काम नियन्त्रण करना है। अतः वह उस व्यापार के लिए उपयुक्त है। दन्त दुष्टनाश-कारक है। अतः वह सब शत्रुओं का विनाश करनेवाला है। वर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले ब्रह्म का रूप है। अतः गणेशजी ने सकल मानवों के कल्याणसाधन तथा विघ्नविनाशन के लिए अपने चारों हाथों में इन विभिन्न वस्तुओं को धारण कर रखा है। आदि में जगत् के स्रष्टा तथा अन्तकाल में सब विश्व को अपने उदर में वास कराने—प्रतिष्ठित कराने—वाले जगन्नियन्ता गणेश का 'लम्बोदर' होना उपयुक्त ही है।

गणेशजी 'शूर्पकर्ण' हैं—उनके कान सूप के तरह हैं। इस नाम से भी आपके उच्च परमात्मस्वरूप का परिचय हमें होता है। जब तक धान भूसे के साथ मिला रहता है वह बेकाम होता है, मैला बना रहता है। सूप से फटकने पर उसके असली रूप का पता चलता है, धान भूसे से अलग होकर चमकने लगता है—शुद्ध रूप को पा लेता है। उसी प्रकार ब्रह्म जीवरूप में माया के साथ मिलकर मलावरण से इतना आच्छन्न हो गया है कि उसका असली प्रकाशमय रूप बिलकुल विस्मृत हो गया है—मालिन्य या तम का पटल इतना मोटा हो गया है कि चैतन्य का आभास भी नहीं हो रहा है। ऐसी अवस्था में सद्गुरु के मुख से निकला हुआ गणेश नाम मनुष्यों के कर्णकुहर में प्रवेश कर हृद्गत होकर सूप के तरह पाप-पुण्य को अलग कर देता है—शूर्पकर्ण की उपासना माया को बिलकुल हटाकर चैतन्यात्मक ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। अतः आपके 'शूर्पकर्ण' नाम की सार्थकता स्पष्टरूप से प्रतिपादित होती है—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n39/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः ॥"

गणेशजी 'मूषकवाहन'—'मूषकध्वज' हैं—उनका वाहन मूषक है। मूषक किस तत्त्व को द्योतित करता है, इस विषय में वैमत्य दृष्टिगोचर होता है। मूषक का काम वस्तु को कुतर डालना है। जो वस्तु सामने रखी जाय उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का वह विश्लेषण कर देता है। इस कार्य से वह मीमांसा करने के उपयुक्त वस्तुस्वरूपविश्लेषणकारिणी बुद्धि का प्रतिनिधि प्रतीत हो रहा है। गणेशजी बुद्धि के देवता हैं। अतः जिस तार्किक बुद्धि के द्वारा वस्तुतत्त्व का परिचय प्राप्त किया जाता है तथा उसके सार तथा असार अंश का पृथक्करण किया जाता है, जिसके द्वारा वस्तु के अन्तस्तल तक प्रवेश किया जाता है उसका गजानन का वाहन बनना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। दूसरी दिशा से विचार करने पर 'मूषक' ईश्वर तत्त्व का द्योतक भासमान होता है। ईश्वर अन्तर्यामी है, सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है। सब प्राणियों के द्वारा प्रस्तुत किये गये भोगों का वह भोग करता है परन्तु अहंकार के कारण मोहयुक्त प्राणी इसे नहीं जानता। वह तो अपने ही को भोक्ता समझता है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्राणियों का प्रेरक अन्तर्यामी हृदयपद्म में निवास करनेवाला ईश्वर ही वास्तव में सब भोगों का भोक्ता है। इस अवस्था में मूषक की कार्यपद्धति उस पर खूब घटती है। मूषक भी घर के भीतर पैठ कर चीजें मूसा करता है, परन्तु घर के मालिक को इसकी तनिक भी खबर नहीं होती। इसलिए मूषक के रूप में ईश्वर की ओर संकेत है। पुराणों में गणेश की सेवा करने के लिए ईश्वर का मूषकरूप बन जाने की कथा भी मिलती है। उस परब्रह्म के सेवार्थ ईश्वर के वाहनरूप स्वीकार करने की कथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी उपयुक्त है—

"ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
तदेवं मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n40/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायया गूढरूपः स भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत् ॥"

अतः गणपतिजी चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हीं से इस जगत् की उत्पत्ति होती है, उन्हीं के कारण इसकी स्थिति है और अन्त में उन्हीं में इस विश्व का लय हो जाता है। ऐसे परमात्मा का सकल कार्य के आरम्भ में स्मरण तथा पूजन करना अनुरूप ही है। एक बात और भी। गणेश की मूर्ति साक्षात् 'ॐ' सी प्रतीत होती है। मूर्ति पर दृष्टिपात करने से ही इसकी प्रतीति नहीं होती, प्रत्युत शास्त्रों में भी गणेशजी ॐकारात्मक माने गये हैं। लिखा है कि शिव-पार्वती दोनों चित्रलिखित प्राण (ॐ) पर ध्यान से अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ॐकार की भित्ति को तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव-पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस पौराणिक कथा की सूचना—

"प्रत इन्द्र पूर्व्याणि प्रनूनं वीर्यावोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥"

मन्त्र में बतलायी गयी है। प्रणव सब श्रुतियों के आदि में आविर्भूत माना जाता है। 'प्रणवश्छन्दसामिव।' अतः ॐकारात्मक होने के कारण गणपति का सब देवताओं से पहले पूजा पाना उचित ही है। गणेश के शिवपुत्र होने के विषय में भी एक पौराणिक कथा मिलती है। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ने शङ्कर की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके घर अवतार लिया था ऐसी कथा मिलती है। अतः गणपति के परब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप होने में तनिक भी सन्देह नहीं है।

२
भौतिक रूप

गणपति के आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन पूर्व लेख में किया गया है। अब उनके आधिभौतिक स्वरूप का वर्णन इस लेख में

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n41/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत किया जा रहा है। गणपति के विषय में अनेक पुराणों में उल्लेख पाये जाते हैं। पुराणेतर सामग्री भी कम नहीं है। इन सब साधनों के आधार पर गणपति के भौतिक रूप का वर्णन भलीभाँति किया जा सकता है। एक पाश्चात्य महिला श्रीमती ए० गेट्टी ने गणेश पर एक बड़ी सुन्दर तथा रोचक पुस्तक लिखी है, जो सन् १६३६ में 'आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस' से प्रकाशित हुई है। भारतीय दृष्टि से इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं पर तब भी यह पुस्तक पठनीय है। गणेश की पूजा का प्रचार भारत के कोने कोने में तो है ही, साथ ही साथ बृहत्तर भारत—जावा, सुमात्रा, बाली, चीन, जापान आदि देशों में भी इसके प्रचलित होने के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते हैं। स्थान की भिन्नता के कारण गणेश की मूर्तियों में भी भिन्नता मिलती है। भारत में गणेश का एक ही सिर मिलता है, पर नेपाल में हेरम्ब गणपति की मूर्तियों में पाँच सिर पाये जाते हैं; भारत में भी ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं, पर बहुत कम। गणेश एकदन्त हैं, पर दन्त की स्थिति में भी भिन्नता दीख पड़ती है। विशेषकर बाएँ ओर दन्तवाली मूर्तियों की बहुलता पायी जाती है. पर दाहिनी ओर तथा दोनों ओर दन्तवाली मूर्तियाँ भी पायी जाती हैं। गणेश के साधारणतया दो ही नेत्र दिखलाये जाते हैं, पर तान्त्रिक पूजा में उनके तीन नेत्र पाये जाते हैं। गणेश की मूर्तियों में साधारणतया तिलक का विशेष विधान नहीं है, पर कहीं कहीं चन्द्रमा तिलक का काम करता है। हाथों की संख्या भी साधारण रीति से होती है, परन्तु तान्त्रिक पूजा में व्यवहृत होनेवाली मूर्तियों में भुजाओं की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। इन हाथों में धारण की हुई वस्तुओं के विषय में भी मतभेद है।

यों तो गणेश का पूजन प्रत्येक आर्य सन्तान का करणीय विषय है, पर प्राचीन काल में गणपति का उपासक एक विशिष्ट सम्प्रदाय था जो 'गाणपत्य' के नाम से पुकारा जाता था। पेशवा लोग गणपति के

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n42/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक थे। इस कारण आजकल भी महाराष्ट्र में गणपति की प्रचुर उपासना पायी जाती है। 'गाणपत्य' सम्प्रदाय तान्त्रिक था, जिसमें भिन्न भिन्न गणपति की उपासना, फल की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूप में की जाती थी। गाणपत्यों में भी ६ भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय थे, जिनकी उपासना-पद्धति में भिन्नता तथा विशिष्टता थी। वे भिन्न-भिन्न गणपतियों की पूजा किया करते थे। 'महागणपति' का अंग लाल तथा भुजाएँ दस होती हैं। 'ऊर्ध्व गणपति' तथा 'पिङ्गल गणपति' का रंग पीला तथा भुजाएँ ६ होती हैं। 'लक्ष्मी गणपति' का रंग श्वेत होता है, भुजाएँ चार या आठ। 'हरिद्रा गणपति' का रंग हल्दी जैसा पीला, भुजाएँ चार तथा नेत्र तीन होते हैं। 'उच्छिष्ट गणपति' का रंग लाल तथा भुजाएँ चार होती हैं। गाणपत्यों का पूजा प्रकार रहस्यमय होता था, उसमें तान्त्रिक प्रकार की प्रधानता होती थी। ऊपर उल्लिखित सम्प्रदायों में महागणपति, हरिद्रा गणपति तथा उच्छिष्ट गणपति का प्रचार विशेष रूप से बतलाया जाता है। इनमें उच्छिष्ट गणपति की पूजा शाक्तों के वामाचार के ढंग की होती थी तथा स्वभावतः भयानक होती थी। आजकल इन सम्प्रदायों का एक प्रकार से अभाव सा हो गया है। पर आज भी स्थान-स्थान पर गाणपत्य लोग मिलते हैं। इनका कहना है कि 'गणपति ही सर्वप्रधान देवता हैं। उन्हीं से जगत् के सर्गादि कार्य सम्पन्न होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इन त्रिदेवों की उत्पत्ति गणपति से ही होती है। अतः सर्वमान्य देवता गणपति ही हैं।

समस्त विघ्नों के सर्वथा नाश कर देने की शक्ति विनायकरूपी गणेश में विशेष रूप से विद्यमान है। इसीलिए गृहप्रवेश करते समय घर के दरवाजे पर विनायक की मूर्ति स्थापित की जाती है। किसी नगर के रक्षा का भार भी विनायक की कृपा पर छोड़ दिया जाता था। इस विषय में हमारी पवित्र पुरी काशी की रक्षा का प्रधान कार्य विनायक के

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n43/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपुर्द किया गया मिलता है। 'काशीखण्ड' के अनुसार पंचक्रोशी सहित समस्त काशी सात वृत्तों में बाँटी गयी है, जिनका नाम है 'आवरण'। सबसे बड़ा प्रथम आवरण वर्तमान पंचकोशी में पड़ता है तथा अन्तिम आवरण विश्वनाथजी के मन्दिर की परिधि में सीमित है। प्रत्येक आवरण में रक्षक रूप से ८ विनायकों को स्थान दिया गया है। इस प्रकार समस्त आवरणों की रक्षा के निमित्त ५६ विनायकों की स्थिति मानी गयी है। प्रथम आवरण के आठ विनायक हैं—अर्क विनायक (लोलार्क कुंड के पास) दुर्ग विनायक, भीमचण्ड विनायक, देहली विनायक, उद्दण्ड विनायक, पाशपाणि विनायक, खर्वविनायक तथा सिद्धि विनायक (मणिकर्णिका घाट पर)। अर्थात् लोलार्क कुंड के पास के गंगा तट से लेकर समस्त पंचकोशी को होते हुए मणिकर्णिका घाट तक काशी का प्रथम आवरण है। अन्तिम आवरण विश्वनाथ मन्दिर के आसपास है, जिसमें मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणनाथ, ज्ञान, द्वार तथा अविमुक्त विनायक हैं। काशी के चारों ओर इन आवरणों की कल्पना नितांत महत्त्वपूर्ण है। पर इन विनायकों के अतिरिक्त अन्य गणपतियों की भी स्थिति तथा मान्यता है—यथा दुग्ध, दधि, शर्करा, मधु तथा घृत विनायक (पंचगंगा के पास दूधविनायक महल्ले में), साक्षी विनायक तथा वक्रतुण्ड विनायक (जो बड़े गणेश के नाम से विख्यात हैं)। हमारा विश्वास है कि इस विश्वनाथ-नगरी में जितने विनायकों की स्थिति है उतनी अन्य नगरी में नहीं है। इन छप्पन विनायकों के नाम तथा स्थान के वर्णन के लिए 'वाराणसी आदर्श' तथा 'काशीयात्रा' का अवलोकन करना चाहिए।

वैदिक धर्म में गणपति का माहात्म्य तो है ही, पर बौद्धधर्म में भी इनकी महिमा कम नहीं है। महायान के तांत्रिक सम्प्रदायों ने विनायक की कल्पना को ग्रहण कर उसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। बुद्ध का एक नाम 'विनायक' भी है। पिछली शताब्दियों में बुद्ध की कल्पना

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n44/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनायक रूप से मिलती है तथा 'वज्रधातु' और 'गर्भधातु' के रूप में भी विनायक की पूजा का विपुल प्रचार दृष्टिगत होता है। नेपाल में बौद्धधर्म के साथ-साथ गणपति की पूजा भी चलती है। वहाँ से खोतान, चीनी तुर्किस्तान तथा तिब्बत में भी गणेश की उपासना का प्रचार हुआ। इन देशों में विनायक की नृत्यशालिनी मूर्ति (नृत्य गणपति) का प्रचुर प्रचार है। हेरम्ब विनायक के नाम से भी इनकी स्थिति नेपाल में है। हेरम्ब की बड़ी विशेषता यह है कि उनके पाँच मुख होते हैं तथा मूषक के स्थान पर सिंह ही उनका वाहन है। इन पाँच मुखों का क्रम भी बड़ा विलक्षण रहता है। कभी चारों दिशाओं में चार मुख होते हैं और ऊपर बीच में एक मुख, कभी तीन ही मुख एक पंक्ति में और एक के ऊपर एक रूप से दो मुख होते हैं। तिब्बत में प्रत्येक मठ के अधि-रक्षक देवता के रूप में गणपति की पूजा आज भी प्रचलित है। हिन्दू लोगों ने भारत के बाहर भी अपने उपनिवेश बनाये थे, इसका पता इतिहास दे रहा है। जहाँ ये लोग धर्मप्रचारक के रूप में या व्यापारी के रूप में बस गये, वहाँ ये अपने साथ भारत से अपनी सभ्यता भी लेते गये, अपने देवता तथा उनकी भारतीय पद्धति को अपने साथ ले जाना नहीं भूले। फलतः गणपति की मूर्ति विघ्नराज के रूप में बृहत्तर भारत के समग्र देशों में आज भी पायी जाती है। इन देशों में गणपति के नाम भी भिन्न भिन्न हैं। गेट्टी ने इन नामों की तालिका अपने ग्रन्थ में दी है। गणपति का तामिल में नाम है 'पिल्लैयर', भोट भाषा में 'सोग्द्-दाग', बर्मी में 'महा-पियेन्ने', मंगोलियन में 'त्वोतखारून खागान', कम्बोडियन में 'प्राह केनीज', चीनी भाषा में 'कुआन-शी-तिएन', जापानी में 'काङ्गी-तेन'। भारत के समीपस्थ उपनिवेश बर्मा तथा श्याम में गणपति का प्रवेश बहुत पहले हुआ। इन देशों में गणेश की कांसे की बनी मूर्तियाँ बड़ी लोकप्रिय हैं। कम्बोडिया (कम्बोज—इन्डोचीन) में गणपति की मूर्तियों में स्थानीय ख्मेर कला के कारण विशेष परिवर्तन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com
Page 43 of 320

https://archive.org/details/bk1332/page/n45/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया जाता है। चतुर्मुख मूर्तियाँ यहीं मिलती हैं और अधिकतर ये खड़े होने की मुद्रा में दिखलायी जाती हैं। जावा में हिन्दू-धर्म का प्रवेश प्राचीनकाल में ही हो गया था। पंचम शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान को जावा में ब्राह्मण तथा बौद्ध श्रमण मिले थे। जावा में गणपति के स्वतन्त्र मन्दिर नहीं मिलते, पर शिवमन्दिर में ही इनकी मूर्तियाँ पाती जाती हैं। इन मूर्तियों की एक विशेषता है कि शिव के समान गणेश को भी मुण्डमाल पहनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। बोर्नियो तथा बालीद्वीप में भी गणपति का विशेष प्रचार है।

चीन तथा जापान में गणेश का प्रवेश पाना आपाततः आश्चर्यजनक माना जा सकता है, पर विचार करने पर यह प्रवेश स्वाभाविक प्रतीत होने लगता है। महायान बौद्धधर्म के प्रवेश के साथ गणपति ने भी इन देशों में प्रवेश पा लिया। चीन में गणेश का प्रवेश या तो चीनी तुर्किस्तान या नेपाल—तिब्बत के रास्ते से हुआ होगा। चीन में गणेश की मूर्ति दो नाम तथा रूप से विख्यात है—'विनायक' (बौद्धसम्मत मूर्ति) तथा 'काङ्गी-तेन' (गणेश की युगल मूर्ति)। काङ्गि-तेन मूर्ति बड़ी विलक्षण है। वह इन पूरबी प्रदेशों की अपनी खास कल्पना का परिणाम है। चीन देश के तान्त्रिक बौद्धधर्म ने विनायक का ग्रहण बड़ी जल्दी कर लिया तथा अपने देवताओं में इन्हें बड़ा आसन दिया। विनायक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के ही प्रतिरूप माने जाते हैं। वज्रधातु की कल्पना में विनायक का विशेष प्रभाव है। नवमी शताब्दी के बाद जापान में गजानन जी विराजने लगे। कोबो-दाइशी नामक विद्वान् ने चीनदेशीय बौद्धाचार्यों से दीक्षा लेकर विनायक का जापान में प्रवेश कराया और स्थानीय प्रसिद्ध शिंगोन सम्प्रदाय ने इन्हें अपना लिया। शिंगोन मत तान्त्रिक मत है। अतः उसने रहस्यमयी काङ्गी-तेन मूर्तियों का विशेष प्रचार किया। यह गजानन की युगल मूर्ति है, जिसमें दोनों मूर्तियों की पीठ एक साथ लगी हुई तथा मुँह दो दिशाओं की ओर हैं।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n46/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानी बौद्ध इन मूर्तियों को रहस्यमय तथा शक्ति और शक्तिमान् की एकता का प्रतिपादक बतलाते हैं। सुदूर अमरीका में भी लम्बोदर की मूर्ति मिली है। आकृति वही लम्बा तुन्दिल शरीर, ऊपर हाथी का, इधर-उधर दोलायमान शुण्डादण्ड। इन मूर्तियों का श्रीचम्मनलाल ने 'हिन्दू अमरीका' नामक अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है। इन मूर्तियों की कल्पना से प्रतीत होता है कि भारतीयों ने कभी अमरीका में भी अपने उपनिवेश बसाये थे।

इस प्रकार गणेशजी की पूजा उत्तरी मंगोलिया से लेकर दक्षिणी वाली तक तथा भारत से लेकर अमरीका तक कम या अधिक अंश में भिन्न भिन्न शताब्दियों में प्रचलित थी। मङ्गल के अवसर पर गणपति का पूजन करनेवाले कितने हिन्दू इस ऐतिहासिक तथ्य से परिचित हैं तथा भारतीय सभ्यता के प्रचार में गणपति-पूजा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं?

---

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n47/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) अथर्ववेद में कौटुम्बिक अभिचार

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद का स्थान बड़ा ही अनुपम है। जहाँ अन्य वेद देवताओं की स्तुति को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाते हैं, वहाँ अथर्ववेद भौतिक विषयों के भी वर्णन में अपने को कृतकार्य मानता है। आदिम मानव की नाना प्रकार की विचित्र क्रियाओं, आचारविचारों, रहन-सहन की पूरी जानकारी के लिए अथर्ववेद से पुराना ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। जैसे शत्रुओं पर विजय पाने के लिए, क्लेशदायी दीर्घ रोगों के निवारण के लिए, सद्योजात शिशु तथा उसकी माता—जच्चा तथा बच्चा को सन्तप्त करनेवाले भूत-प्रेतों के विनाश के लिए नाना अभिचारों का विचित्र वर्णन अथर्ववेद के सूक्तों में पाया जाता है जिसके कारण यह वेद नृतत्त्व (Anthropology) के अभ्यासियों के लिए एक बहुमूल्य विश्वकोष का काम करता है। जादू-टोना का प्रचार आथर्वण सभ्यता की एक विशिष्ट घटना है।

जादू-टोना सदा बुरा ही नहीं हुआ करता है। इसके द्वारा प्राचीन मानव अपने कुटुम्ब की रक्षा अपने शत्रुओं से तथा रोगों के आक्रमण से किया करता था। आत्म-संरक्षण की भावना ही जादू-टोना जैसी क्रियाओं की पृष्ठभूमि है। प्राणी इस पृथ्वीतल पर अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। उसकी कामना यही रहती है कि वह भी दीर्घ काल तक सुख भोगे तथा उसका कुटुम्ब, उसका परिवार तथा उसकी सन्तान भी कल्याणमय जीवन बितावे। इसे ही कहते हैं आत्म संरक्षण (Self-preservation) की सहज प्रवृत्ति। मानव प्रथमतः तो

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n48/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी रक्षा अपने ही भौतिक उद्योगों के बल पर करता रहता है, परन्तु जब असफलता उसे दूर खदेड़ कर उसके प्रयासों को विफल बना देती है, तब वह आधिदैविक क्रियाओं तथा प्रयासों की ओर अग्रसर होता है और इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत जादू-टोना की भी गणना की जाती है। जादू (संस्कृत नाम=यातु) इस तरह दो प्रकार का होता है—शोभन तथा अशोभन, भला और बुरा। शोभन प्रकार में किसी दूसरे के द्वारा किये गये अनिष्ट से अपने को बचाने की भावना प्रबल होती है। अशोभन प्रकार में शत्रुविशेष के ऊपर मारण-मोहन तथा उच्चाटन की भावनायें विशेष जागरूक रहती हैं। पाश्चात्य जगत् कितना भी सभ्य क्यों न हो गया हो, परन्तु वहाँ भी इन दोनों की सत्ता विद्यमान है। इनमें से प्रथम प्रकार 'श्वेत जादू' (White Magic) के नाम से प्रसिद्ध है, तो दूसरा 'काला जादू' (Black Magic) के नाम से प्रख्यात है। शेक्सपीयर ने अपने अनेक नाटकों में, विशेषतः 'मैकबेथ' में इस दूसरे प्रकार के जादू का साहित्यिक विवरण प्रस्तुत कर यूरोप की मध्ययुगीय धारणाओं का एक भव्य रूप प्रस्तुत किया है।

अथर्ववेद ऐसे विश्वासों की जानकारी के लिए मानव-इतिहास में सबसे प्राचीन ग्रन्थ-रत्न है। अथर्व संहिता में भी अन्य संहिताओं के समान मन्त्रों का ही संग्रह है। परन्तु इन मन्त्रों का उपयोग कब तथा किस उद्देश्य से किया जाता था, इसका पता हमें कौशिक गृह्यसूत्र की सहायता से ही लगता है। कौशिक गृह्यसूत्र अथर्ववेद का एकमात्र गृह्यसूत्र है जिसमें १४ अध्याय हैं। इसका सम्पादन न्यूहावेन (अमेरिका) से डा० ब्लूकफील्ड ने किया है (१८९० में) तथा इसका पुनर्मुद्रण हिन्दी अनुवाद के साथ किया है मुजफ्फरपुर से उदयनारायण सिंह ने (१९४२ ई० में)। मानव विज्ञान के इतिहास में कौशिक सूत्र नितांत उपादेय, प्रामाणिक तथा रोचक ग्रन्थ है, जिसमें उन अभि-

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n49/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारीय क्रिया-कलापों का विचित्र वर्णन है जो मन्त्रों के साथ प्रयुक्त होते थे।[1]

अथर्ववेद के केवल विवाह सम्बन्धी सूक्तों का एक संक्षिप्त अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। विवाह से सम्बद्ध अनेक सूक्त अथर्ववेद में उपलब्ध होते हैं जिनके अनुशीलन से उस युग के समाज का चित्र हमारे नेत्रों के सामने बलात् प्रस्तुत हो जाता है। इन सूक्तों में कहीं तो पुत्र की उत्पत्ति के लिए प्रार्थना है, तो कहीं सद्योजात शिशु की रक्षा के लिए देवताओं की स्तुति है। अथर्ववेद का १४वाँ कांड विवाहकांड है जिसके दो अनुवाकों में १३९ मन्त्र हैं, जिनका उपयोग विवाह के अवसर पर किया जाता है। इनमें से अनेक मन्त्र ऋग्वेद के वैवाहिक सूक्तों में भी उपलब्ध होते हैं। इस मन्त्र में अग्नि तथा सूर्य से प्रार्थना की गई है कि वे कुटुम्ब के नाना क्लेशों को दूर करें—

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु
निष्ठितं मघ कृद्भिरघं कृतम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः
सविता च प्रमुञ्चताम्॥
(अथर्व १४। २। ६२)

इसी प्रकार जब वधू अपने नवीन घर में, पतिगृह में आती है, तब उसे दीर्घ जीवन पाने के लिए भव्य प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है—

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।

१. विशेष जानकारी के लिए देखिये बलदेव उपाध्याय—वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० २६५-६६; शारदा मन्दिर, काशी।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n50/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥
(वही, मन्त्र ७५)

अब दूसरे प्रकार के मन्त्रों तथा तत्सम्बद्ध अनुष्ठानों पर दृष्टिपात कीजिए। कोई स्त्री अपने पति का प्रेम पाना चाहती है अथवा कहीं वह अपनी सपत्नी को अपने वश में करना चाहती है, तब वह एक विशिष्ट अनुष्ठान के साथ इस सूक्त के मन्त्रों का उपयोग करती है।
(३।२५)

उत्तुदस्त्वोद् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ १ ॥

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्प कुल्मलाम्।
तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥ २ ॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता।
प्राचीन पत्रा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥

भावार्थ—दूसरों को बेचैन बनाने वाला काम तुम्हें बेचैन बनावे। अपनी सेज पर तुम आनन्द के साथ मत रहो। काम का जो भयानक बाण है उससे मैं तुम्हारे हृदय को बेधती हूँ। कामदेव का बाण मानसिक व्यथा के पत्तों से युक्त है। इच्छा के जिसमें काँटे गड़े हैं, संकल्प (निश्चित इच्छा) ही जिसका डंडा है ऐसे बाण से तुम्हारे ऊपर ठीक लक्ष्य रख कर काम तुम्हारे हृदय को बेधे। काम का बाण प्लीहा को सोखने वाला है, ठीक लक्ष्य पर जमा है, उसके पंख आगे उड़ रहे हैं तथा वह जलाने वाला है (व्योषा), ऐसे बाण से मैं तुम्हारे हृदय को बेधती हूँ। इस सूक्त में कुल छः मंत्र हैं जिनमें से तीन मन्त्रों का अर्थ ऊपर दिया गया है। शेष मन्त्र भी इसी भाव को पुष्ट करने वाले हैं। कौशिक-सूत्र का कथन है कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्री

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n51/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रेम को पाकर उसे अपने वश में लाना चाहता है, तो वह उस स्त्री की मिट्टी की मूर्ति बनाता है। सन की बनी डोरीवाला धनुष तथा काँटों की नोक वाला बाण बनाता है। बाण के पंख उल्लू की पाँख का होता है तथा बाण का हाथ काली लड़की का बना होता है और वह इसी बाण से उस प्रेमिका की मृत्तिकामूर्ति को छेदकर आर-पार कर देता है। काम के द्वारा कामिनी के हृदय को बेधने का यह प्रतीक है। दोनों क्रियाएँ साथ-साथ होती हैं—बाण से हृदय का बेधना और ऊपर के मन्त्रों का उच्चारण। यह वशीकरण क्रिया कहलाती है ऐसी मूर्ति या चित्र बनाकर उसे बेधने का ढंग संसार के अन्य भागों में आज भी प्रचलित है।

इसी प्रकार पति को वश में लानेवाली बधू इसी वशीकरण क्रिया का आश्रय लेती है। वह अपने प्रियतम की मूर्ति बनाती है, उसे अपने सामने रखती है और उसके सिर पर गरम बाणों से आघात करती है और साथ ही साथ अथर्व के दो सूक्तों (६।१३० तथा ६।१३८) का पाठ भी करती जाती है। इन सबका ध्रुव वाक्य है—'देवाः प्रहिणुत स्मरम् असौ मामनु-शोचतु' अर्थात् ए देवगण, काम को इसके प्रति भेजिए जिससे वह मेरे प्रेम से उद्विग्न हो जाय। एक दो मन्त्रों को लीजिए।

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनुशोचतु। (६।१३०।४)

हे देवता लोग इसे पागल बना डालिए मेरे प्रेम से। हे वायु, इसे पागल बना डालो। हे अग्निदेव, आप भी उसे पागल बना डालो। वह मेरे प्रेम से शोक से व्याप्त हो जाय।

यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता॥
(६।१३१।३)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n52/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री पति को लक्ष्य कर कह रही है—अगर तुम तीन योजनों तक यहाँ से दौड़ गये हो, पाँच योजनों तक अथवा घोड़े के दिन भर चलने के रास्ते को पार कर गये हो, तो वहाँ से तुम मेरे पास अवश्य चले आवो और हमारे पुत्रों के तुम पिता बनो।

अन्तिम मन्त्र का तात्पर्य यह है कि पति स्त्री के पास से भाग कर बहुत दूर चला गया है, परन्तु इस आभिचारिक अनुष्ठान के बल पर वह फिर लौट कर घर चला आता है। अपनी गृहस्थी जमाता है तथा अनेक पुत्रों का पिता बन जाता है। इन मन्त्रों की भावना सौम्यभाव से परिपूर्ण है, परन्तु जिन मन्त्रों में कोई स्त्री अपनी वैरिणी को परास्त करना चाहती है उनमें तो घृणा की तथा प्रत्यपकार की बड़ी ही तीव्र भावना दीख पड़ती है। इस घृणा भाव के लिए इन मन्त्रों पर ध्यान दीजिये—

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम्॥ १ (१।१४)

मैंने इस स्त्री (अपनी वैरिणी) के कल्याण, सौभाग्य तथा तेज को अपने वास्ते ले लिया है जिस प्रकार पेड़ से माला को। दृढ़ मूल वाले पर्वत के समान वह पिता माता के यहाँ ही सदा बैठी रहे। दोनों उपमाओं का तात्पर्य सुन्दर है। माला तो सौभाग्य तथा तेज का प्रतीक है। पर्वत की उपमा देकर वह स्त्री कहती है कि जिस प्रकार दृढ़मूल पहाड़ उखाड़े नहीं उखड़ता, उसी प्रकार वह स्त्री भी हटाए न हटे। अपने मायके में ही पहाड़ की तरह जमी रहे। हमारे प्रियतम का मुख देखने का सौभाग्य उसे नहीं मिले।

एष ते राजन् कन्या वधूर्निधूमतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः॥२॥
एषा ते कुलपा राजन्! तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात्॥३॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n53/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वह स्त्री यम को लक्ष्य कर कह रही है कि हे राजा यम, इस कन्या को आप अपनी बहू बनाकर अपने वश में रखिये। यह अपनी माता या भाई के या पिता के घर में बँधी रहे। हे राजन्! यह कन्या तुम्हारे कुल की रक्षा करनेवाली है। इसे हम लोग तुम्हें देते हैं। यह अपने पिता-माता के यहाँ तब तक निवास करती रहे जब तक इसके बाल सर से न झड़ जाँय!!! इस चण्डिका की प्रार्थना सचमुच बड़ी कठोर है। यमराज की पत्नी बना देने से उसे सन्तोष नहीं है। वह तो चाहती है कि वह बुडढी-ठुड्ढी बन कर मर भले ही जाय, परन्तु पति का मुँह न देखे। इससे बढ़ कर घृणा की भावना क्या हो सकती है?

उग्र प्रतिहिंसा की आग जल रही है उन मन्त्रों में, जिनमें कोई स्त्री अपनी वैरिणी को बाँझ बना देने की प्रार्थना करती है (७।३५) अथवा किसी पुरुष के पुंस्त्व को नष्ट कर उसे नपुंसक बना देने की निर्भ्रान्त प्रार्थना है। दूसरे प्रकार के दो सूक्त हैं जिनमें से ७।९० तो उतना उग्र या तीव्र नहीं है, परन्तु ६।१३८ सूक्त में तो प्रतिहिंसा की कठोर भावना पढ़ कर चित्त विचलित हो उठता है। कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट औषधि से प्रार्थना कर रहा है कि तुम्हारे प्रयोग के द्वारा मैं अपने शत्रु को क्लीव (=शक्तिहीन) बना देना चाहता हूँ। इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह उस व्यक्ति को सदा के लिए क्लीव बना डाले और दो पत्थरों से उसके दोनों अण्डकोशों को सदा के लिए कुचल डाले। इसे पढ़ कर तो प्रतिहिंसा की भावना अपने नग्न रूप में हमारे सामने सजीव होकर खड़ी हो जाती है भला इन्द्र से ऐसी प्रार्थना!!! परन्तु वे तो शत्रुओं के 'पुरभेत्ता' ठहरे और इसलिए उनसे 'अण्डभेत्ता' बनने की प्रार्थना में वह व्यक्ति कोई अनौचित्य नहीं देखता!!! भला हो उस प्रतिहिंसा का जो ऐसे अनुचित कार्यों के लिए प्राणियों को अग्रसर करती है। इस मन्त्र को लीजिए:—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n54/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ (६।१३८।२)

एतद्विषयक अन्य सूक्तों में साहित्यिक सौन्दर्य की कमी नहीं है । सीधे-सादे शब्दों में अपने मनोगत भावों को प्रकट करने की कला को देखकर आलोचक को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता । अथर्ववेद के कौटुम्बिक अभिचार का यह सामान्य परिचय पाठकों को मनोरंजक सिद्ध होगा ।

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n55/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णव धर्म

(५) भागवत धर्म

१

उदय

भारतवर्ष एक धर्म-प्रधान देश है। हिन्दुओं को तो धर्म प्राण से भी प्यारा है। इनकी सतत यही धारणा रहती है कि धर्म रहे बल्कि प्राण चले जाँय। धर्म के लिये प्राण देना हिन्दुओं ही की विशेषता है। इस देश ने अनेक धर्मध्वंसी तथा आततायी विधर्मियों को देखा, परन्तु उनके निरंतर उद्योग से भी हिन्दू धर्म की क्षति न हो सकी। यहाँ यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि वैदिक काल से ही विष्णु की पूजा चली आ रही है, परन्तु उस समय इसे विशेषता प्राप्त नहीं थी। महाभारत काल में इसे प्रधानता प्राप्त हुई और उसी काल के नारायणीय धर्म को भागवत धर्म के नाम से पुकारा जाता है। भागवत धर्म शरणागति तथा प्रपत्ति का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

आधुनिक काल में विष्णु की पूजा बहुत विस्तृत है। वैष्णव धर्म भारत के धार्मिक इतिहास में प्रधान स्थान रखता है। वैदिक काल में देवतागण में विष्णु का भी नाम है, परन्तु इनको कोई विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था और न इनकी विशेष पूजा ही का वर्णन मिलता है। विष्णु चौथे श्रेणी के देवता थे। सूर्य से कम ही इनका आवाहन किया जाता है। विष्णु का विशिष्ट कार्य है तीन डगों में पृथ्वी को माप लेना। इसी कारण उनका नाम 'त्रिविक्रम' 'उरुक्रम' तथा 'उरुगाय' है। विश्व में सतत उद्योगशील सूर्य को ही 'विष्णु' का नाम दिया गया है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n56/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में पाँच छः सूक्त ही विष्णु की स्तुति के विषय में हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में सब देवताओं में विष्णु के सर्वश्रेष्ठ होने का वर्णन मिलता है—

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।

इससे ज्ञात होता होता है कि शनैः शनैः ब्राह्मण-काल में विष्णु पूजा की प्रधानता होने लगी।

उपनिषद् काल में दो विचारधाराएँ प्रवाहित थीं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों में केवल 'ब्रह्मन्' का विचार ही सर्वोपरि था। विष्णु की ब्रह्मन् से समानता नहीं बतलाई गई है। कठोपनिषद् (१, ३, ६) में विष्णु के लिये 'तत् विष्णोः परमं पदम्' का वर्णन मिलता है। उस समय से विष्णु की प्रधानता बढ़ती ही गयी और उनको त्रिमूर्ति में (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में) स्थान प्राप्त हो गया। मैत्रायिणी में तो त्रिमूर्ति का भाव अंतिम रूप को पहुँचा हुआ पाया जाता है।'यदि ऐतिहासिक रूप से विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि विष्णु को कम से कम ईसा के १००० वर्ष पहले हिन्दू देवताओं में प्रधान स्थान प्राप्त हो गया था तथा इनकी पूजा प्रचलित हो गयी थी।

धार्मिक पूजा के साथ-साथ भक्ति की उत्पत्ति तथा वृद्धि दिखलाई पड़ती है। जब पुजारियों की श्रद्धा विष्णु के प्रति बढ़ने लगी तभी से भक्ति की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अपने पूर्व पुरुषों, गुरुजनों तथा पूज्यों के मार्गों का अनुगामी होने से भक्ति उत्पन्न होती है। ऋषियों ने यहाँ तक कहा है कि जिसमें भक्ति न हो उसे शिक्षा नहीं देनी चाहिये। कठोपनिषद् के वर्णन से ज्ञात होता है कि जिसमें देवता तथा गुरु के प्रति भक्ति होती है उसी को ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है।

यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

भक्ति का तात्पर्य किसी एक व्यक्ति के प्रति ध्यान तथा प्रेम लगाने से है। उसी के लिये अपने को उत्सर्ग कर दे। संजय ने कहा है—

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n57/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायां न सेवे भद्रं ते न वृथा धर्ममाचरे
शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ।
(महा० आ० ५।६३।४)

भक्त प्रपन्न है और पूज्य के प्रसाद के लिये उसकी शरण में जाता है। भगवान् कृष्ण ने कहा भी है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८।६६)

पाणिनि के समय में भी विष्णुपूजा का प्रचुर प्रचार था। अष्टाध्यायी में 'वासुदेवार्जुनाभ्यां' (४।३।९८) के आधार पर वासुदेव पूजा की प्रामाणिकता सिद्ध की गई है। अतएव इसी आधार पर ई० पूर्व ६०० में वासुदेव (विष्णु) पूजा का प्रचार प्रकट होता है।

महाभारत काल में विष्णु की पूजा कृष्ण तथा नारायण के रूप में होने लगी। इसी नारायणीय पूजा को 'भागवतधर्म' के नाम से संबोधित किया जाता है। यों तो विष्णु की पूजा वैदिक काल से चली आती थी परन्तु महाभारत काल में ही इसको 'भागवतधर्म' का नाम दिया गया। भागवतधर्म का ही विवेचन पूर्णरूप से गीता में मिलता है। भक्ति-विषय में गीता ही सबसे प्रथम और प्राचीन पुस्तक है। भगवान् कृष्ण के उपदेशों से भक्ति का स्थान तथा विधान का परिचय मिलता है। स्वयं भगवान् के कथित उपदेशों के अतिरिक्त भक्ति का अधिक विवेचन मिलना कठिन है। भगवान् कृष्ण कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥
(गीता ९।२९)

'बौद्धकाल' में बुद्धदेव ने अपने नये धर्म का प्रचार किया और हिन्दू धर्म के मूलभूत वेदों की प्रधानता नहीं मानी। बुद्ध ने इसका

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n58/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मज्झिम मार्ग' के नाम से प्रचार किया। इस युग में यद्यपि बौद्धधर्म की प्रधानता थी, तथापि हिन्दू धर्म (भागवतधर्म) के भी अनुयायी वर्तमान थे। ई० पूर्व चौथी शताब्दी में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज ने वर्णन किया है कि वासुदेव की पूजा शूरसेन लोगों के द्वारा मथुरा के समीप होती थी। मौर्यकाल के अनन्तर शुंग नरेशों ने हिन्दूधर्म को अपनाया तथा प्राचीन वैदिक प्रणाली पर यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय (ई० पूर्व दूसरी शताब्दी) में पतंजलि का आविर्भाव हुआ। महाभाष्यकार पतंजलि ने 'ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च' (४।१।११४) सूत्र पर भाष्य लिखते हुए वासुदेव का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि वृष्णि लोग वासुदेव की पूजा करते थे। इन वृष्णि लोगों को महाभारत में 'सात्वत' लिखा है। अतएव सात्वत लोगों के नारायणीय धर्म (भागवतधर्म) तथा पतंजलि द्वारा उल्लिखित वासुदेव पूजा कोई विभिन्नता नहीं है।

ई० पूर्व दूसरी शताब्दी में प्राप्त लेखों से साहित्यिक प्रमाण की पुष्टि होती है। वह लेख मध्य भारत के वेसनगर स्थान में मिला है। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि तक्षशिला का राजदूत 'हेलियोडोरस' विदिशा के राजा काशी पुत्र 'भागभद्र' की सभा में आया था। वहाँ पर उसने गरुड़ स्तम्भ स्थापित किया था। इस स्तम्भ के लेख से न केवल भागवत धर्म की प्रधानता ही ज्ञात होती है प्रत्युत इसका प्रभाव अन्य धर्मावलम्बियों पर भी स्पष्ट प्रगट होता है। इस प्रकार साहित्यिक तथा लेख के प्रमाण पर ईसा से कई सदी पूर्व से ही भागवत धर्म के प्रचुर प्रचार की सूचना मिलती है। इसके बाद चार सौ वर्षों तक कोई भी लेख या कला का नमूना नहीं प्राप्त है जिससे वैष्णव धर्म के प्रचार की सूचना मिले। परन्तु चौथी शताब्दी से, गुप्तों के उत्थान से आरम्भ कर भागवतधर्म का प्रचार आधुनिक काल तक निर्विघ्न चला आया है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n59/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२
विकास

भक्ति भाव के साथ ही भारतवर्ष में मूर्ति विद्या का आविर्भाव हुआ। प्राचीन काल में धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ ही बनती थीं। मूर्तिकार जिस धर्म के अनुयायी होते थे वैसी ही मूर्ति बनाते थे। भक्ति मार्ग की प्रधानता के कारण विष्णु की मूर्तियाँ भी बनने लगीं। विष्णु भगवान् की मूर्ति कब से बननी प्रारम्भ हुई ? इसके विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु घसुन्डी और नगरी के लेखों में ई० पूर्व ३००—२०० तक वासुदेव की पूजा के लिये शिलाप्राकार का उल्लेख है। इसके पहले मूर्ति का उल्लेख शिलालेखों में नहीं मिलता। ईसा की प्रथम शताब्दी में भी भक्ति की धारा अच्छी प्रकार से प्रवाहित प्रतीत होती है। इसी के प्रभाव से बुद्ध-धर्म में महायान पंथ का उदय हुआ। गंधार के तक्षणकला में तो केवल बौद्ध मूर्तियाँ ही तैयार हुईं, परन्तु गुप्त काल में हिन्दू मूर्तियाँ प्रधानतया निर्मित होने लगीं। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी में शासन करने वाले गुप्त सम्राट्—चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त—'परम भागवत' की पदवी से विभूषित थे। इससे ज्ञात होता है कि वे भागवतधर्म के अनुयायी थे। गुप्त सम्राटों के सिक्कों[1] तथा लेखों[2] में 'परमभागवत' की पदवी बहुधा उल्लिखित है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि के गुहा में (ई० सं० ४००) चतुर्भुजी मूर्ति मिली है जो सम्भवतः विष्णु की है। स्कन्दगुप्त के भतरी के लेख (जि० गाजीपुर) से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राट् ने भगवान्

---

१ गुप्तों के सौराष्ट्र के चाँदी के सिक्कों पर नामों के पहले परमभागवत की उपाधि मिलती है तथा सोने के सिक्कों पर गरुड़ध्वज अंकित है।

२ 'परमभागवत तो महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य-परमभागवत तो महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य। भतरी का लेख गुप्त लेख १३

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n60/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गिण् की मूर्ति की स्थापना की थी[1]। शार्ङ्गिण् भगवान् वासुदेव हैं। ई० सं० ४५६ में सौराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया था[2]। गुप्त काल में भगवान् विष्णु के अवतार (वराह) की भी पूजा होती थी तथा उनके निमित्त मन्दिर बनवाए गए थे। गुप्त काल में एरण (जि० सागर सी० पी०) में एक लेख मिला है[3] जिसमें मातृविष्णु तथा धान्यविष्णु के द्वारा भगवान् जनार्दन (वासुदेव-कृष्ण) के ध्वज स्तम्भ की स्थापना का वर्णन मिलता है। इस प्रकार गुप्त काल के अनेक लेख प्राप्त हैं जो कि भागवतधर्म के प्रचुर प्रचार के सूचक हैं।

विष्णु की मूर्तियाँ पहले चतुर्भुज होती थीं या द्विभुज ? इसका ठीक निश्चय नहीं हो सकता। पाँचवीं शताब्दी से पूर्व की बनी हुई विष्णु की मूर्ति कोई अभी तक नहीं मिली है। सम्भवतः पहले विष्णु की मूर्ति द्विभुज थी परन्तु बुद्ध को अवतार मान लेने पर बौद्धों के तरह हिन्दुओं ने भी बुद्ध की चतुर्भुजी मूर्ति बनाना शुरू किया। इसी का अनुसरण कर विष्णु भगवान् की भी मूर्ति चतुर्भुजी बनाई जाने लगी। सारनाथ म्यूजियम में गोवर्धन पर्वत उठाते हुए भगवान् कृष्ण की चतुर्भुजी मूर्ति है जो सम्भवतः छठीं शताब्दी की मानी जाती है। इसी शताब्दी की कृष्ण-जीवन सम्बन्धी अनेक मूर्तियाँ पहाड़पुर (राजशाही, बंगाल) में मिली हैं। इसमें एक मूर्ति राधाकृष्ण की भी है। विष्णु के दस अवतार की कल्पना के साथ इन सब अवतारों की मूर्तियाँ बनने लगीं। इलोरा

---

१ कर्तव्या प्रतिमा काचित्प्रतिमा तस्य शार्ङ्गिणः (गु० ले० न० १३)

२ दामोदर खुर का ताम्रपत्र नं० ४—५ (ई० इ० जि० १५)

३ महाराज मातृविष्णुना तस्यैवानुजेन तदनुविधायिना तत्प्रसाद परिगृहीतेन धान्यविष्णुना च मातृपित्राः पुण्यप्यायनार्थं मेष भगवतः पुण्य जनार्दनस्य ध्वज स्तम्भोऽभ्युच्छ्रितः। गु० ले० नं० १६

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n61/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गुहा में दशावतार के सुन्दर चित्र दिखाई पड़ते हैं। भिन्न भिन्न मूर्तियों के बनने के प्रवाह में भगवान् विष्णु की आठ, चौदह तथा चौबीस हाथों वाली भी मूर्तियाँ प्राप्त हैं जो दक्षिण के आमलपुर तथा अजमेर के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। उन हाथों में भिन्न भिन्न प्रकार के आयुध दिए गए हैं। उसी संग्रहालय में विष्णु की तीन मुख वाली भी मूर्ति सुरक्षित है। इसमें मध्य में विष्णु तथा दोनों ओर क्रमशः वराह और नृसिंह की मूर्तियाँ ज्ञात होती हैं। दशवीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड में विष्णु पूजा का प्रचुर प्रचार था। चन्देल राजाओं के समय में बहुत से विष्णु के मन्दिर बने जो आज भी खजुराहो में वर्तमान हैं।

दक्षिण भारत में विष्णु की पूजा बहुत पीछे प्रचलित हुई। दक्षिण में भागवत सम्प्रदाय का प्रचार नवीं शताब्दी के आस-पास हुआ, और उधर के आलवार (वैष्णव सन्त) कृष्ण के परम भक्त थे। डा० कृष्ण-स्वामी विष्णुपूजा का प्रचार दक्षिण में छठीं शताब्दी में मानते हैं। उनके कथनानुसार दक्षिण के वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय विष्णु का उपासक था। इसने गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता से विवाह किया था। बहुत सम्भव है कि गुप्तों के संसर्ग से छठीं शताब्दी में भागवत धर्म प्रचार दक्षिण में हुआ हो। इन सब विवरणों से ज्ञात होता है कि दशवीं शताब्दी तक विष्णु की पूजा कृष्ण के रूप में होती थी। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि राम के विष्णु के अवतार होते हुए भी उनके मन्दिरों तथा मूर्तियों का प्राचीन काल में कहीं पता नहीं लगता। कृष्ण के समान राम की भक्ति प्राचीन काल में रही हो, इसमें सन्देह है। इलोरा के कैलास में रामलीला का चित्र पत्थर पर खुदा हुआ मिला है। आठवीं शताब्दी में शंकर के अद्वैतवाद से भक्तिमार्ग को गहरा धक्का लगा परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ ही रामानुज ने भक्तिमार्ग का प्रचार किया तथा शंकर के मत का खण्डन किया।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n62/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने मैसूर के राजा विष्णुवर्धन को वैष्णव बनाकर दक्षिण में भक्ति का प्रचुर प्रचार किया।

इस प्रकार विष्णुपूजा वैदिक काल से प्रचलित होने पर भी महाभारत काल में सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुई। उसी समय से नारायणीय पूजा को भागवतधर्म के नाम से पुकारा जाता है जो आज तक प्रचलित है। ईस्वी की पाँचवीं शताब्दी से भागवतधर्म का साक्षात्कार मन्दिरों तथा मूर्तियों द्वारा भी प्रारम्भ हो गया। इसका निर्विघ्न विकास आधुनिक काल तक सारे भारत में असंख्य मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण से दृष्टिगोचर होता है।

२

भागवती साधना

श्रीमद्भागवत संस्कृत-धार्मिक-ग्रन्थों में एक अनुपम स्थान रखता है। उसके समान अन्य ग्रन्थ मिलना बिलकुल असम्भव-सा है—वह ग्रन्थ जिसमें पाण्डित्य तथा कवित्व दोनों का मणिकाञ्चन योग हो, सिवा इस ग्रन्थरत्न के हमारे लिये सुलभ नहीं है। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' इस सुप्रसिद्ध लोकोक्ति से ग्रन्थ की दुरूहता का परिचय भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकता है। अतः भागवत में किस साधना-पद्धति का किस प्रकार से उल्लेख किया गया है, इसका ठीक-ठीक विवेचन भागवत के पारदृश्वा विवेचक विद्वान् ही साङ्गोपाङ्गरूप से कर सकते हैं; परन्तु फिर भी अपनी बुद्धि से इस विषय का एक छोटा-सा वर्णन पाठकों के सामने इस आशा से प्रस्तुत किया जाता है कि अधिकारी विद्वान् इसका यथातथ्य विस्तृत निरूपण प्रस्तुत करें।

हमारे देखने में भागवती साधना का कुछ विस्तृत वर्णन द्वितीय स्कन्ध के आरम्भ में तथा तृतीय स्कन्ध के कपिलगीता वाले अध्यायों में किया गया मिलता है। कपिल की माता देवहूति के सामने भी यही

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n63/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न था कि भगवान के पाने का सुलभ मार्ग कौन-सा है। इसी प्रश्न को उन्होंने अपने पुत्र कपिलजी से किया। जिसके उत्तर में उन्होंने अपनी माता की कल्याण-बुद्धि से प्रेरित होकर अनेक ज्ञातव्य बातें कही हैं। परन्तु सबसे अधिक आवश्यकता थी इसकी राजा परीक्षित को। उन्होंने ब्राह्मण का अपमान किया था। सातवें दिन उन्हें अपना भौतिक पिण्ड छोड़ना था। बस, इतने ही स्वल्पकाल में उन्हें अपना कल्याण-साधन करना था। बेचारे बड़े विकल थे, बिलकुल बेचैन थे। उनके भाग्य से उन्हें उपदेष्टा मिल गये शुकदेव-जैसे ब्रह्मज्ञानी। अतः उनसे उन्होंने यही प्रश्न किया—हे महाराज, इतने कम समय में क्या कल्याण सम्पन्न हो सकता है ? पर शुकदेवजी तो सच्चे साधक की खोज में थे। उन्हें ऐसे साधक के मिलने पर नितान्त प्रसन्नता हुई। शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा कि भगवान् से परोक्ष रह कर बहुत से वर्षों से क्या लाभ है ? भगवान् से विमुख रहकर दीर्घ जीवन पाने से भला, कोई फल सिद्ध हो सकता है ? भगवान् के स्वरूप को जानकर उनकी सन्निधि में एक क्षण भी बिताना अधिक लाभदायक होता है। जीवन का उपयोग तो भगवच्चर्चा और भगवद्गुण-कीर्तन में है। यदि यह सिद्ध न हो सके, तो पृथ्वीतल पर दीर्घ जीवन भी भारभूत है। खट्वाङ्गनामक राजर्षि ने इस जीवन की असारता को जानकर अपने सर्वस्व को छोड़कर समस्त भयों को दूर करने वाले अभय हरि को प्राप्त किया। तुम्हें तो अभी सात दिन जीना है। इतने काल में तो बहुत कुछ कल्याण-साधन किया जा सकता है।

इतनी पूर्वपीठिका के अनन्तर शुकदेवजी ने भगवती भागीरथी के तीर पर सर्वस्व छोड़कर बैठने वाले राजा परीक्षित से भागवती साधना का विस्तृत वर्णन किया। अष्टांग योग की आवश्यकता प्रायः प्रत्येक मार्ग में है। इस भक्तिमार्ग में भी वह नितान्त आवश्यक है। उन्होंने कहा कि साधक को चाहिये कि किसी एक आसन में बैठने का अभ्यास

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n64/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके उस आसन पर पूरा जय प्राप्त कर ले। अनन्तर प्राणों का पूरा आयमन करे। संसार के किसी भी पदार्थ में आसक्ति न रक्खे। अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ले। इतना हो जाने पर साधक का मन उस अवस्था में पहुँच जाता है, जब उसे एकाग्रता प्राप्त हो जाती है। अपने मन को जिस स्थान पर लगावेगा, उस स्थान पर वह निश्चयरूप से टिक सकेगा। अभी भगवान् के स्थूल रूप का ध्यान करना चाहिये। भगवान् के विराट् रूप का ध्यान सबसे पहले करना चाहिये। यह जगत् ही तो भगवान् का रूप है। 'हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः'। इस जगत् के चौदहों लोकों में भगवान् की स्थिति है। पाताल भगवान् का पादमूल है, रसातल पैर का पिछला भाग है, महातल पैर की एड़ी है, तलातल दोनों जंघाएँ हैं, सुतल जानुप्रदेश है और दोनों उरु वितल तथा अतल लोक हैं। इस प्रकार अधोलोक भगवत्-शरीर के अधोभाग के रूप में हैं। भूमितल जघनस्थल है तथा इससे ऊर्ध्वलोक ऊपर के भाग हैं। सबसे ऊपर सत्यलोक या ब्रह्मलोक भगवान् का मस्तक है इस जगह पर भागवतकार ने भगवान् के विराट् रूप का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। जगत् की जितनी चीजें हैं, वे सब भगवान् का कोई-न कोई अंग या अंश अवश्य हैं। जब यह जगत् भगवान् का ही रूप ठहरा, तब उसके भिन्न-भिन्न अंगों का भगवान् के भिन्न-भिन्न अवयव होना उचित हैं। यह हुआ भगवान् का स्थविष्ठ—स्थूलतम स्वरूप। साधक को चाहिये कि इस रूप में इस प्रकार अपना मन लगावे, वह अपने स्थान से किञ्चिन्मात्र भी चलायमान न हो। जब तक भगवान् में भक्ति उत्पन्न न हो जाय, तब तक इस स्थूल रूप का ध्यान नियत रूप से साधक को अपनी नित्यक्रियाओं के अन्त में करना चाहिये। कुछ लोग इसी साधना को श्रेष्ठ समझ कर इसी का उपदेश देते हैं।

पर अन्य आचार्य अपने भीतर ही हृदयाकाश में भगवान् के स्वरूप

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n65/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ध्यान करना उत्तम बतलाते हैं और वे उसी का उपदेश देते हैं। आसन तथा प्राण पर विजय प्राप्त कर लेने के अन्तर साधक को चाहिये कि अपने हृदय में भगवान् के स्वरूप का ध्यान करे। आरम्भ करे भगवान् के पाद से और अन्त करे भगवान् के होठों की मृदुल मधुर मुसुकान से। 'पादादि यावद्धसितं गदाभृतः' का नियम भागवतकार बतलाते हैं। नीचे से आरम्भ कर ऊपर के अङ्गों तक जाय और एक अङ्ग का ध्यान निश्चित हो जाय, तब अगले अङ्ग की ओर बढ़े। इस प्रकार करते-करते पूरे स्वरूप का ध्यान दृढ़ रूप से सिद्ध हो जाता है। इस तरह के ध्यान का विशद वर्णन तृतीय स्कन्ध के २८ वें अध्याय में किया गया है। पहले-पहल उस रसिकशिरोमणि के पैर से ध्यान करना आरम्भ करे। भगवान् के चरण-कमल कितने सुन्दर हैं! उनमें वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल के चिह्न विद्यमान हैं तथा उनके मनोरम नख इतने उज्ज्वल तथा रक्त हैं कि उनकी प्रभा से मनुष्यों के हृदय का अन्धकार आप-से-आप दूर हो जाता है। श्रीभागीरथी का उद्गम इन्हीं से हुआ है। ऐसे चरणों में चित्त को पहले लगावे। जब वह वहाँ स्थिररूप से स्थित होने लगे, तब दोनों जानुओं के ध्यान में चित्त को रमावे। तदनन्तर ललित पीताम्बर से शोभित होनेवाले ओज के निधान भगवान् की जंघाओं पर ध्यान लगावे। तदनन्तर ब्रह्माजी के उत्पत्तिस्थानभूत कमल की उत्पत्ति जिससे हुई है, उस नाभि का ध्यान करे। इसी प्रकार वक्षःस्थल, बाहु, कण्ठ, कण्ठस्थ मणि, हस्तस्थित शङ्ख, चक्र, पद्म, गदा आदि का ध्यान करता हुआ भगवान् के मुखारविन्द तक पहुँच जाय। तदनन्तर कुटिल कुन्तल से परिवेष्टित, उन्नत भ्रू से सुशोभित, मीन की भाँति चपल नयनों पर अपनी चित्त-वृत्ति लगावे। मनुष्यों के कल्याण के लिये अवतार धारण करने वाले भगवान् के कृपा-रस से सिक्त, तापत्रय-नाशिनी चितवन को अपने ध्यान का विषय बनावे। अन्त में भगवान् के होठों पर विकसित होनेवाली मन्द मुसुकान में अपना

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n66/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त लगा कर बस, वहीं दृढ धारणा से टिक जाय। वहाँ से टले नहीं। वही अन्तिम स्थान ध्यान हुआ। पर इस स्थान पर निश्चित रूप से स्थित होने का प्रधानतम उपाय हुआ भक्तियोग। जब तक हृदय में भगवान् के प्रति भक्ति का सञ्चार न होगा, तब जितने उपाय किये जायँगे वे सर्वथा व्यर्थ सिद्ध होंगे। अष्टांग योग भी तो बिना भक्ति के छूछा ही है—नीरस ही है। भक्ति होने पर ही तो भक्त का प्रत्येक कार्य भगवान् की पूजा का अंग हो जाता है, अतः इस भक्ति का पहले होना सबसे अधिक आवश्यक है।

अतः भागवतकार को पूर्वोक्त प्रकार की ही साधना अभीष्ट है, क्योंकि ध्रुव आदि भक्तों के चरित में इसी प्रकार की साधना का उपयोग किया गया मिलता है।

—————

(६) श्रीकृष्ण और सुदामा

त्रिभुवन कमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिररतु मेऽनवद्या॥

आनन्दकन्द वृन्दावन-चन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण का पवित्र चरित्र सब भावों से परिपूर्ण है। जिस दृष्टि से उसे देखा जाय उसी से वह पूरा दीखता है, जिस कसौटी पर उसे कसा जाय वह पूरा उतरता है। वह वृन्दावन-विहारी मुरलीधारी वनवारी किस रस का आश्रय नहीं है, किस भाव का पात्र नहीं है? वह स्नेहमूर्ति कन्हैया प्रेम का अगाध समुद्र है, सख्य का अनन्त सागर है। आज हम अपने प्रेमी पाठकों के सामने उसकी एक सुन्दर लीला की थोड़ी-सी झाँकी करना चाहते हैं।

भगवान् की अनन्त लीलाओं में सुदामा का प्रसङ्ग भी अपनी एक

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n67/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र मोहकता धारण किये हुए है। पुराने सहपाठी सुदामा को दरिद्र-दीन-दशा में देख भगवान् के हृदय में करुण रस का जो प्रवाह उमड़ पड़ा, दया का जो दरिया बहने लगा, भगवान् कृष्णचन्द्र के रहस्यमय चरित्र में वह भक्तों के लिये परम पावन वस्तु है—दुखी आत्माओं को शान्ति देनेवाली यह एक अति अनुपम कथा है।

सुदामा की कथा

सुदामा एक अत्यन्त दीन ब्राह्मण थे। बालकपन में उसी गुरु के पास विद्याध्ययन करने गये थे जहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने जेठे भाई बलरामजी के साथ शिक्षा ग्रहण करने के लिये गये थे। वहाँ श्री कृष्णचन्द्र के साथ इनका खूब सङ्ग रहा। इन्होंने गुरुजी की बड़ी सेवा की। गुरुपत्नी की आज्ञा से एक बार सुदामा कृष्णचन्द्र के साथ जंगल से लकड़ी लाने गये। जंगल में जाना था कि आँधी-पानी आ गया। अन्धकार इतना सघन छा गया कि अपना हाथ अपनी आँखों नहीं दीखता था। रात भर ये लोग उस अन्धेरी रात में बन में भटकते रहे परन्तु रास्ता मिला ही नहीं। प्रातःकाल सदय-हृदय सान्दीपनि गुरु इन्हें खोजते जंगल में आये और घर लिवा ले गये।

गुरुगृह से लौटने पर सुदामा ने एक सती ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया। सुदामा की पत्नी थी बड़ी पतिव्रता-अनुपम साध्वी। उसे किसी बात का कष्ट न था, चिन्ता न थी, यदि थी तो केवल अपने पतिदेव की दरिद्रता की। वह जानती थी भगवान् श्री कृष्ण उसके पति के प्राचीन सखा हैं—गुरुकुल के सहाध्यायी हैं। वह सुदामा जी को इसकी समय-समय पर चेतावनी भी दिया करती थी, परन्तु सुदामा जी इसे तनिक भी कान नहीं करते—कभी ध्यान नहीं देते थे। एक बार उस पतिव्रता ने सुदामा जी से बड़ा आग्रह किया आप द्वारकाजी में श्रीकृष्ण जी से मिलिये, उन्हें अपना दुःख सुनाइये। भगवान् दयासागर

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n68/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, हमारा दुःख अवश्य दूर करेंगे। जरा हमारी इस दीन-हीन दशा की खबर अपने प्यारे सखा कृष्ण को तो देना—'या घरते न गयो कबहूँ पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती'। सुदामा जी केवल भाग्य को भरपेट कोसा करते थे—केवल कहा करते थे कि—

पावैं कहाँ ते अटारी अटा जिनको है लिखी विधि टूटिय छानी।
जो पै दरिद्र ललाट लिखो कहु को त्यहि मेटि सकैगो अयानी॥

परन्तु इस बार उस साध्वी के सच्चे हृदय से निकली प्रार्थना काम कर गयी। सुदामा जी द्वारकाधीश के पास जाने के लिये तैयार हो गये। उपायन के तौर पर इधर-उधर से माँग कर पत्नी ने चावल की पोटली पतिदेव के हवाले की। सुदामा जी पोटली को बगल में दबाये द्वारका के लिये रवाना हुए परन्तु बड़े अचम्भे की बात यह हुई कि जो द्वारका सुदामा की कुटिया से कोसों दूर थी वह सामने दीखने लगी—उसके सुवर्ण-जटित प्रासाद आँखों को चकाचौंध करने लगे। झट से सुदामा जी द्वारका पहुँच गये।

पूछते-पूछते भगवान् के द्वारे पहुँचे। द्वारपाल को अपना परिचय दिया। भगवान् के दरबार में भला दीनःदुखी को कौन रोक सकता है? द्वारपाल झट से श्रीकृष्ण के पास सुदामा जी के आगमन की सूचना नरोत्तमदासजी के शब्दों में यों देने गया—

शीश पगा न झँगा तन में प्रभु जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानहु की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूँछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

भगवान् ने अपने पुराने मित्र को पहचान लिया। वे स्वयं आकर महल में लिवा ले गये। रत्नजटित सिंहासन पर बैठाया, अपने हाथों से उनका पाँव पखारा, प्राचीन विद्यार्थी-जीवन की स्मृति दिलायी और भक्ति के साथ लाये हुए भाभी के द्वारा अर्पित चावलों की एक मुट्ठी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n69/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी मुँह में डाली, दूसरी मुट्ठी के समय रुक्मिणी ने उन्हें रोक दिया। सुदामा भगवान् के महल में कई दिनों तक सुख-पूर्वक रहे; श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम से उन्हें विदा किया। सुदामा रास्ते में चले जाते थे और मन-ही-मन कृष्ण की बद्धमुष्टिता पर खीझते थे। जब अपने घर पहुँचे तो उन्हें अपनी टूटी मड़ैया नहीं दीख पड़ी। उसके स्थान पर एक विशालकाय प्रासाद खड़ा पाया। पत्नी ने पति को पहचाना। जब वे महल के भीतर गये तब अपना ऐश्वर्य देख मुग्ध हो गये और भगवान् की दानशीलता और भक्तवत्सलता का अवलोकन कर अवाक् हो रहे। बहुत दिनों तक अपनी साध्वी पत्नी के साथ सुखपूर्वक दिन बिता अन्त में भगवान् के चिरन्तन सुखमय लोक में चले गये।

सुदामा की भक्त-मनोहारिणी कथा संक्षेप में यही है जो ऊपर दी गयी है। भगवान् की दयालुता का यह परम सुन्दर निदर्शन है। यह कथा वास्तव में सच्ची है। साथ-ही-साथ यह एक आध्यात्मिक रहस्य की ओर संकेत कर रही है जो विचारशील पाठकों के ध्यान में थोड़े-से मनन से स्वयं आ सकता है।

आध्यात्मिक रहस्य

अब पाठक जरा विचारिये कि यह सुदामा कौन हैं? उनकी पत्नी कौन हैं? वे तन्दुल कौन-से हैं? इत्यादि। यदि अन्तःप्रविष्ट होकर देखा जाय तो सुदामा की कथा में एक आध्यात्मिक रूपक है—भक्त और भगवान् के परस्पर मिलन की एक मधुर कहानी है। इसी रहस्य का किंचित् उद्घाटन थोड़े में किया जायगा।

'दामन' शब्द का अर्थ है—रस्सी, बाँधने की रस्सी। यशोदा मैया के द्वारा बाँधे जाने के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण का एक नाम है—दामोदर। इस प्रकार 'सुदामा' शब्द का अर्थ हुआ रस्सियों के द्वारा अच्छी तरह बाँधा गया पुरुष अर्थात् बद्धजीव, जो सांसारिक मायापाश में आकर ऐसा बँध गया है कि उसे अन्य किसी भी वस्तु की चिन्ता

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n70/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं। सुदामा सान्दीपनि-मुनि के पास कृष्ण का सहाध्यायी है; जीव भी आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले ज्ञान के सङ्ग होने पर उस जगदाधार परब्रह्म का चिरन्तन मित्र है—सखा है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया।' ज्ञान का आश्रय जब तक जीव को प्राप्त है, तब तक वह अपने असली रूप में है, वह श्रीकृष्ण का—परब्रह्म का—सखा बना हुआ है, परन्तु ज्यों ही दोनों का गुरुकुलवास छूट जाता है—वियोग हो जाता है, जीव संसारी बन जाता है, वह माया के बन्धन में आकर सुदामा बन जाता है। वह अपने सखा को बिलकुल भूल जाता है। सुदामा की पत्नी बड़ी साध्वी है—जीव भी सात्त्विकी बुद्धि के संग चिरसुखी रहता है। सात्त्विकी बुद्धि जीव को बारम्बार उसके सच्चे मित्र की स्मृति दिलाया करती है। जीव संसार में पड़ कर सब को—अपने सच्चे रूप को—भूल ही जाया करता है, केवल सत्त्वमयी बुद्धि का जब जब विकास हुआ करता है, वह जीव को अपने प्राचीन स्थान की ओर लौट जाने के लिये—उसे चिरन्तन मित्र परब्रह्म की सन्निधि पाकर अपने समस्त बन्धनों को छुड़ा देने के लिये—बारम्बार याद दिलाया करती है। सुदामा जी सदा अपने कुटिल भाग्य को कोसा करते थे। जीव भी भाग्य को उलाहना देकर किसी प्रकार अपने को सन्तुष्ट किया करता है।

आखिर सुदामा जी पत्नी के द्वारा संगृहीत चावल को लेकर द्वारका चले। चावल सफेद हुआ करता है। चावल से अभिप्राय यहाँ पुण्य से है। पुण्य का सञ्चय भी सात्त्विकी बुद्धि किया करती है। जीव जब जगदीश से मिलने के लिये जाता है तब उसे चाहिये उपायन। उपायन भी किसका? सुकर्मों का—पुण्य का। सुकर्म ही सुदामा जी के तण्डुल हैं। जीव जब तक उदासीन बैठा हुआ है—अकर्मण्य बना हुआ है, उस जगदीश की द्वारका कालों कोसों दूर है, परन्तु ज्यों ही वह पुण्य की पोटली बगल में दबाये सुबुद्धि की प्रेरणा से सच्चे भाव से उसकी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n71/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज में चलता है वह द्वारका सामने दीखने लगती है। भला, वह भगवान् दूर थोड़े ही हैं? दूर हैं वह अवश्य, यदि भक्त में सच्ची लगन न हो; परन्तु यदि हम सच्चे स्नेह से अपने अन्तरात्मा को शुद्ध बना कर उसकी खोज में निकलते हैं तो वह क्या दूर हैं? गरदन झुकाई नहीं कि वह दीखने लगे। 'दिल के आइने में है तसवीरे यार। जब कभी गरदन झुकाई देख ली ॥' बाबा तुलसीदास जी भी कह गये हैं—

सनमुख होय जीव मोहि जबहीं। कोटि जन्म अघ नासौं तबहीं ॥

जो मनुष्य किसी वस्तु से विमुख है, समीप में होने पर भी वह चीज दूर है, परन्तु सम्मुख होते ही वह वस्तु समाने झलकने लगती है। भक्तजन को चाहिये कि सुकर्मों की पोटली लेकर भगवान् के सम्मुख हों, भगवान् दूर नहीं हैं।

सुदामा जी द्वारका में पहुँच गये, द्वारपाल से कहला भिजवाया, श्रीकृष्ण स्वयं पुरानी पहचान याद कर दौड़े हुए आये। जीव तो भगवदंश ही हैं, वह तो उसके साथ सदा विहार करनेवाला है। उसके अन्तर्मुख होते ही भगवान् स्वयं उसे लिवा ले जाते हैं। हिन्दी-कवियों ने लिखा है सुदामा की दीन-दशा देख श्रीकृष्ण बहुत रोये—मनों आँसू बहाया। 'देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करि के करुणानिधि रोये। परन्तु भागवत में लिखा है—

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥

अपने प्यारे सखा को इतने दिनों के बाद मिलने से श्रीकृष्ण अत्यन्त आह्लादित हुए—सुदामाजी के अंग स्पर्श से भगवान् आनन्दमग्न हो गये; उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। जिस प्रकार भगवान् को पाकर भक्तजन परम निर्वृति को पाते हैं, उसी प्रकार भक्त के सङ्ग से भी उस आनन्दमय जगदीश के हृदय में आनन्द की लहरी उठने लगती

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n72/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। क्या भक्त और भगवान् भिन्न-भिन्न हैं ? 'तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्' (नारदसूत्र)।

सुदामाजी से श्रीकृष्ण पूछते हैं—कुछ उपायन लाये हो ? भक्त-जनों के द्वारा अर्पित की गयी थोड़ी भी चीज जो भगवान् बहुत बड़ी समझते हैं—

अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

सुदामा जी लज्जित होते हैं कि श्रीपति को भला ये चावल क्या दूँ ? परन्तु भगवान् लज्जाशील सुदामा की काँख से पोटली निकाल चावल खाने लगते हैं। जीव भी बड़ा लज्जित होता है कि उस जगदीश के सामने अपने सुकर्मों को क्या दिखलाऊँ, परन्तु भगवच्चरण में अर्पित थोड़ा भी कर्म बड़ा महत्त्व रखता है। भगवान् उसके कियदंश से ही भक्तजन के मनोरथ परिपूर्ण करने में समर्थ हैं—सर्वस्व को स्वीकार कर समग्र त्रैलोक्य का आधिपत्य—स्वीयपद भी देने के लिये तैयार हो जाते हैं, परन्तु श्री—भगवान् की ऐश्वर्य शक्ति-ऐसा करने नहीं देती। अस्तु, सुदामा को चाहिये क्या ? वह तो इतने से कृतकृत्य हो गया और उसने भगवल्लोक को प्राप्त कर लिया। भक्त को भी चाहिये क्या ? भगवान् की सन्निधि में आकर अपने सञ्चित कर्मों को—'पत्रं पुष्पं' को—उन्हें अर्पण कर दिया। सुदामा की भाँति जीव कुछ देर तक संशय में रहता है कि अर्पित वस्तु को जगदीश ने स्वीकार किया या नहीं, परन्तु जब जीव अपनी कुटिया—भौतिक शरीर को देखता है, तब उसे सर्वत्र चमकती हुई पाता है, जन्म-जन्म की मलिनता

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n73/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुल जाती है, वह पवित्र भवन बन जाता है, जिस में वह अपनी सुबुद्धि के साथ निवास करता हुआ विषयों से विरक्त रह परम सौख्य का अनुभव करता है। भगवान् की अनुकम्पा का फल देर से थोड़े ही मिलता है! भक्तजन इसी शरीर में उनका साक्षात् अनुभव करते हैं।

प्रेमीजन! हम सब को सुदामा बनना चाहिये। हम अपने-अपने तण्डुल लेकर भगवान् के सामने चलें, वह करुणावरुणालय उसे अवश्य स्वीकार करेंगे, हमारा दुःख दूर कर देंगे, मायापाश से हमें अवश्य छुड़ा देंगे, परन्तु हम यदि सच्चे भाव से अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को उसी की सेवा में लगा दें। भागवत के इन पद्यरत्नों को स्मरण कीजिये —

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः॥
शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत् तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम्॥

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n74/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैव-धर्म

(७) शिवोपासना की प्राचीनता

भगवान् शिव की पूजा का पौराणिक काल से बहुत महत्त्व चला आया है तथा महादेवजी की गणना तीन सर्वश्रेष्ठ देवताओं में है। प्रायः यह सब की धारणा है कि शिव की पूजा इसी समय से प्रचलित हुई और पहले महादेवजी की पूजा इस रूप में नहीं थी। हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों को न छेड़कर इस छोटे से लेख में शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्रादि पुरातत्त्वविषयक सामग्रियों से शिवोपासना की प्राचीनता दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा।

वैदिक काल में शिव की पूजा आधुनिक रूप में नहीं थी और न महादेव या शिव-शब्द का अधिक प्रयोग ही होता था। ऋग्वेद में 'रुद्र' शब्द का शिव के लिये प्रयोग मिलता है और जो विशेषण शिवजी के लिये प्रयुक्त हुए हैं वे प्रायः रुद्र के लिये मिलते हैं। (ऋ० १०।९२।९ तथा १।११४।९)

सर रामकृष्ण भण्डारकर ने बहुत विस्तार के साथ यह दिखलाया है कि रुद्र का रूप आगे चल कर शिव के रूप में कैसे बदला तथा महाभारत के समय शिवलिङ्ग की पूजा कैसे प्रचलित हुई। [भण्डारकर— 'वैष्णव तथा शैवपन्थ', पृष्ठ १४५, १६०]

भारत के इतिहास में पुरातत्त्व का बहुत बड़ा स्थान है। इससे भारतीय सभ्यता की विशेषता का बहुत कुछ पता चला है। आधुनिक मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पा की खुदाई ने भारतीय धार्मिक इतिहास पर बहुत प्रकाश डाला है। सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यता में शिव-पूजा की

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n75/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषता दिखलायी पड़ती है। यहाँ पर दो तरह की शिव-मूर्तियाँ मिली हैं। पहली मूर्ति जो मोहन-जो-दड़ो की मुहरों में मिलती है योगावस्था में बैठे 'ध्यानी' शिव की है।

इसमें शिवजी बीच में बैठे हैं तथा उनके चारों ओर पशु की आकृतियाँ हैं। शिव को 'पशुपतिनाथ' कहते हैं, अतः बाघ, हाथी, गैंडा तथा भैंसा 'ध्यानी' शिव के चारों तरफ खड़े हैं। त्रिशूल की जगह शिव के मस्तक पर तीन आकृतियाँ हैं जो आगे चल कर अलग त्रिशूल का आकार धारण कर लेती हैं। उस चौकोन मुहर में शिव के सिंहासन के नीचे दो मृग भी हैं। दूसरी मुहर में शिव के तीन मुख हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का बोध कराते हैं।

'ध्यानी' शिव की आकृति के सिवा मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पा में बहुत-सी पत्थर आदि की सामग्रियाँ मिली हैं जो शिवलिङ्ग की मूर्ति के समान हैं। इससे यह स्वतः प्रमाणित होता है कि उस काल में भी शिवलिङ्ग की पूजा होती थी। ऋग्वेद में दो जगह (७।२१।५, १०।१०। ९९) 'शिश्न देवाः' शब्द आया है। इसका अर्थ पश्चिमीय विद्वान् यह करते हैं कि अनार्य लोग शिवलिङ्ग के पूजक थे। आर्यों में जो शिवलिङ्ग की पूजा देखने में आती है वह अनार्यों से सीखी गयी है। परन्तु पश्चिमीय विद्वानों की यह धारणा युक्तिसङ्गत नहीं है। यास्क तथा सायण ने शिश्न का अर्थ 'अब्रह्मचर्य' किया है। अतः इसका दूसरा अर्थ जो पाश्चात्यों ने किया है, ठीक नहीं है। अभी तक इसके लिये पर्याप्त प्रमाण भी नहीं मिले हैं जिनसे यह सिद्ध हो सके कि आर्यों ने शिवलिङ्ग की पूजा अनार्य लोगों से सीखी है। विद्वानों में अभी तक इस विषय पर मतभेद है कि सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यता वैदिक सभ्यता से पहले की है या पीछे की। परन्तु अनेक कारणों से यह सभ्यता वैदिक काल से पीछे की मानी जा सकती है। सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यता आज से ५ या ६ हजार वर्ष पूर्व उस प्रदेश में प्रचलित थी। अतः शिव-पूजा

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n76/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी उतनी ही पुरानी मानने में कोई आपत्ति नहीं है। पुरातत्त्व की खोज में इससे प्राचीन कोई स्थान नहीं मिला है जो हिन्दू-सभ्यता पर प्रकाश डालता हो। ऐतिहासिक काल से बौद्धधर्म की प्रबलता हुई। इसी काल में हिन्दू-धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त पुरातत्त्व विशारदों को इस काल की बौद्ध धर्म-सम्बन्धी भी बहुत-सी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ईसा से २०० वर्ष पूर्व जब पुष्पमित्र सुंग ने ब्राह्मण-धर्म का पुनरुद्धार किया; तब से ब्राह्मण-धर्म की प्रबलता दिनोंदिन बढ़ती ही गयी।

ईसा से पूर्व पहली शताब्दी में बैक्ट्रियन तथा शक राजाओं ने उत्तर-पश्चिम भारत पर राज्य किया। उनके सिक्कों पर वृषभ के चिह्न अङ्कित है। राजा अपलदतस तथा शक राजा मोस (Maues) की मुद्रा पर का वृषभ-चिह्न शिव के नन्दी का द्योतक है, इस सम्बन्ध में प्रोफेसर रैपसन (Rapson) महोदय को सन्देह है। परन्तु यह सन्देह युक्तिसङ्गत नहीं मालूम पड़ता। इतिहासज्ञ लोग इस बात को जानते हैं कि बौद्धकाल से देवता को छोड़ कर उसके चिह्न (Symbol) की पूजा की जाने लगी। इसी प्रथा के अनुसार शिव की पूजा छोड़ कर लोग उन दिनों उनके चिह्न, नन्दी की पूजा करने लगे। अतः उस समय की मुद्राओं पर अङ्कित वृषभ को शिव का प्रतीक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। कुछ समय के उपरान्त स्वयं शिव की मूर्ति सिक्कों पर अङ्कित होने लगी। पार्थियन (Parthian) राजा गोंडाफरनिस के सिक्के पर शिव की मूर्ति अङ्कित है, जिससे यह सिद्ध है कि उन दिनों उस देश में शिव-पूजा का विशेष प्रचार था। [देखिये लाहौर म्यूजियम के सिक्कों का सूचीपत्र प्लेट १५, नं० ४३ तथा गार्डनर प्लेट २२, नं० ८]

ईसवी सन् की पहली शताब्दी में कुषाणवंशीय नरेशों ने एक बहुत विस्तृत राज्य कायम किया, जिसका विस्तार काशी तक था। राजा वीम ग्रडफाइसीस तो शैव-धर्म को स्वीकार कर महादेव का उपासक बन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library Page 75 of 320
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n77/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, जैसा कि उसके सिक्कों को देखने से प्रतीत होता है। उनमें एक तरफ राजा का चित्र है, दूसरी तरफ महादेवजी नन्दी को लिये खड़े हैं। उनमें शिवजी त्रिशूल तथा डमरू लिये दिखलाये गये हैं। राजा वीम का एक भी सिक्का ऐसा नहीं है जिस पर शिव तथा नन्दी की मूर्ति न हो। उसके उत्तराधिकारी, महाराजा कनिष्क ने तथा उसके वंशजों ने भी इसी प्रकार के सिक्के चलाये। महाराजा कनिष्क की बौद्धधर्म स्वीकार करने की प्रसिद्धि है, परन्तु इसके सिक्कों पर भी शिव की मूर्ति पायी जाती है। उनमें शिवजी 'ईसो' (Oesho) या ईश के नाम से अङ्कित हैं। उस मूर्ति में महादेवजी के चार भुजाएँ हैं, जिनमें से एक में डमरू साफ दिखायी पड़ता है। [देखिये लाहौर म्यूजियम की मुद्राओं की सूची—प्लेट १७, नं० ६५]।

कुषाणवंशीय नरेशों के सिक्कों पर शिव के लिये दूसरा नाम 'मया-सेनो' (Maaceno) यानी 'महेश' भी आया है। कुषाणवंशीय वासुदेव के सिक्के पर तो केवल चतुर्भुज शिव की मूर्त्ति तथा नन्दी की आकृति दिखलायी पड़ती है। उस समय शिव की पूजा इतनी महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी, अथवा इसका इतना अधिक प्रभाव था कि करीब दो सौ बरस तक (दूसरी तथा तीसरी शताब्दी में) 'छोटे' कुषाण तथा 'किदार' कुषाणों ने निरन्तर शिव को ही अपनी मुद्राओं पर स्थान दिया। यद्यपि पंजाब के पूरबी हिस्से में लक्ष्मी का प्रभाव अधिक था, तथापि उस समय शिवोपासना की ही प्रधानता थी। अवश्य ही इन तीन शताब्दियों में लिङ्ग-पूजा की प्रधानता नहीं दिखलायी पड़ती, यद्यपि इसके बाद कई सौ वर्ष तक लिङ्ग-पूजा की ही प्रधानता रही ऐसा प्रतीत होता है।

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ने नागवंश नामक एक नये राजवंश का उल्लेख किया है, जिसने कुषाणों के बाद तथा गुप्तराज्य के उत्थान के पहले राज्य किया। इस वंश के राजा मध्य-भारत में राज्य करते थे।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n78/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इस वंश के आदिपुरुष ने शिव-लिङ्ग को अपने कन्धे पर रख कर तथा शिवजी को परितुष्ट कर अपने वंश की स्थापना की थी जिसका पता निम्नलिखित शिलालेख से लगता है — 'अंसभारसन्निवेशितशिवलिङ्गोद्वहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादितराज-वंशानांपराक्रमाधिगतभागीरथ्यमलजलमूर्द्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेधाव-भृथस्नानांभारशिवानाम्' [ना० प्र० पत्रिका-भाग १३, अंक १]। इसीलिये इस वंश का नाम 'भारशिव' भी पड़ा। इससे ज्ञात होता है कि नागवंशी नरेशों ने शिव को अपना आराध्यदेव माना था तथा वे शिवलिङ्ग की पूजा किया करते थे। काशी में एक मूर्त्ति भी मिली है जिसमें मस्तक पर शिवजी की पिण्डी लिये हुए किसी पुरुष की आकृति बनी हुई है।

['गङ्गा'-पुरातत्त्वाङ्क, पृष्ठ ६९]।

इनके बाद उत्तरी भारत में गुप्त-साम्राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। यह तो प्रसिद्ध है कि गुप्त वंशीय नरेश वैष्णव थे तथा उनके नाम के आगे हमेशा 'परमभागवत' की पदवी का उल्लेख मिला है। इस काल में विष्णुपूजा का उत्कर्ष था, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस समय शिवकी पूजा नहीं होती थी।

पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज से सिद्ध है कि गुप्तकाल में विष्णु पूजा के साथ-साथ शिव की भी पूजा होती थी। उस समय का एक शिवलिङ्ग मिला है जो लखनऊ के म्यूजियम में रक्खा है। इसको महाराजा कुमार गुप्त ने तैयार कराया था। यह लिङ्ग ऊपर गोलाकार शिव-लिङ्ग है तथा इसके नीचे का हिस्सा चपटा है जिस पर एक लेख खुदा हुआ है। इसे 'करमदण्डा की प्रशस्ति' कहते हैं। उस काल में शिवपूजा का प्रचार इतना बढ़ गया था कि जिन बाहरी जातियों ने भारत पर आक्रमण किया उन्होंने भी शैवधर्म को स्वीकार किया। गुप्तवंशी राजा स्कन्दगुप्त के समय में हूण लोगों ने कई बार आक्रमण किया परन्तु उसने अपनी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n79/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरता के द्वारा उन्हें पीछे भगा दिया। कुछ काल के बाद हूणों ने मध्य भारत में एक सुदृढ़ राज्य स्थापित कर लिया। तोरमाण के लड़के मिहिरकुल ने एक छोटा सिक्का चलाया था जिस पर एक तरफ वृषभ की आकृति बनी हुई है तथा उसके नीचे 'जयतु वृषः' लिखा हुआ है। मुद्रा पर राजा की आकृति के सामने भी एक वृषांकित ध्वजा का चिह्न है। इससे प्रतीत होता है कि हूणों ने महादेवजी को ही अपना आराध्यदेव माना तथा वे उनकी पूजा-अर्चा करते थे।

गुप्तों के ह्रास के अनन्तर उत्तरी भारत में छठी शताब्दी में मौखरि राजाओं ने बहुत बड़ा राज्य स्थापित किया था। मौखरि-वंश के राजाओं के शिलालेखों में राजाओं के नाम के साथ साथ 'परम माहेश्वर' की उपाधि मिलती है। मध्यप्रान्त के असीरगढ़ नामक स्थान में इन्हीं राजाओं की एक मुहर मिली है जिस पर नन्दी का चित्र है। नन्दी के साथ दो सेवक भी हैं। इससे ज्ञात होता है कि मौखरि शिव के उपासक थे। उन्हीं दिनों बंगाल में राजा शशांक ने अपनी महत्ता स्थापित की। महाकवि बाण ने अपने 'हर्षचरित' में वर्णन किया है कि शशांक ने मौखरि-वंश के अन्तिम राजा को मार डाला। उसने बौद्धधर्म का नाश करने की बहुत कोशिश की। कहा जाता है कि वह शैवधर्म को माननेवाला था। इसलिये उसने बोधगया से बोधिवृक्ष को उखड़वा कर फेंकवा दिया। इस बात की पुष्टि उसके सिक्कों से होती है। उसके सिक्कों पर नन्दी सहित शिव का चित्र अङ्कित है। शशाङ्क ने केवल इसी तरह के सिक्के चलाये जिससे यह सिद्ध होता है कि वह शिव का बहुत बड़ा उपासक था तथा इसीलिये उसने बौद्धधर्म को निर्मूल करने का प्रयत्न किया। अलन साहब (Allan) ने अपनी 'गुप्त सिक्कों की सूची' की भूमिका के पृष्ठ १०१ में यह बतलाया है कि वलभी के राजाओं ने भी उस शताब्दी में वृषभ के चित्र को अपने झण्डे पर स्थान दिया था। इसका कारण यही हो सकता है कि

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n80/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वलभी (गुजरात) के राजाओं ने शैवधर्म को स्वीकार किया हो। सातवीं शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक सारे भारत में शिव पूजा की ही प्रधानता रही। ओहिन्द के राजाओं ने भी शिव को अपना उपास्य देव माना तथा अपने सिक्कों पर वृषभ का चित्र रक्खा। इसकी प्रधानता इतनी बढ़ी कि सब राजपूत नरेशों ने भी इसी सिक्के की नकल पर अपना सिक्का चलाया। नवीं सदी में काश्मीर में शिव की पूजा जोरों पर थी। राजा अवन्तिवर्मन् के मन्त्री सूर ने एक मन्दिर में भूतेश्वर महादेव की मूर्ति स्थापित करवायी। ये राजा प्रायः शैव ही थे, यद्यपि उनके धर्म के विषय में कोई विशेष प्रमाण नहीं है। इसी समय में स्वामी शङ्कराचार्य का दक्षिण में प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने हिन्दूधर्म का शङ्ख फूँका। दक्षिण में शिव की प्रधानता दिनों दिन बढ़ने लगी। स्वामीजी के उपदेश से राजा, रङ्क, सभी शिव के उपासक बन गये। यों दसवीं शताब्दी में चोलवंशीय महाराज 'राजराजा' ने तंजौर में अपने नाम पर राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण करवाया। ऐसे विशाल मन्दिर हिन्दूकाल में कम देखने को मिलते हैं।

इसके बाद शिव की पूजा का प्रचार इतना बढ़ा तथा शिव-मन्दिर का निर्माण इतने अधिक पैमाने में होने लगा कि उसका वर्णन इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता। दसवीं सदी के पीछे प्रायः शिव की ही प्रधानता रही।

ऊपर लिखे पुरातत्त्व के प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि शिव की उपासना बहुत प्राचीन है। जहाँ तक प्रमाण मिले हैं, आज से छः हजार वर्ष पूर्व मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पा में शिव की पूजा होती थी और उसके बाद भी शिव-पूजा की परम्परा बराबर जारी रही। केवल-गुप्त नरेशों को छोड़कर प्रायः सभी राजाओं ने शैव-धर्म को स्वीकार कर शिव की पूजा का प्रचार किया था। पौराणिक काल से इस शिव-पूजा को स्वामी शंकराचार्य के अनन्तर प्रचलित हुई बतलाना नितांत दुःसाहस है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n81/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) शिवरात्रि का सांस्कृतिक महत्त्व

भारत की संस्कृति आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। धर्म भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है तथा तत्त्वज्ञान इसका प्राण है। धर्म तथा तत्त्वज्ञान के मंजुल समन्वय ने भारतीय संस्कृति को इतना सजीव तथा समर्थ बनाया है कि विधर्मियों के नाना आक्रमणों के थपेड़े खाने पर भी, विषम परिस्थिति के विरोध उपस्थित करने पर भी भारत की संस्कृति आज भी इस भूतल पर अपनी विपुल विशिष्टता धारण करती हुई जीती है तथा मानवों के कल्याण के लिए उचित मार्ग तथा विधि-विधान की मार्ग-प्रदर्शिका बनी हुई है। हमारी संस्कृति तथा सभ्यता में जीवट तथा जीवनी शक्ति भरनेवाले धार्मिक संप्रदायों में शैव धर्म अन्यतम है।

शैव धर्म प्राचीनता तथा विस्तृति की दृष्टि से भारतवर्ष में ही क्या, अन्य देशों में भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। जो लोग ठोस वस्तु के प्रमाण पर ही अपनी निष्ठा अड़ानेवाले हैं उन्हें टाँक लेनी चाहिए कि मोहन-जो-दड़ो से प्राप्त प्राचीनतम मूर्तियों में योगी शंकर की मूर्ति अन्यतम है। योग-मुद्रा में निर्मित मूर्ति के शंकरत्व का प्रमाण उसके पास ही निर्मित रमणीय तथा विपुलकाय वृषभ-मूर्ति (नंदी) की अमिट सत्ता है। इस प्रकार आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व शंकर की मूर्ति की उपलब्धि शैव मत को प्राचीनतम धर्म घोषित करने में सर्वथा पर्याप्त मानी जा सकती है। व्यापकता की दृष्टि से भी इसका प्रचार-क्षेत्र किसी भी धर्म से कम नहीं है। शैव धर्म का शंखनाद आज भी आसेतुहिमाचल उन्नादित हो रहा है। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक, सिंधु से लेकर आसाम तक भारतवर्ष के इस

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n82/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंबे छोर में यह धर्म नानारूपों में अपना सिक्का जमाए बैठा है। इतना ही नहीं, बृहत्तर भारत में—मलय, जावा, सुमात्रा आदि पूर्वी द्वीप-समूहों में इसी धर्म की तूती बोलती रही है। भारतीय आर्यों ने प्राचीन काल में ही इन उपनिवेशों में शैव धर्म का प्रसार किया जिसकी अमिट छाप इन देशों की स्थापत्य-कला में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। इन द्वीपों में शैव धर्म की ही प्रधानता कभी थी जिसकी गवाही आज भी यहाँ के विशालकाय शैव मंदिर स्पष्ट रूप से दे रहे हैं।

शैवधर्म के महनीय उत्सवों तथा पर्वों में सबसे श्रेष्ठ है शिवरात्रि। शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशी को पड़ता है और उसी दिन यह विशेष समारोह से सर्वत्र भारतवर्ष में मनाया जाता है। इस दिन कई दिनों पूर्व से ही शिवालयों को सजाया जाता है तथा भगवान शंकर की पुष्प, बिल्वपत्र आदि उपकरणों से विशिष्ट पूजा की जाती है तथा पाँचों संध्याओं में पूजन तथा आरती का विधान माना जाता है। शिवरात्रि का दूसरा नाम है महारात्रि और इस रात्रि को रात भर जागरण करने के विधान को आस्तिक जनता आज भी अटूट श्रद्धा से तथा अदम्य उत्साह से मनाती है। काशी में विश्वनाथजी के मंदिर में श्रद्धालु जनता उस रात को इकट्ठी होती है और जब भक्ति गद्गद कंठ से शंकर की स्तुति में—

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेंद्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि॥

इस पद्य का पाठ करती है तथा 'हरहर महादेव' 'जय हो बाबा विश्वनाथ की' का उच्चैः स्वर से घोष करती है, तब अजीब दृश्य

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n83/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित हो जाता है। भक्तवत्सल करुणावरुणालय आशुतोष की उज्ज्वल मूर्ति भक्तों के लोचनों के सामने झूलने लगती है। जागरण तथा कीर्तन ही शिवरात्रि का विशिष्ट विधान है। जागते हुए शंकर की पूजा-अर्चा का अनुष्ठान प्रत्येक हिंदू के लिए और विशेषतः शिवभक्त के लिए, शिवरात्रि को नितांत आवश्यक माना जाता है। यही शिवरात्रि का सामान्य परिचय है।

शिवरात्रि प्रतिवर्ष आती है और जानकार तथा विज्ञ पुरुषों को अपना संदेशा सुना जाती है। यह संदेश क्या है ? तथा शिवरात्रि का सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व कौन-सा है ? इसी विषय का विवेचन अब प्रस्तुत किया जाता है। 'शिव' तथा 'रात्रि' शब्दों के अर्थ को ठीक-ठीक जानने पर ही इस तत्त्व का सद्यः स्फुरण हो सकता है। 'शेरते अस्मिन् प्राणिनः इति शिवः' अर्थात् जिसमें जगत् सोता है वही है शिव। यह जगत् नितांत जड़ है। इसमें स्वयं अपने कार्य के संपादन की योग्यता नहीं है। वह तत्व जो इस संसार का अधिष्ठान है, प्रलयकाल में जिसमें यह जगत् लीन हो जाता है तथा सृष्टिकाल में जो इस संसार के जीवों को कार्य में लगाता तथा शुभ कर्मों की प्रेरणा करता है वही है शिव अर्थात् परात्पर ब्रह्म, परमेश्वर। वही काल या महाकाल की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। काल तथा शिव में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। काल के स्वरूप-वर्णन में अथर्ववेद कहता है—

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः
तेनेसितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥

काल की ही अध्यक्षता में यह जगत उत्पन्न होता है तथा उसमें प्रतिष्ठित होता है—यह काल का रूप-निर्देश शंकर का ही प्रकारांतर से निर्देश है। विशाल तथा विपुल विरोधों का जो चरम अवसान है वही

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n84/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर है। कालिदास ने ठीक ही कहा है कि भगवान शंकर के यथार्थ रूप को समझनेवाले विरले ही हैं 'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः'। वे स्वयं दरिद्र हैं, परन्तु भक्तों के ऊपर प्रसन्न होकर लक्ष्मी की वर्षा करते हैं। त्रिलोकीनाथ होते हुए भी श्मशान में निवास करते हैं। वे अपवित्र वेष धारण करते हैं, परंतु ताण्डव के समय उस नटराज के शरीर से गिरे हुए चिताभस्म को अपने उत्तमांग में मलने के लिये समग्र देवतालोग लालायित रहते हैं—

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते
ध्रुवं चिता-भस्म-रजो विशुद्धये।
तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं
विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥

(कुमारसंभव ५।७९)

भगवान् शंकर की मूर्ति कितनी आध्यात्मिकता से भरी है, उनका भस्मधवलित भुजंगभूषित शरीर, वृषभ की सवारी, ललाट पर विराजने वाला चंद्रमा, जटाजूट में बहनेवाली गंगा, भ्रूमध्य में जगनेवाला तृतीय नेत्र—भगवान् शंकर का यह साकार रूप रहस्यों का प्रतीक है। मृत्यु का प्रतीक बना हुआ सर्प निर्वीर्य बनकर भगवान शिव के शरीर को विभूषित करता है। इसका तात्पर्य है कि वे मृत्यु को जीतनेवाले हैं, मृत्युंजय हैं। ललाट पर विराजमान चंद्रमा उनके त्रिविध संताप के निवारक होने की सूचना देता है। त्रिलोचन का तृतीय अनलात्मक नेत्र ज्ञान का प्रतीक है। काम का साम्राज्य तभी तक रहता है जबतक यह ज्ञान-नेत्र उद्बुद्ध नहीं रहता। 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा' (४।३७) गीता जिस ज्ञानाग्नि के सब कर्मों को भस्मसात् करने का निर्देश करती है उसी का प्रतीक है शिव का तृतीय नेत्र जिसके खुलते ही देवताओं के हजार अनुनयविनय करने पर भी काम भस्म का

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n85/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विराट् स्तूप बनकर भूतलशायी बन गया था। कालिदास के शब्दों में यह घटना इस प्रकार निर्दिष्ट की गई है—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति
यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा
भस्मावशेषं मदनं चकार॥

शंकर का वाहन है वृषभ। श्वेतकाय वृषभ है धर्म का प्रतीक। कल्याण की आधारभूमि धर्म ही होता है। धर्म के ऊपर जबतक शंकर अपना आसन नहीं जमाते तबतक क्या जगत् में वास्तव कल्याण उत्पन्न हो सकता है? कभी नहीं। शंकर का नग्नरूप—आवरण से विरहित रूप उपनिषदों के 'नेति-नेति' शब्दों की ओर संकेत करता है। आवरण का अर्थ है किसी वस्तु को सीमित करना, परिच्छिन्न करना। अतः परिच्छेदातीत, निर्लेप, उपाधिविरहित ब्रह्म को साकार रूप में नग्न होना उचित ही है। भागवत शंकर के इसी तत्त्व की ओर इस पद्य में निर्देश कर रहा है—

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः॥

—(गजेंद्रमोक्ष)

इस प्रकार शिव जगत् के अधिष्ठानरूप अशेष कल्याणगुण-निधान परमेश्वर की ही मूर्ति हैं। रात्रि है उनकी शक्तिभूता त्रिभुवन-सुन्दरी। 'रात्रि' का अर्थ है प्राणियों को अवकाश या उत्सव प्रदान करनेवाली—राति ददाति क्षणमुत्सवं जनेभ्यो या सा रात्रिः। प्राणियों के आधारभूत होनेवाले शिव तथा माता की भाँति श्रांत जीवों को अपनी गोदी में

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n86/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलानेवाली रात्रि वस्तुतः एक ही तत्त्व है। रात्रि से तात्पर्य है चिन्मयी भुवनेश्वरी, शिव की शक्तिभूता शिवा। अतः शिवरात्रि का अर्थ हुआ शिव से युक्ता शिवा की उपासना। भारतीय तांत्रिक उपासना का आग्रह है शक्ति-विशिष्ट शक्तिमान की पूजा-अर्चा। शक्ति से विहीन शिव 'शव' है, निर्जीव है। उसकी उपासना क्या कभी फलवती हो सकती है? इसी तत्त्व की ओर शंकराचार्य ने अपने सौंदर्य-लहरी में संकेत किया है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवः न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

अतः शिवा से युक्त शिव का अर्थात् शक्ति-विशिष्ट शक्तिमान् की उपासना शिवरात्रि का लक्ष्य है। उपासना, उपवास तथा व्रत आदि शब्द भी इसी प्रसंग में ध्यान देने योग्य हैं। केवल निराहार रहने से ही उपवास की पूर्ति नहीं होती। 'उपवास' का शाब्दिक अर्थ होता है—'उपसमीपे वासः निवासः' अर्थात् उपास्य देवता के पास रहना, उनके ध्यान में अपना समय बिताना, उनके जप में अपने चित्त को रमण करना आदि। सच्चा व्रत का धारण तभी हो सकता है जब साधक उस तिथि को उस आराध्य देवता के सान्निध्य में अपने को रखे—उसके चरणों में अपने को समर्पण करे अर्थात् परमात्मा के साथ जीवात्मा को एकत्र संमिलन का महनीय उद्योग करे।

शिवरात्रि के महत्त्व को समझने के लिए उसकी तिथि तथा मास का भी अपना महत्त्व है। शिवरात्रि पड़ती है चतुर्दशी को और फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष में। चतुर्दशी तिथि की संख्या बड़े मतलब की है। मनुष्य के अंतःकरण तथा बाह्य करणों की संख्या मिलकर १४ होती है। अंतःकरण अर्थात् भीतरी इन्द्रियाँ होती हैं चार—(१) मन,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n87/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) बुद्धि, (३) चित्त, (४) अहंकार तथा बाहरी इन्द्रियाँ होती हैं दस; पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। अतः चतुर्दशी तिथि को शिवरात्रि की सत्ता का अर्थ है समग्र इन्द्रियों का निरोध। बिना इन्द्रिय-निरोध के व्रत की पूर्णता नहीं होती। मनुष्य के ऊपर इन्द्रियों की इतनी प्रभुता है कि वे उसे इधर-उधर मनमाने ढंग से घुमाया करती हैं। साधारण मनुष्य इन्द्रियों का दास है। उपनिषदों में इन्द्रियों की उपमा घोड़ों से दी गई है। जिस प्रकार उत्तम सारथि घोड़ों को अपने वश में रखकर उन्हें रथ में जोतता है उसी प्रकार जीव भी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर उन्हें शरीर के साधन में लगाता है। अतः साधनमार्ग में इन्द्रियनिरोध की नितांत आवश्यकता होती है। इसी प्रकार फाल्गुन मास में शिवरात्रि के अनुष्ठान का भी एक रहस्य है। उपासना में सन्ध्याकाल की बड़ी विशिष्टता होती है। संध्याकाल में—प्रातः संध्या तथा सायं संध्या दोनों समयों में चित्त में सत्त्वगुण का स्वतः उदय होता है। संध्या होते ही चित्त एकाग्र हो जाता है। चित्त में एकाग्रता स्वयं उत्पन्न हो जाती है। चित्त शांत हो जाता है। विषय के प्रपंच से हटकर मन स्वयं आत्मनिष्ठ होने लगता है। यह समय का ही प्रभाव होता है और प्रत्येक साधक के अनुभव में यह बात आती है। इसीलिए प्रतिदिन संध्याकाल में संध्या-वंदन की व्यवस्था की गई है।

दिनरात—अहोरात्र—में जिस प्रकार संध्या होती है उसी प्रकार वर्ष में भी संध्या होती है। यह वर्ष-संध्या पड़ती है फाल्गुन मास में। इसी महीने में वर्ष की समाप्ति होती है और अगले महीने से, चैत्र महीने से, वर्ष का आरंभ होता है। इस प्रकार फाल्गुन मास प्रलय की भी सूचना देता है। जिस प्रकार साधक को अहोरात्र के संध्याकाल में उपासना में संलग्न होना चाहिए उसी प्रकार फाल्गुन मास की शिवरात्रि को भी साधक को अपनी समस्त इन्द्रियों का

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n88/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोध कर शिव-शिवा अथवा शक्तिमान शिव की आराधना में दत्त-चित्त होना चाहिए। ऊपर सिद्ध किया गया है कि शिवरात्रि शिवा तथा शिव के युगल मिलन का प्रतीक है। अतः शिवरात्रि के समय, नाम तथा विधान को भलीभाँति समझने पर ही उसके महत्त्व का यथार्थबोध हो जाता है। शिवरात्रि को जागरण की विधि शास्त्र-सम्मत है। भगवद्गीता संयमी तथा इन्द्रियासक्त पुरुष के पारस्परिक भेद का उल्लेख करती हुई बतलाती है कि प्राणियों की निशा में योगी जागता है तथा प्राणियों के दिन में योगी सोता है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

शिवरात्रि का जागरण इस सिद्धांत का निर्देशक है कि प्राणी को संयमी बनना चाहिए; विषयों से अपने चित्त को हटाकर समग्र इन्द्रियों का निरोध कर भगवान शंकर की एकनिष्ठ आराधना करनी चाहिए। शिवरात्रि व्रत का यही रहस्य है। जीव तथा शिव में वास्तव भेद नहीं है। शिव को आत्मसमर्पण करने में ही जीव की कृतार्थता है। जीव को शिवनिष्ठ, शिव के चरणारविंद में आत्मसमर्पण करके अपने को कृतकृत्य करना चाहिए—शिवरात्रि का यही संदेश है।

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम्॥

सच्चे शैव की यही वास्तव अभिलाषा है।

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n89/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवक धर्म

(६) आजीवक सम्प्रदाय

(१) पाणिनियुग में स्थिति

भारत में आजकल ही इतने विभिन्न धार्मिक संप्रदाय दृष्टिगोचर नहीं होते बल्कि अत्यंत प्राचीनकाल में भी ऐसे संप्रदायों के जाल इस देश में बिछे थे। साधारण लोगों की यह धारणा है कि श्रीशंकराचार्य से ही इस सांप्रदायिकता की नींव भारत में पड़ी, रामानुजाचार्य के समय में यह कुछ दृढ़ हुई तथा पंद्रहवीं सदी के महत्वपूर्ण धार्मिक आंदोलन से जिसके मुखिया श्रीरामानंद स्वामी थे, इसने भारत की धार्मिक भूमि में इतनी अच्छी तरह जड़ पकड़ ली कि आज किसी तरह भी डुलाए नहीं डुलती। कुछ अंशों में धार्मिक संप्रदाय का पूर्वोक्त वर्णन उसके विकास का पूर्णतया पता बता देता है। परंतु श्रीशंकराचार्य से ही इसका आरंभ मानना इतिहास की दृष्टि में उतना समुचित नहीं जँचता।

शंकर के करीब डेढ़ हजार वर्ष पहले भी भारत में अनेक धार्मिक संप्रदायों का यथेष्ट पता मिलता है। जब बुद्ध धर्म के प्रवर्तक आचार्य गौतम बुद्ध का अभी जन्म भी न हुआ था, जब आचार्य महावीर ने अपनी अहिंसा-प्रचारिणी शिक्षा से बिहार की पुण्य भूमि में करुणा सरिता न बहाई थी; तब से भी पहले भारत ने धार्मिक संप्रदायों की उत्पत्ति देखी थी। पाणिनि के समय के एक धार्मिक संप्रदाय का थोड़ा सा वर्णन इतिहास-प्रेमी पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n90/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मस्करी' परिव्राजक

पाणिनि के समय में 'मस्करी' नामक परिव्राजकों का एक संप्रदाय था। इस शब्द की उत्पत्ति के विषय में पाणिनि का निम्नलिखित सूत्र द्रष्टव्य है—मस्करमस्करिणौ वेणु-परिव्राजकयोः (६।१।१५४) वेणु के अर्थ में 'मस्कर' तथा परिव्राजक के अर्थ में 'मस्करी' शब्द निपातन से सिद्ध किए जाते हैं। इस सूत्र पर महाभाष्य, काशिका तथा कैयट कृत टीका देखने से स्पष्टतः 'मस्करी' परिव्राजकों के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातों का पता लगता है।

महाभाष्यकार इस सूत्र की व्याख्या करते समय लिखते हैं—'मस्कर जिसके पास होगी' इस अर्थ के द्योतक इनि प्रत्यय के लगने पर मस्करी (वेणुधारी) पद सिद्ध ही हो जाता, फिर पूर्वोक्त सूत्र में इस शब्द के रखने का प्रयोजन क्या? नहीं, वेणुधारी के अर्थ में 'मस्करी पद' सिद्ध न होगा; बल्कि जो परिव्राजक 'काम मत करो, काम मत करो, शांति तुम्हारे लिए भली है' इस प्रकार उपदेश देता है; वही 'मस्करी' के नाम से पुकारा जाता है[1]।

प्रदीप में कैयट[2] ने भी महाभाष्यकार के मत को केवल दुहराया है—'यह मत करो, यह मत करो, काम्य कर्मों को छोड़ देना ही तुम्हारे लिए कल्याणकारक है' यह जो उपदेश देता है, उसे 'मस्करी' कहते हैं। पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट जान पड़ता है कि 'मस्करी' लोग बड़े भारी 'दैववादी' थे, वे कर्मों को छोड़ने का उपदेश हर एक को दिया करते थे, काम छोड़ भाग्य के भरोसे रहना ही उनका परम पुरुषार्थ था।

---

१ न वै मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजकः। किं तर्हि मा कृत कर्माणि मा कृत कर्माणि, शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः।—महाभाष्य।

२ अयं मा कृत अयं मा कृतेत्युपक्रम्य शान्तितः काम्यकर्मपरिहाणिर्युष्माकं श्रेयसीत्युपदेष्टा मस्करीत्युच्यते।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n91/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोक्त सूत्र की काशिकावृत्ति[1] भी भाष्यकार की सम्मति की प्रामाणिकता सिद्ध कर रही है। मस्करी बना कैसे ? इसके लिए काशिका बतलाती है कि 'मा' उपपद कृ धातु से ताच्छील्य (स्वभाव) के अर्थ में इनि प्रत्यय किया गया है तथा निपातन से आकार को ह्रस्व बनाने तथा सुडागम करने पर यह पद निष्पन्न हुआ है (मा+√कृ+इनि= मस्करिन्)। इस व्युत्पत्ति से मस्करी का अर्थ हुआ—वह परिव्राजक जिसका स्वभाव कभी काम करना न हो अर्थात् जो कर्म को बुरा जान-कर छोड़ देता है।

काशिका से भी 'मस्करी' के विषय में केवल यही ज्ञात हुआ कि ये परिव्राजक लोग दैववादी थे, कार्यों के त्याग करने के पक्ष में थे। पाणिनि के समय में इनका सम्प्रदाय अत्यंत प्रसिद्ध रहा होगा तभी तो पाणिनि ने इनको अपने सूत्र में स्थान देने का आयोजन किया है।

मस्करी = आजीवक

अब हमें यह विचार करना है कि क्या हम पाणिनि के 'मस्करी' की इतिहासप्रसिद्ध किसी अन्य धार्मिक संप्रदाय के साथ अभिन्नता सिद्ध कर सकते हैं या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर निषेधात्मक नहीं है। बुद्ध के समय में प्रसिद्ध आजीवक नामक धार्मिक संप्रदाय तथा पाणिनि का मस्करी दोनों एक ही थे। बौद्ध साहित्य में आजीवक लोगों के जो मूल सिद्धांत वर्णित हैं वे मस्करी लोगों के उपदेशों से भिन्न नहीं हैं। एक स्थान पर आजीवकों के मूल सिद्धांत का वर्णन करते हुए

---

१ परिव्राजकेऽपि माङ्युपपदे करोतेस्ताच्छील्य इनिर्निपात्यते। माङोह्रस्वत्वं सुट्च तथैव। माकरणशीलो मस्करी कर्मापवादित्वात् परि-व्राजक उच्यते। सत्यमेवमाह। माकृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसी।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n92/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध भगवान् स्वयं कहते[1] हैं—आजीवक लोग कहते हैं कि न तो कर्म हैं, न क्रिया है और न वीर्य। यह सिद्धांत मस्करी के पूर्वोक्त उपदेश—मा कृत कर्माणि—के बिलकुल समान ही है। जानकीहरण में भी सीता को हरने के लिए रावण 'मस्करी'[2] के वेप में ही आता है। उससे भी जान पड़ता है कि मस्करी तथा आजीवक दोनों एक ही संप्रदाय के थे। बुद्ध के जीवन-चरित्र से भी पूर्वोक्त अभिन्नता सिद्ध होती है। जब बुद्ध भगवान् अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे, उसी समय में **मंक्खलि गोसाल** नामक आजीविकों के आचार्य का भी प्रभाव धार्मिक जगत् में कम न था, ये आजीवक बतलाए गए हैं। परन्तु इनके नाम का प्रथम अंश—मंक्खलि—संस्कृत 'मस्करी' का पाली रूप है, अतएव गोसाल वास्तव में मस्करी संप्रदाय के ही थे। इसी के सूचन के लिए यह अंश उनके नाम के पहले जोड़ा गया है। इन प्रमाणों से ठीक जान पड़ता है कि पाणिनि के 'मस्करी' बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध 'आजीवक' थे।

बौद्ध ग्रंथों के देखने से पता लगता है कि मस्करी लोग बड़े भारी तपस्वी थे, ये हठयोग की कठिन से कठिन प्रक्रिया से अपनी देह को सुखा देते थे, तपाग्नि तपते थे तथा अपने शरीर पर धूलि अथवा भस्म लगाया करते थे। जानकीहरण के पूर्वोक्त उद्धरण से यह भी ज्ञात होता है कि इनके सिर पर बड़ी बड़ी जटाएँ भी शोभित होती थीं। इस संप्रदाय का उस समय बड़ा बोलबाला था। पाली ग्रंथों में इस

---

१ नात्थि कम्मं, नात्थि किरियं, नात्थि विरियं ति।
अंगुत्तर निकाय जि० १, पृ० २८६।

२ दंभाजीविकमुत्तुंग जटामंडितमस्तकम्।
कश्चिन्मस्करिणं सीता ददर्शाश्रममागतम्॥
स० १०, पृ० ७६।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n93/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संप्रदाय के दो अन्य आचार्यों के नाम दिये हैं जो गोसाल के भी पहले हो चुके थे—एक का नाम था नंदवच्छ तथा दूसरे का किससंकिच्छ। सच तो यह है कि बुद्ध के बहुत पहले ही इस संप्रदाय की उत्पत्ति भारतवर्ष में हो चुकी थी।

(२) अभ्युदय

आजीवक सम्प्रदाय भारत के प्राचीन धार्मिक सम्प्रदायों में महत्त्व-पूर्ण स्थान रखता है। ऊपर सप्रमाण दिखलाया गया है कि यह सम्प्रदाय वैयाकरण पाणिनि से पुराना है और पाणिनि का आविर्भाव-काल गौतमबुद्ध से पहले होने के कारण इस मत की बौद्धधर्म से प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है। 'आजीवक' अथवा 'आजीविक' का अर्थ है 'आजीविका के लिए फिरनेवाला'। इस नामकरण के भीतर प्राचीन तथ्य छिपा हुआ है। इस सम्प्रदाय के साधु लोग जीविका के लिए निमित्तविद्या अर्थात् ज्यौतिष का आश्रय लेते थे। वे लोगों को आने-जाने का शुभ मुहूर्त बतलाते थे, उनके भविष्य की बातें गिनकर बतलाया करते थे जो सच्ची निकलती थीं। इस प्रकार ये जनता के आदर तथा सत्कार के भाजन बनने में सर्वथा समर्थ होते थे। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पता ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों से भली-भाँति मिलता है।

भगवान् बुद्ध ने अपने समय के जिन सुप्रसिद्ध प्रभावशाली छः तीर्थंकरों का बहुशः उल्लेख किया है उनमें अन्यतम हैं—मंक्खलि गोसाल। मंक्खलि 'मस्करी' का ही पाली रूप है। गोसाल की ख्याति जैनधर्म के ग्रन्थों में विशेषरूप से उपलब्ध होती है। गोबहुल नामक ब्राह्मण की गोशाला में जन्म लेने के कारण ही इनका नाम 'गोसाल' पड़ गया था। गोसाल कुछ दिनों तक स्वतन्त्ररूप से भिक्षा माँगा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n94/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था, तदनन्तर महावीर की तपस्या तथा शुद्ध चरित्र से आकृष्ट होकर वह उनका शिष्य बन गया परन्तु गुरु-शिष्य में सिद्धान्त की भिन्नता होने से उनमें आपस में पटी नहीं। महावीर की कृपा से उसने 'तेजोलेश्या' नामक शक्ति प्राप्त की। वह **नियतिवाद** का प्रौढ़ प्रचारक था। जनता में उसके उपदेशों का प्रभाव खूब पड़ा। उसके छः प्रधान शिष्य हुए जो उसके सिद्धान्तों का चारों दिशाओं में प्रचार करते फिरते थे। उनके नाम हैं—(१) शान, (२) कलन्द, (३) कर्णिकार, (४) अच्छिद्र, (५) अग्नि वैश्यायन और (६) गोमायुपुत्र अर्जुन।

'आजीवक' के इतिहास में 'हालाहला' नामक कुम्हारिन प्रधान स्थान रखती है। वह श्रावस्ती नगरी की रहनेवाली नीच जाति की स्त्री थी, परन्तु वह थी बड़ी धनाढ्य, बुद्धिमती और सुन्दरी। आजीवक मत के विस्तार में इसका भी विशेष सहयोग था। गोसाल तथा महावीर के परस्पर शास्त्रार्थ होने की बात जैन ग्रन्थों में उल्लिखित है जिसमें जैन महावीर के तर्क तथा तपोबल के सामने गोसाल को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। कतिपय विद्वान् (विशेषतः डाक्टर हार्नली) गोसाल को ही इस मत का उद्भावक मानते हैं, परन्तु वस्तुस्थिति इसके प्रतिकूल है। जैन ग्रन्थों के अनुशीलन से प्रतीत होता है[1] कि गोसाल से सातवाँ पूर्व आचार्य उदायी कुण्डियायन हुआ। वही वस्तुतः इस मत का संस्थापक आदि आचार्य था। उसके अनन्तर ऐणेयक, मल्लुराम, माल्यमण्डित, रोह, भारद्वाज, गौतमपुत्र अर्जुन तथा मंखलिपुत्र गोसालक—ये सात पदधर हुए जिन्होंने क्रमशः २२, २१, २०, १९, १८, १७ तथा १६ वर्षों तक आचार्य-पद को भोगा था। बौद्ध ग्रन्थों (दीघनिकाय और मज्झिम निकाय) से मत के दो

---

१ पं० कल्याणविजय जी ज्ञानी—'श्रमण भगवान् महावीर नामक पुस्तक', पृ० २६४—६५।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n95/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य आचार्यों का परिचय मिलता है जिसके नाम थे—किस्ससंकिच्च तथा नन्दवच्छ। ये सम्भवतः गोशालक के पूर्ववर्ती आजीवक भिक्षु थे और इन्होंने निमित्तशास्त्र के ज्ञाता तथा तेजोलेश्या के अधिकारी होने के कारण गोशालक को अपने संघ का अग्रणी बनाया था।

गोशालक की मृत्यु तो जैन महावीर की मृत्यु (५२७ ई० पू०) से पहले ही हो गई, परन्तु आजीवक मत की प्रसिद्धि तथा प्रचलन देश में खूब था। अशोक के शिलालेखों में आजीवकों का उल्लेख है। गया के पास बर्बर पहाड़ी की एक गुफा की दीवाल पर अशोक का शिलालेख है जिससे प्रतीत होता है कि उसने अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में वह गुफा आजीवकों को अर्पित की। सातवें स्तंभलेख से यह ज्ञात होता है कि उस समय ब्राह्मणों और निर्ग्रन्थों (जैनियों) के साथ साथ आजीवक लोग भी आदरणीय धार्मिक सम्प्रदाय माने जाते थे। अशोक के पुत्र दशरथ के द्वारा गुहा-समर्पण का उल्लेख मिलता है जैनाचार्य कालकाचार्य का निमित्त-शास्त्र पढ़ने के लिए आजीवकों के पास जाने की बात निर्दिष्ट है। अतः विक्रमपूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में आजीवकों का विशेष प्रचार दृष्टिगोचर होता है। विक्रम के पंचमशतक में सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' के 'प्रव्रज्यायोग' प्रकरण में ये सात वर्ग किए थे—शाक्य अथवा रक्तपट, आजीवक, निर्ग्रन्थ, तापस, चतुर्थ आश्रमी ब्राह्मण, वृद्धश्रावक तथा चरक। इन सात प्रकार के भिक्षुओं में आजीवकों को भी अन्यतम माना है। टीकाकार भट्टोत्पल (११वीं शताब्दी) ने इन्हें 'एकदण्डी' तथा नारायण का भक्त बतलाया है। निशीथ चूर्णि के भाष्यकार के समय (सप्तम शतक) ये लोग 'गोशालक शिष्य' होने के अतिरिक्त 'पाण्डुर भिक्षु' या 'पाण्डुरंग भिक्षु' कहलाने लगे थे। अनुयोगद्वार चूर्णि में 'पाण्डुरंग' का पर्याय 'सरजस्क' है अर्थात् धूल से भरे अंगवाले। आजीवक भिक्षु नग्न ही रहते थे। अतः सम्भव जान

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n96/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है शीत के रोकने के लिए वे अपने शरीर पर भस्म लगाते होंगे और इसी कारण उनका नाम 'पाण्डुरंग' (भूरे रंगवाला) साधु पड़ गया होगा। विक्रम के अष्टम शतक में ये अपने स्वतन्त्र सम्प्रदाय को खो बैठे और धीरे-धीरे शैवों और वैष्णवों के सम्प्रदायों में घुल-मिल गये। इसीलिए आचार्य शीलाङ्क ने 'शैव' और भट्ट उत्पल ने इन्हें 'नारायण भक्त' बतलाया है। सम्भावना यह प्रतीत होती है कि आज-कल के नागा लोगों की जमात में इनका अन्तर्भाव हो गया है। आजीवक सम्प्रदाय जैनियों तथा बौद्धों के सम्प्रदाय के समान अपनी स्वतन्त्र स्थिति बनाये न रख सका, परन्तु उसका व्यापक प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। 'नियतिवाद' आजीवकों का प्रधान सिद्धान्त है और वह बहुत दिनों से इस देश के जनसाधारण का मान्य सिद्धान्त बन चुका है। 'भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्'—आदि वाक्य आजीवकों के सिद्धान्तों की प्रतिध्वनिमात्र हैं।

(३) आचार

आजीवकों के आचार तथा विचार का परिचय पाना आवश्यक है; परन्तु इनका कोई भी निजी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अतः जैन और बौद्ध ग्रन्थ ही प्रधान अवलम्बन हैं। इनके सम्प्रदाय में दो प्रकार के अनुयायी थे—(१) भिक्षु, जो इधर-उधर भिक्षा लेकर वैराग्य-वृत्ति से जीवन बिताते थे और (२) गृहस्थ, जो घरबारी होते थे। भिक्षु लोग बिलकुल नंगे रहते थे। इसी कारण वे 'अचेलक' (= बिना वस्त्र वाले) नाम से बौद्ध ग्रन्थों में विख्यात हैं। वे बड़ी कठिन तपस्या किया करते थे। जैन स्थानाङ्ग सूत्र का कथन है—आजीवकों के चार प्रकार के तप हैं—उग्र तप, घोर तप, रसनिर्यूहना तप और जितेन्द्रिय-प्रतिलीनता तप जो कठोर तपों के भिन्न-भिन्न प्रकार जान पड़ते हैं। जैन औपपातिक सूत्र

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n97/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन है—ग्राम, नगर, पुर और सन्निवेशों में जो आजीवक रहते हैं उनके प्रकार ये हैं— द्विगृहान्तरित, त्रिगृहान्तरित, सप्तगृहान्तरित (क्रम से दूसरे, तीसरे और सातवें घर में भिक्षा-माँगने वाले और न मिलने पर उपवास करने वाले), उत्पलवृन्तिक (=कमलों के डंठल को खाने वाले), गृह-सामुदानिक (=घरों के क्रम से भिक्षा लेने वाले), विद्युदन्तरित (= रास्ते में बिजुली के चमकने पर भिक्षा से लौट आने वाले) और उष्ट्रिकाश्रमण (मिट्टी के बड़े बर्तन के भीतर बैठे रहने वाले) । मज्झिम निकाय (२६ प्रकरण) में निग्रन्थ साधु सच्चक ने इनका जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि ये लोग भोजन-छाजन में कड़े नियमों का पालन करते थे —'ये अपने हाथों में भोजन करते थे। देहली के बीच रखा हुआ, ओखली में कूटा हुआ तथा चूल्हे पर पकता हुआ आहार ग्रहण नहीं करते थे। ये मद्य, मांस, मत्स्य आदि के भोजन से सर्वथा पृथक् रहते थे। 'आजीवक' के उग्र तपश्चर्या का वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र किया गया है। 'लोमहंस जातक' का कथन है कि बोधिसत्त्व स्वयं एक बार आजीवक बन गये थे। नग्न रूप में अकेले रहते हुए वे मनुष्यों को देखकर मृग की तरह भागते थे। वह मल, छोटी मछलियाँ तथा मनुष्यों का विष्ठा खाते थे। शिशिर ऋतु में वह झाड़ी या झुरमुट में न रहकर अपने शरीर को रात्रि के समय तीखी ठंढी वायु के झोके में रखते थे। छाया में तभी जाते थे जब सूरज का उदय होता था। रात के समय वह अपने शरीर को हिम में भिंगो देते थे। इस वर्णन से पूर्ण संकेत मिलता है आजीवकों की कठिन तपश्चर्या का। नंगुत्थ जातक में सावत्ती में तपस्या करने वाले आजीवकों के एक दल का विवरण है। उनकी तपस्या घोर तो थी ही, साथ ही साथ ठगने की प्रवृत्ति का भी परिचय उनमें मिलता है। इन विचित्र तपस्याओं के नाम हैं—उक्कुटिकप्पधान, वग्गुलिवत, कण्टकप्पसय तथा पंचतपन। इनमें से पहिली

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n98/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या के स्वरूप का परिचय नहीं मिलता। अन्य तपस्याओं के रूप उनके अभिधान से ही प्रतीत हो रहे हैं।

आजीवक गृहस्थों के भी आचार बहुत अच्छे थे। माता-पिता की सेवा उनका प्रधान कर्तव्य था। भोजन में गूलर, बड़, बेर, शहतूत तथा पीपल के फलों का त्याग करते थे (पञ्चफल प्रत्याख्यान)। प्याज, लहसुन तथा कन्दमूल को भी कभी न खाते थे। बिना दागे और बिना नाथे हुए बैलों से जीविका चलाते थे और त्रस (चलते-फिरते) जीवों को बचाकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि भिक्षुओं के समान आजीवक मत के गृहस्थों का आचार उच्च कोटि का था। प्राणिहिंसा से बचना उनका प्रधान ध्येय था। जैनियों और इनमें आचार के विषय में विशेष विभेद नहीं था।

(४) विचार

आजीवक लोग आत्मवादी, पुनर्जन्म तथा मोक्ष को माननेवाले दार्शनिक थे, परन्तु इनके मत में आत्मा का स्वरूप किस प्रकार का था ? इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। मज्झिमनिकाय के प्रमाण पर बुद्ध के विरुद्ध धार्मिक-नेता लोग यह मानते थे कि 'प्रबुद्ध आत्मा' निर्वाण के बाद अपना अस्तित्व रखती है, परन्तु उसके अस्तित्व के प्रकार में भेद था। गोशालक का मत था कि आत्मा 'रूपी' है और महावीर का पक्ष था कि आत्मा 'अरूपी' है।

इनका सबसे प्रधान मत था—**नियतिवाद**। जगत् की कोई भी घटना, कोई वस्तु पुरुषप्रयत्न के द्वारा सिद्ध नहीं होती, प्रत्युत वह नियति के वश में होकर कार्य करती है। दीघनिकाय[1] के शब्दों में

१ दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पृ० २०।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n99/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंखलि का संक्षिप्त मत यह है—'सत्त्वों के क्लेश का कोई हेतु या प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु और बिना प्रत्यय के ही प्राणी क्लेश पाते हैं। सत्त्वों की शुद्धि का कोई हेतु नहीं है और कोई प्रत्यय नहीं है। अपने कुछ नहीं कर सकते हैं, पराये भी कुछ नहीं कर सकते हैं, कोई पुरुष भी कुछ नहीं कर सकता है। क्योंकि बल नहीं है, वीर्य नहीं है, पुरुष का कोई पराक्रम नहीं है। सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी भूत और सभी जीव अपने वश में नहीं हैं निर्बल, निर्वीर्य भाग्य और संयोग के फेर से वे सुख दुःख भोगते हैं।' यह है कट्टर दैववाद। उनके अनुसार पुरुष के प्रयत्न पर कुछ भी अवलम्बित नहीं है, क्योंकि शक्ति, पौरुष या मनुष्यबल नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। जैन ग्रन्थों से इस मत को पर्याप्त पुष्टि प्राप्त होती है। 'उपासक दशांग' के सप्तम अध्ययन में महावीर तथा आजीवक मत के अनुयायी सद्दालपुत्र नामक धनाढ्य कुम्भकार के वार्तालाप का वर्णन है। महावीर ने जब बरतनों के विषय में पूछा कि ये बरतन पुरुष के पराक्रम से तैयार हुए हैं अथवा किसी पराक्रम के बिना ही, तब सद्दालपुत्र ने झट से उत्तर दिया—'मृत्तिकाभाण्ड नियति बल से बनते हैं, पुरुष पराक्रम से नहीं। सभी पदार्थ नियतिवश होते हैं। जिसका जैसा होना नियत होता है, वह वैसा ही बनता है उसमें पुरुष पराक्रम कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता, क्योंकि सब भाव नियत रहते हैं'। इसके अतिरिक्त जगत् में उत्पन्न होने वाले प्राणियों के विषय में भी इनके अनेक विचित्र मत थे जिनका उल्लेख दीघनिकाय में किया गया है।

कतिपय विद्वान् आजीवकों को दिगम्बर जैनियों से भिन्न नहीं मानते हैं, क्योंकि बाह्य आचारों के विषय में उनकी समता स्पष्ट है। दोनों ही नग्न रहते थे, दोनों ही हिंसा से विमुख रहते थे। परन्तु साम्यप्रतिपादक प्रमाणों की छानबीन कर मुनि कल्याणविजय जी का निर्णय यथार्थ प्रतीत होता है कि दोनों भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के थे।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n100/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने दोनों का उल्लेख अलग अलग किया है। उन्होंने ओघनिर्युक्ति-भाष्य की एक गाथा भी इस प्रसंग में उद्धृत की है जिसमें आजीवकों का निर्देश दिगम्बरों से पृथक् किया गया है[1]—

चक्कयरंमि भमाडो, भुक्खामारो य पांडुरंगंमि।
तच्चन्निय रुहिरपडनं बोडियमसिए धुवं मरणं ॥ १०७ ॥

वर्षा चातुर्मास्य के लिए ग्राम में प्रवेश करते समय यदि चक्रधर भिक्षु सामने मिले तो चातुर्मास्य में भटकना पड़ता है। यदि पांडुरंग (आजीवक) भिक्षु मिले, तो भूख की मार सहनी पड़े। यदि बौद्धभिक्षु मिले तो रुधिर गिरे। बोटिक (दिगम्बर जैन) तथा असित (भौत नामक) भिक्षुओं के मिलने पर मरण निश्चित है। इस गाथा में 'पांडुरंग' तथा 'बोडिय' का उल्लेख पृथक् रूप से होना सिद्ध करता है कि ये दोनों भिन्न भिन्न सम्प्रदाय थे। पिछले ग्रन्थों में आचारसाम्य से कहीं दोनों एक माने गये हैं, परन्तु ये वस्तुतः भिन्न भिन्न मत वाले थे।

जैन तथा बौद्ध मतों से भी प्राचीन आजीवक मत का यही संक्षिप्त परिचय है। उस समय इसकी गणना बड़े धर्म के रूप में की जाती थी, परन्तु कालक्रम से प्रभावशाली नेता के अभाव में यह मत जनता का समादर न पा सका और शनैः शनैः अन्य सम्प्रदायों में निविष्ट हो गया।

———

१ भगवान् महावीर—पृ० २७८

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n101/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन धर्म

(६) महावीर की जन्मभूमि

वैशाली युगान्तरकारिणी नगरी है। इसकी गणना भारत की ही प्रधान नगरियों में नहीं की जा सकती, प्रत्युत संसार के कतिपय नगरियों में यह प्रमुख है—उन नगरियों में, जहाँ से धर्म की दिव्य ज्योति ने दम्भ तथा कपट के काले अन्धकार को दूर कर विश्व के प्राणियों के सामने मंगलमय प्रभात का उदय प्रस्तुत किया; जहाँ से परस्पर विवाद करने वाले, क्षणमात्र के लिए अपने बन्धुजनों के प्रिय प्राण हरण करने वाले क्रूर मानवों के सामने पवित्र भ्रातृभाव की शिक्षा दी गई; जहाँ से 'अहिंसा परमो धर्मः' का मन्त्र संसार के कल्याण के लिए उच्चारित किया गया। पाश्चात्य इतिहास उन नगरों की गौरव गाथा गाने में तनिक भी श्रान्त नहीं होता जिनमें प्राणियों के रक्त की धारा पानी के समान बही और जिसे वह भाग्य फेरने वाले युद्धों का रंगस्थल बतलाता है। परन्तु भारत के इस पवित्र देश में वे नगर हमारे हृदय-पट पर अपना प्रभाव जमाये हुए हैं जिन्हें किसी धार्मिक नेता ने अपने जन्म से पवित्र बनाया तथा अपने उपदेशों का लीला-नगर प्रस्तुत किया। वैशाली ऐसी नगरियों में अन्यतम है। इसे ही जैनधर्म के संशोधक तथा प्रचारक महावीर वर्धमान की जन्मभूमि होने का विशेष गौरव प्राप्त है। बौद्ध-धर्मानुयायियों के हृदय में कपिलवस्तु तथा रुम्मिनदेई के नाम सुनकर जो श्रद्धा और आदर का भाव जनमता है, जैन मतावलम्बियों के हृदय में ठीक वही भाव वैशाली तथा कुण्डग्राम के नाम सुनने से उत्पन्न होता है।

वैशाली के इतिहास में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। उसने बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल देखी। कभी वहाँ की राजसभा में मन्त्रियों की

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n102/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद् जुटती थी, तो कभी वहाँ के संस्थागार में प्रजावर्ग के प्रतिनिधि राज्यकार्य के संचालन के लिए जुटते थे। कभी वंशानुगत राजा प्रजाओं पर शासन करता था, तो कभी बहुमत से चुना गया 'राजा' नामधारी अध्यक्ष अपने ही भाइयों पर उन्हीं की राय से उन्हीं के मंगलसाधन में सचिन्त रहता था। तात्पर्य यह है कि प्राचीन युग में वैशाली में राज्य-तन्त्र की प्रधानता थी। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि जब राम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र ने यहाँ पदार्पण किया था, तब यहाँ के राजा सुमति ने उनका विशेष सत्कार किया था[1]। जैन सूत्रों तथा बौद्ध पिटकों में वैशाली प्रजातन्त्र की क्रीडास्थली के रूप में अंकित की गई है। भगवान बुद्ध ने अपने अनेक चातुर्मास्य यहीं बिताये थे; इसमें चार प्रधान चैत्य थे—पूर्व के चैत्य का नाम था उदयन, दक्षिण में गौतमक, पश्चिम में सप्ताम्रक, उत्तर में बहुपुत्रक चैत्य[2]। अम्बपाली नामक गणिका जो धार्मिक श्रद्धा तथा वैराग्य के कारण बौद्ध धर्म में विशेष प्रसिद्ध है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार वैष्णवधर्म में पिंगला—यहीं रहती थी। उसी का आम्रवन बुद्ध के उपदेश देने का प्रधान स्थान था। बुद्ध के समय लिच्छवि लोगों को यहाँ प्रजातन्त्र के रूप में हम शासन करते पाते हैं। इससे बहुत पहले हम यहाँ महावीर वर्धमान को जन्मते, शिक्षा ग्रहण करते तथा प्रव्रज्या लेते पाते हैं। वर्धमान के समय में भी यहाँ गणतन्त्र राज्य ही था। वैशाली के इतिहास में कोई

---

१ तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्
आवसत्यमरप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः ॥ १६ ॥
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम् ।
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्युद्गच्छन्महायशाः ॥ १६ ॥
—बालकाण्ड ४७ सर्ग।

२ द्रष्टव्य दीघनिकाय—महापरिनिब्बाणसुत्त (नं० १३)

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n103/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् परिवर्तन अवश्य हुआ होगा जिससे वह विशाला तथा मिथिला दोनों राज्यों की राजधानी बन गई तथा उसका शासन राज्यतन्त्र से गणतन्त्र हो गया। इस परिवर्तन के कारणों की छानबीन करना इतिहास-प्रेमियों का कर्तव्य है।

वैशाली में अनेक विभूतियाँ उत्पन्न हुईं। परन्तु उनमें सबसे सुन्दर विभूति है—भगवान् महावीर, जिसकी प्रभा आज भी भारत को चमत्कृत कर रही है। लौकिक विभूतियाँ भूतलशायिनी बन गईं, परन्तु यह दिव्य विभूति आज भी अमर है और आनेवाली अनेक शताब्दियों में अपनी शोभा का इसी प्रकार विस्तार करती रहेगी। जैनधर्म बौद्धधर्म से बहुत पुराना है। इसका संस्थापन महाराज ऋषभदेव ने किया था, जैनियों की यही मान्यता है। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ वस्तुतः ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे महावीर से लगभग दो सौ वर्ष पहिले हुए थे। वे हमारी काशी के रहने वाले थे। महावीर ने उनके धर्म में नये संशोधन कर उसे नवीन रूप प्रदान किया। भारत का प्रत्येक प्रान्त जैनधर्म की विभूतियों से मण्डित है। ऐतिहासिक लोग पार्श्वनाथ को जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं और वर्धमान महावीर को संशोधक। महावीर गौतम बुद्ध के समसामयिक थे; परन्तु बुद्ध के निर्वाण से पहले ही उनका अवसान हो गया था। इस प्रकार वैदिकधर्म से पृथक् धर्मों के संस्थापकों में महावीर वर्धमान ही प्रथम माने जा सकते हैं और इनकी जन्मभूमि होने से वैशाली की पर्याप्त प्रतिष्ठा है।

वैशाली तथा उसके आसपास के प्रदेशों का प्रामाणिक वर्णन जैन सूत्रों में विशेष रूप से दिया हुआ है। इनकी विशद सूचना बौद्धग्रन्थों से भी उपलब्ध नहीं होती। इन प्रदेशों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n104/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशाली के पश्चिम ओर गण्डकी नदी बहती थी। यह नगरी बड़ी समृद्धिशाली थी। इसका भौगोलिक विस्तार भी न्यून न था। गण्डकी के पश्चिमी तट पर अनेक ग्राम थे जो वैशाली के 'शाखा नगर' कहे जाते हैं। निम्नलिखित ग्रामों का परिचय मिलता है—

(१) **कुण्डग्राम**—इस नाम के दो ग्राम थे। एक का नाम 'ब्राह्मणकुण्डग्राम' या कुण्डपुर था जिसमें ब्राह्मणों की ही विशेष रूप से बस्ती थी। दूसरे का नाम 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' था जिसमें क्षत्रियों का ही प्रधानतया निवास था। इनमें दोनों क्रमशः एक दूसरे से पूरब पश्चिम में थे। ये दोनों पास ही पास। दोनों के बीच में एक बड़ा बगीचा था जो 'बहुसाल चैत्य' के नाम से विख्यात था। दोनों नगरों के दो-दो खण्ड थे। 'ब्राह्मण कुण्डपुर' का दक्षिण भाग 'ब्रह्मपुरी' कहलाता था क्योंकि यहाँ ब्राह्मणों ही का निवास था। उत्तर ब्राह्मण कुण्डपुर के नायक ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण थे जिनकी भार्या का नाम 'देवानन्दा' था। ये दोनों पार्श्वनाथ के द्वारा स्थापित जैनधर्म के माननेवाले गृहस्थ थे। 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' के भी दो विभाग थे। दक्षिणी भाग में पाँच सौ घर 'ज्ञाति' नामक क्षत्रियों के थे जो उत्तरी भाग में जाकर बसे हुए थे। उत्तर कुण्डपुर के नायक का नाम **सिद्धार्थ** था। ये काश्यपगोत्रीय ज्ञाति-क्षत्रिय थे तथा 'राजा' की उपाधि से मण्डित थे 'राजा' शब्द क्षत्रिय के लिए प्राचीन काल में प्रयुक्त होता था। फलतः क्षत्रिय होने के कारण ही सिद्धार्थ राजा कहे जाते थे। यह अनुमान लगाया जा सकता है। वैशाली के तत्कालीन राजा का नाम था—**चेटक**, जिनकी भगिनी (त्रिशला) का विवाह सिद्धार्थ से हुआ था। इन्हीं **त्रिशला** और **सिद्धार्थ** के कनिष्ठ पुत्र 'वर्धमान' थे जिनका जन्म इसी ग्राम में हुआ था।

(२) **कर्मारग्राम**—प्राकृत 'कम्मार' कर्मकार का अपभ्रंश है। अतः कर्मार का अर्थ है मजदूरों का गाँव अर्थात् लोहारों का गाँव। यह

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n105/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव भी कुण्डग्राम के पास ही था। महावीर प्रव्रज्या लेकर पहली रात यहीं ठहरे हुए थे।

(३) **कोल्लाक संनिवेश**—यह स्थान पूर्वनिर्दिष्ट ग्राम के समीप ही था। कर्मारग्राम में विहार कर महावीर ने यहीं पारणा की थी। उपासकदशा सूत्र के प्रथमाध्ययन में इस स्थान की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह नगर वाणिज्य ग्राम (जिसका वर्णन नीचे है) के तथा उसके बगीचे के बीच में पड़ता था।

(४) **वाणिज्य ग्राम**—यह जैन सूत्रों का 'वाणिज्यगाम'=बनियों का गाँव है। गण्डकी नदी के दाहिने किनारे पर यह बड़ी भारी व्यापारी मंडी था, ऐसा जान पड़ता है यहाँ बड़े-बड़े धनाढ्य महाजनों की बस्ती थी। यहाँ के एक करोड़पति का नाम आनन्द गाथापति था जो महावीर का बड़ा भक्त सेवक था। आजकल की वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले की बसाढ़पट्टी) के पास बनिया ग्राम है। बहुत सम्भव है कि यह गाँव 'वाणिज्यग्राम' का ही प्रतिनिधि हो।

बौद्ध ग्रन्थों के, विशेषतः दीघनिकाय के अनुशीलन से पता चलता है कि बुद्ध के समय में वैशाली बड़ी समृद्धिशालिनी नगरी थी। उसमें ७ हजार ७ सौ ७७ महलों के होने का उल्लेख स्पष्टतः उसे विशाल तथा समृद्ध नगर बतला रहा है। नगर के भीतर अम्बपाली नामक बड़ी ही धनाढ्य और गुणवती गणिका रहती थी। ६ या ७ बड़े-बड़े चैत्यों के नाम मिलते हैं जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना चातुर्मास्य बिताया। इसके पास ही 'वेणुग्राम' का उल्लेख मिलता है जहाँ बुद्ध ने वर्षा में निवास किया था। इस वर्णन से स्पष्ट है कि वैशाली बड़ी नगरी थी जिसके उपनगर अनेक थे तथा उस समय खूब प्रसिद्ध थे।

वैशाली को हमने महावीर वर्धमान की जन्मभूमि बतलाया है परन्तु आजकल सर्व-साधारण जैनियों की मान्यता है कि विहार में

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n106/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूल स्टेशन से पश्चिम आठ कोस स्थित लच्छु आड़ गाँव ही महावीर की जन्मभूमि है। परन्तु सूत्रों की आलोचना से यह मान्यता निर्मूल ठहरती है। इस विषय में पं० कल्याणविजय जी गणि ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थ 'श्रमण भगवान् महावीर'[1], में जो विचार प्रकट किये हैं वे मेरी दृष्टि में नितान्त युक्तियुक्त हैं। पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि सूत्रों में महावीर विदेह के निवासी माने गये हैं। कल्पसूत्र ने महावीर को 'विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेह सूमाले' (अर्थात् विदेह विदेहदत्त विदेह-जात्य विदेहसुकुमार लिखा है।) वे 'वैशालिक' भी कहे गये हैं। अतः इन्हें विदेह की राजधानी वैशाली का निवासी मानना अनुचित नहीं है।

(२) 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' के राजपुत्र जमालि ने ५०० राजपुत्रों के साथ जैनधर्म ग्रहण किया था। इससे यह कोई बड़ा समृद्ध नगर प्रतीत होता है। महावीर का प्रायः नियम-सा था कि जहाँ कोई धनाढ्य भक्त हो वहाँ वर्षावास करना। अतः इस 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' की प्रसिद्धि तथा समृद्धि के अनुकूल महावीर का वर्षावास करना नितान्त स्वाभाविक है, परन्तु यहाँ वर्षावास का बिलकुल उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण क्या ? उचित तो यह मालूम पड़ता है कि यह नगर वैशाली के पास था। अतः वैशाली में वर्षावास करते समय उन्होंने जो उपदेश दिया या उससे कुण्डग्राम के निवासियों ने लाभ उठाया। अतः यहाँ पृथक् रूप से वर्षावास करने का उल्लेख सूत्रग्रन्थों में नहीं मिलता।

(३) प्रव्रज्या के अनन्तर महावीर ने जिन स्थानों पर निवास किया, उन स्थानों की भौगोलिक स्थिति पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि वे सब स्थान वैशाली के आसपास थे। दीक्षा लेने के दूसरे

१ 'श्रमण भगवान् महावीर'—शास्त्रसंग्रह समिति, जालोर के द्वारा प्रकाशित, सं० १६५८, भूमिका पृ० २५–२८।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n107/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन महावीर ने कोल्लाक संनिवेश में पारणा की। जैन सूत्रों के आधार पर कोल्लाक संनिवेश दो हैं और वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर हैं—एक तो वाणिज्य ग्राम के पास और दूसरा राजगृह के पास। अब यदि वर्तमान जन्मस्थान को ही ठीक माना जाय, तो वहाँ से कोल्लाक संनिवेश बहुत ही दूर पड़ता है जहाँ एक ही दिन में पहुँचकर निवास करने की घटना युक्तियुक्त सिद्ध नहीं हो सकती। राजगृह-वाला स्थान चालीस मील पश्चिम की ओर पड़ेगा और दूसरा स्थान इससे भी अधिक दूर। अतः महावीर को वैशाली का निवासी मानना ठीक है क्योंकि यहाँ से कोल्लाक संनिवेश बहुत ही समीप है।

(४) पं० कल्याणविजयजी ने जैन सूत्रों के आधार पर महावीर के चातुर्मास्य के विताने के स्थानों का बड़ा ही सांगोपांग वर्णन किया है। महावीर ने प्रथम चातुर्मास्य आस्थिक ग्राम में विताया और दूसरा राजगृह में। राजगृह जाते समय वे 'श्वेताम्बिका' नगरी से होकर गये और तदनन्तर गंगा को पार कर राजगृह में पहुँचे। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि श्वेताम्बिका श्रावस्ती से कपिलवस्तु की तरफ जाते समय रास्ते में पड़ती थी। यह प्रदेश कोशल के पूर्वोत्तर में और विदेह के पश्चिम में पड़ता था और वहाँ से राजगृह की तरफ जाते समय बीच में गंगा पार करनी पड़ती थी, यह इन स्थानों की भौगोलिक स्थिति के निरीक्षण से प्रतीत होता है। आधुनिक क्षत्रियकुण्डपुर जहाँ बतलाया जाता है वहाँ से ये दोनों बातें ठीक नहीं उतरतीं। वहाँ से श्वेताम्बिका नगरी न तो रास्ते में पड़ती है और न राजगृह जाते समय रास्ते में गङ्गा को पार करने का अवसर आवेगा।

इन सब प्रमाणों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि वैशाली ही वर्धमान महावीर की जन्मभूमि थी, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। भगवान् महावीर का वैशाली के साथ सम्बन्ध बड़ा ही

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n108/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृढ़ है, महावीर को शास्त्रों में 'वेसालिय' अर्थात् 'वैशालिक' कहा गया है। इस शब्द की व्याख्या 'सूत्रकृतांग' की शीलांकाचार्य रचित टीका में इस प्रकार है—

विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव च।
विशालं वचनं चास्य तेन वैशालिको जिनः।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महावीर का जन्म विशाला नगरी (वैशाली) में निश्चित रूप से हुआ था।

वैशाली के आसपास जो नगर शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं उनकी स्थिति का भी परिचय मिलता है। वैशाली के पास ही गण्डकी नदी बहती थी जो आज भी बसाढ़ के पास बहती है। इसके पूरबी तट पर थे वैशाली, ब्राह्मण कुण्ड तथा क्षत्रिय कुण्ड तथा पश्चिमी तट पर थे कर्मार ग्राम, कोल्लाग सन्निवेश, वाणिज्य ग्राम तथा द्विपलाश चैत्य। इसी 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' को भगवान् महावीर की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। जो लोग बिहार के मुंगेर जिले में लिच्छुआड़ के पास प्राचीन कुण्डग्राम बतलाते हैं, वे एक निराधार कल्पना करते हैं[1]।

महावीर की मृत्यु 'पावापुर' में मानी जाती है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन से जान पड़ता है कि यह स्थान जिला गोरखपुर के पँडरौना के पास 'पप-उर' ही है। संगीति परियायसुत्त (दीघनिकाय ३३वाँ सुत्त) के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ मल्ल नामक गणतन्त्र लोगों की राजधानी थी जिसके नये संस्थागार (संठागार) में बुद्ध ने निवास किया था। यह भी पता चलता है कि बुद्ध के यहाँ आने से पहले ही निगंठ नातपुत्त का देहावसान हो चुका था

१ द्रष्टव्य श्री विजेन्द्रसूरि रचित 'वैशाली' नामक प्रामाणिक पुस्तक पृष्ठ ४०-४१; दिल्ली सं० २००३

७

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n109/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके भक्तों तथा अनुयायियों में मतभेद भी होने लगा था। बौद्ध ग्रन्थों में महावीर 'निगंठ नातपुत्त' के नाम से विख्यात हैं। 'नातपुत्त' तो ज्ञातिपुत्र है। ज्ञाति नामक क्षत्रियवंश में उत्पन्न होने से यह नाम पड़ा। 'निगंठ' निर्ग्रन्थ है जो संसार के ग्रन्थियों से मुक्त होने के कारण 'केवल ज्ञान' सम्पन्न वर्धमान की उस समय की उपाधि प्रतीत होता है।

जैन धर्म की विपुल उन्नति के कारण ये ही वर्धमान महावीर हैं जिनका जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राम में ५९९ ई० पू० तथा तिरोधान ५२७ ई० पू० पावापुर में हुआ। इनकी जीवन-घटनायें नितान्त प्रसिद्ध हैं। पार्श्वनाथ के द्वारा जिस जैनधर्म की व्यवस्था पहले की गई थी उसमें इन्होंने संशोधन कर समयानुकूल बनाया। पार्श्वनाथ ने चार महाव्रतों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह—के विधान पर जोर दिया है, पर महावीर ने 'ब्रह्मचर्य' को भी उतना ही आवश्यक तथा उपादेय बतलाकर उसकी भी गणना महाव्रतों में की है। पार्श्वनाथ वस्त्रधारण करने के पक्षपाती थे, पर महावीर ने नितान्त वैराग्य की साधना के लिए यतियों के वास्ते वस्त्रपरिधान का बहिष्कार कर नग्नत्व को ही आदर्श आचार बतलाया है। आजकल के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों का विभेद इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से चला आता है।

महावीर ने व्यक्ति के लिए जो सन्देश प्रस्तुत किया है वह सदा मनुष्यों के हृदय में आशा का तथा उत्साह का संचार करता रहेगा। प्राणी अपना प्रभु स्वयं है। उसे अपने कर्मों के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति पर आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। जीव स्वावलम्बी है। जीव स्वतन्त्र है। वह 'अनन्त-चतुष्टय' से सम्पन्न रहता है। उसमें अनन्त सामर्थ्य भरा हुआ है। वह इस सामर्थ्य को नहीं जानता, इसीलिए वह संसार में नाना क्लेशों को भोग रहा है परन्तु अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होते ही वह क्लेशमय बन्धनों से मुक्ति पाकर केवली

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n110/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर विचरने लगता है। जगत् के कोने-कोने में जीवों की सत्ता मानना, उन्हें किसी प्रकार भी हिंसा न पहुँचाना, मानव के अनन्त सामर्थ्य की पहचान करना—आदि सुन्दर शिक्षायें हमें वैशाली के इस महापुरुष ने सिखलाया है।

इस दिव्य विभूति की यह वाणी सदा स्मरण रखने योग्य है कि जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं, जबतक इन्द्रियाँ अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए, बाद में कुछ होने का नहीं—

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे॥

———

बौद्धधर्म

(११) बुद्धधर्म का उदय और अभ्युदय

बौद्ध धर्म तथा दर्शन के यथार्थ विस्तृत विवेचन के लिये न तो हमारे पास स्थान है न पर्याप्त साधन। यहाँ इसका सामान्य रूप से ही परिचय करा देना हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं। बौद्धधर्म के दो रूप इतिहास के पृष्ठों में दीख पड़ते हैं। एक शुद्ध धार्मिक रूप है, जिसमें आध्यात्मिक ग्रन्थियों को बिना खोले हुए व्यवहार के लिये

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n111/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक आचार का सरल प्रतिपादन किया गया है। भगवान् बुद्ध के उपदेश इसी सरल धार्मिक रूप में पाये जाते हैं। दूसरा दार्शनिक रूप है। जब आध्यात्मिक तत्त्व-जिज्ञासा ने आचारमीमांसा को एक प्रकार से गौण बना दिया, तब प्रकाण्ड बौद्ध विद्वानों ने ब्राह्मणदर्शन के अनुकरण पर बुद्ध के सरल उपदेशों की आध्यात्मिक व्याख्या कर शुद्ध तर्क की सहायता से तत्त्वों का गम्भीर अन्वेषण किया तथा बुद्ध-धर्म की धुँधली दार्शनिक रूपरेखा को स्पष्ट दर्शाया। यह दार्शनिक रूप हमें पहले-पहल विक्रम की द्वितीय शताब्दी में अश्वघोष के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है तथा तदनन्तर अनेक शताब्दियों तक उपलब्ध होता चला जाता है। पहले रूप का वर्णन पाली-भाषा में निबद्ध बुद्धागमों-त्रिपिटकों-में मिलता है तथा दूसरे रूप का वर्णन, अधिकांश में, संस्कृत भाषा में प्रणीत ग्रंथ-रत्नों में दीख पड़ता है। पहले रूप के शुद्ध दार्शनिक न होने पर भी उसमें दार्शनिक आधार का अभाव नहीं है। अतः इस निबन्ध में इन द्विविध रूपों का दर्शन संक्षेप में कराया जायगा। बौद्धधर्म के इस समय इतने महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ या उनके चीनी तथा तिब्बती भाषान्तर मिल गये हैं तथा मिलते जा रहे हैं कि उन सबके वर्णन के लिये एक अलग पोथा तैयार हो जायगा; अतः यहाँ नितान्त महत्त्वशाली ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के संक्षिप्त परिचय से ही सन्तोष करना होगा।

बुद्ध का जीवनचरित

इस धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध की जीवन-घटनाओं से परिचय प्राप्त करना इस धर्म की विशेषताओं के समझने के लिये आवश्यक है। प्राचीन कोसल जनपद के एक प्रधान नगर कपिलवस्तु में शाक्य लोगों के गण में शाक्य शुद्धोदन की भार्या मायादेवी के गर्भ से ५०५ विक्रम पूर्व वैशाखी पूर्णिमा को लुम्बिनी नामक उद्यान में (वर्तमान नाम

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n112/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुम्मिनदेई) बुद्ध का जन्म हुआ था। इनका नाम रक्खा गया सिद्धार्थ। जन्म के सात दिन के भीतर ही माता का देहान्त हो गया। उस समय के नियमानुसार शिक्षणीय विद्याओं में पारङ्गत होकर सिद्धार्थ ने २६ वर्ष सांसारिक जीवन बिताया। इस बीच में इनका विवाह भी हो गया था तथा पुत्र के मुखकमल के अवलोकन करने का भी इन्हें सौभाग्य प्राप्त हो गया था, पर हृदय में सांसारिक विषयों से अखण्ड वैराग्य जाग रहा था। अतः युवती पत्नी के प्रेममय आलिङ्गन, नवजात शिशु के आनन्दमय अवलोकन तथा सांसारिक विशाल वैभव को लात मारकर २६ साल की उम्र में सिद्धार्थ ने अभिनिष्क्रमण किया। छः साल तक मगधदेश के अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न गुरुओं से शिक्षा ग्रहण की तथा कठोर तपस्या में अपना शरीर गला डाला। इस मार्ग की आध्यात्मिक उन्नति में व्यर्थता विचार कर सिद्धार्थ ने बुद्ध गया के पास 'उरुवेल' नामक ग्राम में चार आर्यसत्यों का साक्षात्कार किया तथा उसी दिन से 'बुद्ध' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। आध्यात्मिक जगत् की यह महत्त्वपूर्ण घटना ४७१ वि० पू० संवत् की वैशाख पूर्णिमा को घटित हुई, जिस समय सिद्धार्थ केवल पैंतीस वर्ष के युवक थे। उसके अनन्तर आषाढ़ी पूर्णिमा को उन्होंने काशी के समीपस्थ मृगदाव (इसिपत्तन=सारनाथ) में कौण्डिन्य आदि पाँच पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के सामने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया तथा अपनी शेष आयु इस धर्म के प्रचार में बितायी। अपने नगर के गणराज्य के आदर्श पर इन्होंने भिक्षुओं के लिये संघ की स्थापना की तथा जीवन को सुधारने के लिये "विनय' तथा 'धर्म' के उपदेशों को दिया। मगध के राजा बिम्बसार तथा अजातशत्रु ने इनके अहिंसापरक उपदेशों को बड़े ध्यान से सुना तथा इस धर्म के प्रचार में हाथ बटाया। अन्ततः ४२६ वि० पू० संवत् की वैशाखी पूर्णिमा को अस्सी साल की आयु में मल्लगणतन्त्र की राजधानी कुशीनगर (कसया, जिला गोरखपुर) में भगवान् बुद्ध का निर्वाण

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n113/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न हुआ[1]। इस प्रकार बुद्धधर्म के इतिहास में वैशाखी पूर्णिमा की तिथि बड़ी पवित्र मानी जाती है, क्योंकि उसी तिथि को बुद्ध के जीवन की तीन घटनाएँ—जन्म, बोधिप्राप्ति तथा निर्वाणप्राप्ति—सम्पन्न हुई हैं। भगवान् बुद्ध के द्वारा पवित्रित किये जाने से जन्म-स्थान लुम्बिनी, अनुत्तर सम्यक् संबोधि की प्राप्ति का स्थान बोधगया, अनुत्तर धर्मचक्र के प्रवर्तन का स्थान सारनाथ तथा अनुपाधिशेष निर्वाण धातु की प्राप्ति का स्थान कुशीनगर—बौद्धधर्म के चार तीर्थस्थल माने जाते हैं।

पाली त्रिपिटक

भगवान् बुद्ध के द्वारा रचित किसी भी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। उनके उपदेश जनता की बोलचाल की भाषा में मौखिक हुआ करते थे। उस भाषा का नाम मागधी या पाली दिया जाता है। इसी पाली भाषा में बुद्ध के उपदेशों के संग्रह-स्वरूप तीन संग्रह ग्रन्थों अथवा पिटकों की उपलब्धि होती है। बुद्ध की शिक्षाएँ दो प्रकार की होती थीं—एक तो धर्म के सामान्य रूप के विषय में तथा दूसरी संघभुक्त भिक्षु तथा भिक्षुणियों के नियम के विषय में। पहले उपदेश को 'धर्म' या सुत्त (सूत्र या सूक्त) कहते हैं तथा दूसरे उपदेश 'विनय' नाम से पुकारे जाते हैं। सुत्त तथा विनय के भीतर बुद्ध के समस्त उपदेश सम्मिलित कर दिये गये हैं। ये ग्रन्थ भिक्षुओं को याद थे। अतः ४२६ वि० पू० संवत् में बुद्ध की निर्वाणप्राप्ति के अवसर पर इनमें किसी प्रकार के भ्रम या अशुद्धि की आशंका से महाकाश्यप के सभापतित्व में बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम सम्मेलन (प्रथम संगीति) राजगृह में हुआ, जिसमें बुद्ध के सहचर 'आनन्द' के सहयोग से 'सुत्तपिटक' तथा नापितकुलोत्पन्न

१ बुद्ध के अन्तिम काल के विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य महा-परिनिब्बानसुत्त (दीघनिकाय का १६वाँ सुत्त)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n114/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपालि के सहयोग के 'विनयपिटक' का संकलन किया गया। स्वयं सुत्तपिटक के भीतर संक्षिप्त दार्शनिक अंश भी उपलब्ध होता है, जिसे 'मातिका' (मात्रिका) के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं मात्रिकाओं के पल्लवीकरण का परिणाम आजकल उपलब्ध अभिधम्म (अभिधर्म= अध्यात्मविषय) पिटक है। अभिधर्म बुद्धधर्म का विशुद्ध दार्शनिक पिटक है, जिसमें सुत्तपिटक में उल्लिखित बुद्ध के उपदेशों के लिये दार्शनिक भित्ति तथा आधार तैयार किया गया है। अशोक के समय (वि० पू० तृतीय शतक) तक तीनों पिटकों की सृष्टि हो चुकी थी, क्योंकि उनके पुत्र महेन्द्र तथा कन्या संघमित्रा के उद्योग से लंकाद्वीप में तथागत के धर्म के साथ इन पिटकों का भी प्रथम प्रवेश उसी समय हुआ। आजकल उपलब्ध पाली पिटक बौद्धधर्म में सबसे प्राचीन स्थविर निकाय के साथ सम्बन्ध रखता है। अतः बुद्ध के आचार तथा दार्शनिक विचार की हमारी जानकारी इन्हीं त्रिपिटकों के ऊपर अवलम्बित है।

इन संग्रहग्रन्थों का विस्तार इस प्रकार है—

(१) सुत्तपिटक—पाँच निकाय (सुत्तसमूह) में विभक्त हैं—दीघनिकाय ३४ सुत्त, मज्झिमनिकाय १५२ सुत्त, संयुत्तनिकाय ५६ संयुत्त, अंगुत्तरनिकाय ११ निपात तथा अन्तिम निकाय है खुद्दकनिकाय, जिसमें निम्नलिखित १५ छोटे-मोटे ग्रन्थ सम्मिलित माने जाते हैं—(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद (गौतमबुद्ध की ४२३ उपदेशात्मक गाथाओं का सुप्रसिद्ध संग्रह), (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक (बुद्ध के पूर्वजन्म सम्बन्धिनी ५५० कथाएँ), (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस तथा (१५) चरियापिटक। इन सब में मज्झिम-निकाय बुद्ध के सिद्धान्तों की जानकारी के लिये विशेष महत्त्व रखता है।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n115/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) विनयपिटक—भिक्षु तथा भिक्षुणियों के नियम एवं आचार तथा उनके इतिहासविषयक ग्रन्थ। इसके तीन प्रधान खण्ड हैं—(१) सुत्तविभंग या पातिमोक्ख, जिसके दो अवान्तर भेद हैं—(क) भिक्खुपातिमोक्ख तथा (ख) भिक्खुनी विभंग, (२) खन्धक-जो इस पिटक का प्रधान भाग है तथा जिसके दो अवान्तर विभेद हैं—(क) महावग्ग तथा (ख) चुल्लवग्ग और (३) परिवार।

(३) अभिधम्मपिटक—सुत्तपिटक में उल्लिखित तत्त्वप्रतिपादक अंशों का विस्तार इस पिटक में किया गया है। बौद्धदर्शन के आध्यात्मिक रहस्यों के जानने के लिये यही पिटक सबसे अधिक उपयोगी है। तत्त्वों के विषय में पाण्डित्यपूर्ण विवेचन उपस्थित किया गया है। इसमें सात ग्रन्थ हैं—

(१) पुग्गलपञ्ञत्ति—व्यक्तियों का वर्णन है। साथ ही साथ मनोभावों की संक्षिप्त, पर सुन्दर विवेचना की गयी है।

(२) धातुकथा—सृष्टि के पदार्थों के स्वरूपों का यथार्थ वर्णन किया गया है (धातु=पदार्थ)।

(३) धम्मसंगणि—मानसिक स्थिति का विस्तृत तथा विद्वत्तापूर्ण वर्णन। बौद्धदर्शन के मनोविज्ञान के जानने के लिये नितान्त उपादेय।

(४) विभंग—पूर्व ग्रन्थ का पूरक ग्रन्थ है। ज्ञान के विविध प्रकारों का वर्णन है। इन्द्रियजन्य ज्ञान से लेकर बुद्ध के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान तक के समस्त अवान्तर ज्ञानों का सूक्ष्म विवरण दिया गया है। साथ ही साथ ज्ञानमार्ग के विघ्नों का संक्षिप्त वर्णन भी है।

(५) पट्ठानपकरण—अध्यात्मविषयक प्रश्नों का विवेचन।

(६) कथावत्थु—बौद्ध सम्प्रदाय के इतिहास के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। आत्मा, निर्वाण, अर्हत् पद की प्राप्ति, बुद्ध की दस अमानुषिक शक्तियाँ आदि प्रश्नों के विषय में पाखण्डमत का खण्डन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n116/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। यह ग्रन्थ मोग्गलिपुत्त तिस्स (३रा. शतक वि० पू०) की रचना बतलाया जाता है।

(७) यमक—सब प्रश्नों पर अस्ति तथा नास्तिरूप से द्विविध विचार[1]।

बुद्ध के उपदेश

बुद्ध मुख्यतया एक धार्मिक सुधारक तथा आचार के शिक्षक के रूप में पाली त्रिपिटिकों में वर्णित किये गये हैं। उस समय इस देश के प्रचलित धर्म में जो बुराइयाँ दिखलायी पड़ीं, उनका दूर करना उनके धर्म का प्रधान उद्देश्य था। वे अध्यात्मशास्त्र की गुत्थियों को सुलझाने वाले, शुद्ध तर्क की सहायता से आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन करने वाले दार्शनिक थे। गृहस्थ जीवन में रहते समय उनके कोमल हृदय पर दुःख के अस्तित्व ने गहरा प्रभाव डाला। रोगी, वृद्ध तथा मरे हुए आदमी को देखने से उन्हें निश्चय हो गया कि दुःख का चक्कर वास्तविक है और कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो इस चक्कर में पड़कर न पीसा जाता हो। अतः इस क्लेश से मुक्ति पाना मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। इस कारण आध्यात्मिक तत्त्वों के विषय में जब कोई प्रश्न करता था, तब उसे जटिल तथा तर्कानुसार अनिश्चित बतलाकर टाल दिया करते थे। इस टालमटोल करने का कारण उनकी तद्विषयक अज्ञानता न थी, प्रत्युत मानव-जीवन की विषम समस्याओं के हल करने में अनुपयुक्त तथा अनावश्यक समझना ही था। पाली ग्रन्थों में

---

१. विषय के लिये देखिये—

विन्टरनित्स–हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर (भाग २)

विमलाचरण ला–हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर (भाग २)

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n117/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे अनेक प्रसङ्गों की पर्याप्त चर्चा मिलती है। मज्झिमनिकाय[1] के वर्णनानुसार मालुंक्यपुत्त ने श्रावस्ती के जेतवन में विहार करते समय बुद्ध से इन दस मेण्डक[2] प्रश्नों को पूछा था—(१) क्या यह लोक शाश्वत है ? (२) क्या यह लोक अशाश्वत है ? (३) क्या यह लोक अन्तवान् है ? (४) क्या यह लोक अनन्त है ? (५) क्या शरीर तथा जीव एक ही—अभिन्न वस्तु हैं ? (६) अथवा शरीर भिन्न है और जीव दूसरा है ? (७) क्या संबोधि को प्राप्त करने वाले पुरुष मरने के बाद होते हैं ? (८) अथवा ऐसे पुरुष मरने के बाद नहीं होते ? (९) अथवा मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते ? (१०) क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं, न नहीं होते ? इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिये अत्यन्त आग्रह कियेजाने पर बुद्ध ने इन्हें अव्याकृत (अव्याकरण= कथन के अयोग्य) बतलाया; इनका उत्तर ठीक-ठीक ढंग से दिया नहीं जा सकता; क्योंकि आचारमार्ग के लिये वैराग्य, उपशम, अभिज्ञा (लोकोत्तर ज्ञान), सम्बोध (परम ज्ञान) तथा निर्वाण (आत्यन्तिकी मुक्ति) उत्पन्न करने में इनकी जानकारी की तनिक भी जरूरत नहीं है। सब से विकट तथा प्रत्यक्ष विषय क्लेश तथा उसका निवारण है। इस विषय में अनुपयोगी होने के कारण इनका हल करना अनावश्यक है। यदि कोई मनुष्य विष से बुझे हुए बाण से घायल पड़ा कराहता हो और उसके सगे-सम्बन्धी उसकी चिकित्सा के लिये विषवैद्य को ले आने के लिये उद्यत हों, तब उसका बाण के बनाने वाले

---

१. द्रष्टव्य चूलमालुंक्यसुत्तन्त (६३वाँ सूत्र), मज्झिमनिकाय पृ० २५१—२५३।

२. 'मेण्डक प्रश्न' उन-विषम प्रश्नों को कहते हैं, जिनका निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता। इन्हें पश्चिमी न्याय के सुप्रसिद्ध 'हार्न्स ऑफ ए डाइलेमा' का प्रतीक समझना चाहिये। द्रष्टव्य 'मिलिन्द-पन्हो'।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n118/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जाति, रूप, रंग, नाम, गोत्र, निवासस्थान आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आग्रह करना कितना उपहासास्पद है। लौकिक बुद्धि पुकार कर सलाह देती है कि वह काल शरीर में धँसे हुए तथा असीम पीड़ा पहुँचाने वाले उस बाण को हाथ से झट से निकाल बाहर करने का है, इस प्रकार के व्यर्थ के तत्त्व-विचार का नहीं। लौकिक रोग का यह दृष्टान्त तात्त्विक चिन्ता को व्यर्थ बतलाने के लिये पर्याप्त है।

मुख्य विषय है कि इस लोक में दुःखकी सत्ता है; यह इतनी वास्तविक है कि उसका कोई अपलाप नहीं कर सकता। यदि दुःख है तो उसकी उत्पत्ति की चिन्ता करनी चाहिये, क्योंकि बिना उत्पत्ति को जाने उसके निरोध (रोकने) के लिये प्रयत्न नहीं किया जा सकता। निरोध के बाद विचारणीय विषय उसकी उपलब्धि करानेवाले मार्ग का है। अतः दुःख की इन चतुर्विध समस्याओं का सुलझाना ही मानवमात्र के लिये प्रधान कार्य है। बुद्ध ने इन समस्याओं को समझा और उनकी गुत्थियों को सुलझाया, इसीलिये वे सम्यक् संबुद्ध (अच्छी प्रकार जागने वाले) के नाम से पुकारे जाते हैं। इन समस्याओं का उत्तर बुद्ध ने दिया है—(१) इस संसार में जीवन दुःख से परिपूर्ण है; (२) उस दुःख का कारण विद्यमान है; (३) इस दुःख से वास्तविक छुटकारा मिल सकता है; (४) इस निरोध के लिये उचित उपाय या मार्ग है। इन्हें ही बुद्ध-धर्म में आर्यसत्य[1] के नाम से पुकारते हैं—(१) दुःख, (२) दुःखसमुदय,

---

१. द्रष्टव्य चन्द्रकीर्ति—माध्यमिककारिकावृत्ति (पृ० ४७६)

इन सत्यों के पहले 'आर्य' विशेषण लगाने का अभिप्राय यह है कि विद्वान् लोग ही इनकी सत्यता की उपलब्धि करते हैं। पामरजन जीते हैं, मरते हैं, पर इन तत्त्वों पर नहीं पहुँच पाते।

ऊर्णापक्ष्म यथैव हि करतलसंस्थं न विद्यते पुंभिः।
अक्षिगतं तु तदेव हि जनयत्यरतिं च पीडां च॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n119/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) दुःख-निरोध, (४) दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद्[1]। बुद्धधर्म के प्राथमिक स्वरूप को जानने के लिये इन सत्यों का परिचय पाना आवश्यक है।

आर्य-सत्य

(१) दुःखम्

आर्य-सत्यों में प्रथम दुःखरूप सत्य लोक के अनुभव पर अवलम्बित हैं। इस जगतीतल के प्राणियों पर दृष्टिपात करने से सब प्राणी रोग, जरा तथा मरण के शिकार होते दिखलायी पड़ते हैं। यह इतना स्थूल है कि इसका अपलाप हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण दार्शनिकों के समान बुद्ध ने भी प्राणियों के जीवन को अशान्त बनानेवाले इस क्लेश की सत्ता का पता लगाया, पर उनकी विशेषता इसके निरोध तथा तदुपाय-भूत मार्ग की विवेचना में है।

करतलसदृशो बालो न वेत्ति संस्कारदुःखतापक्ष्म।
अक्षिसदृशस्तु विद्वान् तेनैवोद्विजते गाढम्॥

१. इन आर्य-सत्यों की खोज करने के कारण सिद्धार्थ का नाम 'बुद्ध' हुआ, ऐसा बतलाया जाता है; पर वैद्यकशास्त्र के सिद्धान्तों पर अवलम्बित होने वाला यह तत्त्व बुद्ध से पहले का है। द्रष्टव्य सांख्यप्रवचन भाष्य (पृ० ६)—'तदिदं मोक्षशास्त्रं चिकित्साशास्त्रवत् चतुर्व्यूहम्। यथा हि रोग आरोग्यं रोगनिदानं भैषज्यम् इति चत्वारो व्यूहाः समूहाश्चिकित्सा-शास्त्रस्य प्रतिपाद्याः। तथैव हेयं हानं हेयहेतुर्हानोपायश्चेति चत्वारो व्यूहा मोक्षशास्त्रस्य प्रतिपाद्या भवन्ति॥'

वैद्यकशास्त्र की इस समता के कारण बुद्ध का एक नाम पड़ा महाभिषक्=बड़ा वैद्य। बौद्ध साहित्य में भी भैषज्य-नामधारी अनेक ग्रन्थों के अस्तित्व का पता चलता है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n120/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) दुःखसमुदयः

दूसरा सत्य दुःख के कारण की खोज करनी है। इसके लिये केवल एक ही कारण नहीं खोज निकाला गया, प्रत्युत कारण-परम्परा का अन्वेषण नये प्रकार से बुद्ध ने किया, जिसमें एक कारण दूसरे कारण के आधार पर अवलम्बित रहता है। सबसे बड़ा दुःख जरा-मरण (बुढ़ापा तथा मृत्यु) है। इसकी उत्पत्ति का कारण जाति (जन्म ग्रहण करना) है। यदि इस संसार में प्राणी का जन्म ही नहीं होता, तो तज्जन्य वृद्धता तथा मरण के क्लेश सहने का अवसर ही नहीं आता। इस जाति का कारण है भव[1]। भव उन कर्मों को कहते हैं, जिनके कारण प्राणी का पुनर्भव-पुनर्जन्म होता है। यदि ऐसे फलोन्मुख कर्मों का सर्वथा अभाव रहता, तो जन्म के पचड़े में आकर क्लेश सहने का मौका ही न आता। इस भव का कारण है—उपादान[2] अर्थात् आसक्ति। प्राणी की आसक्ति के विषय अनेक हैं, कभी वह स्त्री में आसक्ति (कामोपादान) धारण करता है, कभी शील-व्रत में। पर आत्मा के नित्यत्व में उसकी आसक्ति सबसे प्रधान है। आत्मा को नित्य मानना ही अनेक स्वार्थ तथा हिंसा-मूलक कार्यों का निदान है। इस उपादान की उत्पत्ति रूपादि पञ्च विषयों में उत्पन्न तृष्णा (इच्छा) के कारण होती है। यह तृष्णा कारण

---

१. इस शब्द के अर्थ के विषय में गहरा मतभेद है। यहाँ अभिधर्म-कोशसम्मत अर्थ दिया गया है—'स भविष्यद्भवफलं कुरुते कर्म तद्भवः।' (अभिधर्मकोश ३। २४)
'पुनर्भवजनकं कर्म समुत्थापयति कायेन वाचा मनसा च।' (चन्द्रकीर्ति—माध्यमिकवृत्ति पृ० ५६५)

२. उपादान तथा तृष्णा के अर्थ के लिये देखिये चन्द्रकीर्ति—माध्यमिककारिकावृत्ति पृ० ५६५।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n121/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हुए भी वेदना का कार्य है। वेदना के कारण तृष्णा का आविर्भाव होता है। इन्द्रियजन्य अनुभव वेदना के नाम से प्रसिद्ध है। इन्द्रियों के द्वारा बाह्य वस्तु के अनुभव के विना उसकी उपलब्धि के लिये तृष्णा की उत्पत्ति ही असंगत है। इस वेदना का कारण स्पर्श है—इन्द्रिय तथा विषय के सम्पर्क की 'स्पर्श' संज्ञा है। अनुभव प्राप्त करने का प्रधान साधन है विषय के साथ इन्द्रियों का सम्पर्क—स्पर्श[1]। यह स्पर्श सिद्ध नहीं होता, यदि वस्तुग्रहण करने में समर्थ पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन की सत्ता स्वीकृत न होती। अतः यह षडायतन स्पर्श का कारण है और वह स्वयं नाम-रूप का कार्य है। नामरूप का अर्थ है प्राणी का दृश्यमान शरीर तथा मन से संवलित संस्थान-विशेष। पर यह नाम-रूप ही नहीं होता यदि इसमें विज्ञान (या चैतन्य) का अभाव होता। माता के गर्भ से ही यह चित्तधारा या चैतन्य भ्रूण के नाम-रूप को सिद्ध होने में सहायक होती है। अतः इसे उसका कारण बतलाना उचित ही है। यह विज्ञान संस्कार (पूर्वजन्म के कर्म तथा अनुभव से उत्पन्न संस्कार) के कारण उत्पन्न होता है, जो स्वयं अज्ञान—तथ्य बात के न जानने—के कारण अपनी सत्ता धारण करता है। इस प्रकार समस्त दुःखों का आदि, मूल कारण अविद्या ही है। यदि जगत् की सत्य बातों का ज्ञान प्राणी को होता तो वह उन कार्यों के अनुष्ठान से ही विरत रहता, जिनका फल भोगने के लिये उसे इस संसार-चक्र में बारंबार आना पड़ता है। अतः वास्तव में अविद्या ही इस विशाल भवप्रासाद की नींव है। उसकी दृढ़ता पर इसकी सत्ता

---

१. ब्राह्मण दार्शनिक ग्रन्थों में भी स्पर्श का यह अर्थ स्वीकृत है। द्रष्टव्य गीता—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा। (२।१४)
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। (५।२२)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n122/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसके मूलोच्छेदन से यह प्रासाद बालू की भीत के समान तुरंत ही भूमिसाद् होकर छिन्न-भिन्न हो जाता है। अतः बुद्ध ने कारण परम्परा की गहरी छानबीन करके इस द्वितीय आर्यसत्य का पता लगाया—दुःख का समुदय।

इस कारण-परम्परा में १२ कारणों का समुच्चय है—जरामरण, जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार तथा अविद्या। इनमें पूर्व-पूर्व कार्य के लिये उत्तर-उत्तर कारण दिये गये हैं। यही है बौद्धों का सुप्रसिद्ध **भवचक्र तथा द्वादश**[1] **निदान**। आजकल के बौद्ध भिक्खु भी अपने हाथ में चरखी चला-चलाकर इसी तत्त्व की शिक्षा दिया करते हैं। इन द्वादश निदानों का सम्बन्ध प्राणी के तीन जीवनों से है। हमारा वर्तमान जीवन भूतजीवन का कार्य है, पर भविष्य जीवन का कारणभूत है। जैसे कर्म हमने प्राचीन जन्म में किये हैं, वैसे हम इस जन्म में और इस जन्म में जैसे कर्म कर रहे हैं, वे अगले जन्म की रूपरेखा को निष्पन्न करने के कारण हैं। इस प्रकार वर्तमान जीवन प्राचीन कर्मसमुदाय का कार्यरूप तथा अग्रिम जन्म कारण माना गया है। इन निदानों में आदि दो निदानों—अविद्या तथा संस्कार का सम्बन्ध भूतकाल के जन्म से तथा अन्तिम दो

---

१ निदानों की संख्या के विषय में बौद्धग्रन्थों में मतभेद दीख पड़ता है। दीघनिकाय पृ० ११०—११३ के महानिदानसुत्त में केवल नौ निदानों की परम्परा का वर्णन मिलता है; उसमें षडायतन, संस्कार तथा अविद्या के नामों का उल्लेख नहीं पाया जाता। पर मज्झिमनिकाय के ३८ वें सुत्तन्त महातण्हासंखय (महातृष्णासंक्षय) में निदानों की उपरिनिर्दिष्ट संख्या तथा क्रम का सविस्तर वर्णन दिया गया है। इन निदानों के अर्थ में बौद्धग्रन्थों में बहुत ही मतभेद दिखायी पड़ता है। द्रष्टव्य अभिधर्मकोश ३। १६—२५।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n123/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदानों—जाति तथा जरा-मरण का सम्बन्ध अगले जन्म से है, मध्य के ८ निदानों (विज्ञान से लेकर भव तक) का सम्बन्ध हमारे इस वर्तमान जीवन से है।[1]

इन्हीं द्वादश निदानों का दूसरा नाम प्रतीत्यसमुत्पाद है। यह बुद्ध-धर्म का मौलिक सिद्धान्त माना जाता है। इस शब्द के अर्थ के विषय में समधिक मतभेद दीख पड़ता है।[2] पर इसका सर्वमान्य अर्थ है प्रतीत्य—प्रति+इ (जाना)+ल्यप्—किसी वस्तु के होने पर समुत्पाद (सम्, उत्+पद्+घञ्) किसी अन्य की उत्पत्ति[3] अर्थात् सापेक्षकारणवाद। बुद्धधर्म के अन्यान्य सिद्धान्तों के मूल में यही प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धान्त है।

(३) दुःखनिरोधः

तीसरे आर्यसत्य का नाम दुःखनिरोध है। अर्थात् सत्तात्मक तथा कारण-कलाप से समुत्पन्न दुःख का आत्यन्तिक तिरस्कार किया जा सकता है। कारण की सत्ता से कार्य को सत्ता बनी हुई है। यदि कारण का निरोध कर दिया जाय, तो आप-से-आप चलनेवाली मशीन की तरह कार्य का निरोध स्वतः सम्पन्न हो जायगा। सारे क्लेशों का मूल कारण

---

१ स प्रतीत्यसमुत्पादो द्वादशाङ्गस्त्रिकाण्डकः।
पूर्वापरान्तयोर्द्वे द्वे मध्येऽष्टौ परिपूरणाः॥
(अ० को० ३।२०)

२ द्रष्टव्य चन्द्रकीर्ति—माध्यमिककारिकावृत्ति पृ० ५।

३ प्रतीत्यशब्दोऽत्र ल्यवन्तः प्राप्तावपेक्षायां वर्तते। समुत्पादः पदिः प्रादुर्भावार्थ इति समुत्पादशब्दः प्रादुर्भावे वर्तते। ततश्च हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादार्थः—चन्द्रकीर्तिः।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n124/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविद्या है। अतः विद्या के द्वारा अविद्या का निरोध कर देने से दुःख का निरोध स्वतः हो जायगा।

(४) दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद्

बुद्ध ने मृगदाव में दिये गये प्रथम व्याख्यान में ही इस मार्ग की रूपरेखा निर्धारित कर दी। मार्गनिर्धारण में उनके अपने प्रवृत्ति-मार्गीय तथा निवृत्तिमार्गीय जीवन ने खूब प्रभाव जमाया। एक ओर चैन की बंसी बजानेवाले, सुख-समृद्धि के आनन्द में अपना जीवन-यापन करनेवाले धनी-मानी लोगों के जीवन की ओर उनकी दृष्टि गयी, दूसरी ओर कठिन तपस्या तथा घोर व्रत के अनुष्ठान से ईश्वरीय देन—इस कंचनमयी काया-को सुखाकर काँटा बना डालनेवाले तपस्वियों के नियमपालन की ओर उनकी नजर गयी। इन दोनों जीवनों का फल क्लेशमय ही प्रतीत हुआ। इसलिये इन दोनों छोरों को छोड़कर उन्होंने सुनहले मध्यम-मार्ग का अवलम्बन किया। इस तरह आचारपद्धति के लिये बुद्ध ने 'मध्यमप्रतिपदा'=मध्यमार्ग को खोज निकाला।

इस मार्ग में आत्मशुद्धि के लिये आठ नियमों के अनुष्ठान की व्यवस्था की है, अतः इसे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की संज्ञा प्राप्त हुई है। ये आठ नियम निम्नलिखित हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि। चारों आर्यसत्यों का तत्त्वज्ञान सम्यक् दृष्टि कहलाता है। तत्त्वज्ञान का सहायक सम्यक संकल्प है। संकल्प को शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है और इसके लिये उसमें किसी प्रकार की कामना, द्रोह तथा हिंसा के भाव न होने चाहिये। संकल्प को व्यवहार में उतारना चाहिये। झूठ, चुगली, बकवाद तथा कटुवचन से विरहित वाणी सम्यक् वचन कही जा सकती है। हिंसा तथा दुराचार को छोड़ना

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n125/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है न्यायपूर्ण सच्चे व्यवहार से जीविका उपार्जन करना। इतने से ही काम नहीं चलता बल्कि जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों में भलाई-बुराई, कर्तव्य तथा कामना के द्वन्द्व-युद्ध में सदा लड़ने के लिये भी तैयार रहना चाहिये। इस प्रकार अनुत्पन्न बुराइयों की उत्पत्ति न होने देने के लिये तथा उत्पन्न बुराइयों के विनाश के लिये तथा भलाई की वृद्धि के लिये साधक की ओर से दृढ़ निश्चय तथा उद्योग किया जाना सम्यक् व्यायाम के अंतर्गत आता है। इसके साथ-साथ अपने शरीर, चित्त, वेदना आदि के अशुचि तथा अनित्य स्वरूप की यथार्थ उपलब्धि करके लोभ तथा चित्तसन्ताप से किनारा कसना भी साधक के लिये आवश्यक है। इसे ही सम्यक् स्मृति के नाम से पुकारते हैं[1]। इस प्रकार कायिक, वाचिक तथा मानसिक नियमन का अन्तिम परिणाम होना चाहिये सम्यक् समाधि। अर्थात् सुख-दुःख राग-द्वेष के विषम द्वन्द्वों का विनाश होने से चित्त का अपना शुद्ध नैसर्गिक एकाग्रतारूप धारण करना समाधि की पराकाष्ठा है। उसी दशा में निर्वाण का सद्यः साक्षात्कार किया जाता है।

बुद्ध के आचारमार्ग का सूत्र यही है—

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त-परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥

(धम्मपद १४।५)

अर्थात् समस्त पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना तथा अपने चित्त को परिशुद्ध (पर्यवदापन) करना—बुद्ध का यही अनुशासन है।

---

१ द्रष्टव्य दीघनिकायका महासति—पट्ठानसुत्त पृ० १९०—१९३; मज्झिमनिकाय का १० वाँ सुत्त।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n126/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख)

बुद्धधर्म का अभ्युदय

बौद्धधर्म के विभिन्न वाद

वि० पू० ४२६ में भगवान् गौतमबुद्ध के निर्वाण के अवसर पर उनके प्रधान शिष्यों की सहायता से राजगृह में प्रथम संगीति निष्पन्न हुई, जिसमें सुत्त तथा विनयपिटकों का रूप निर्धारण कर लिपिबद्ध किया गया; पर सौ वर्ष के भीतर ही विनय के कठोर नियमों को लेकर एक प्रबल विरोधी मतवाद खड़ा हो गया। इस विरोध का झंडा ऊँचा करनेवाले थे वज्जिदेशीय भिक्षु, जिन्हें वज्जिपुत्तक, वज्जिपुत्तिम तथा वत्सीपुत्रीय के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं के विरोध की शान्ति के लिये वैशालि की द्वितीय संगीति ३२६ वि० पू० में की गयी। पर प्राचीन विनयों के पक्षपाती भिक्षुओं के सामने अपनी चलती न देखकर भिक्षुओं ने कौशाम्बी (प्रयाग जिले के वर्तमान 'कोसम' नगर) में दस हजार भिक्षुओं के महासंघ के साथ अपनी संगीति अलग की। उसी दिन से बुद्धधर्म में दो प्रधान भेद खड़े हो गये—प्राचीन विनयनियमों को मानने वाले स्थविरवादी कहलाये तथा विनयों में नवीन संशोधनों को स्वीकार करनेवाले भिक्षु महासंघ के कारण महासंघिक कहलाये। इस संगीति के १०० वर्ष के अनन्तर ही १८ भिन्न-भिन्न मत उठ खड़े हुए। लोकप्रियता का यही मूल्य है। बुद्धधर्म में अनेक भिन्न प्रकृति के लोग सम्मिलित होने लगे, जिन्हें बुद्ध के मूल नियमों का अक्षरशः पालन कष्टकारक प्रतीत होने लगा और जो अनेक सिद्धान्तों के परिवर्तन के पक्षपाती थे, इन्हीं मतवादों का निर्णय करने के लिये सम्राट् अशोक के समय तृतीय संगीति की स्थापना महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में हुई।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

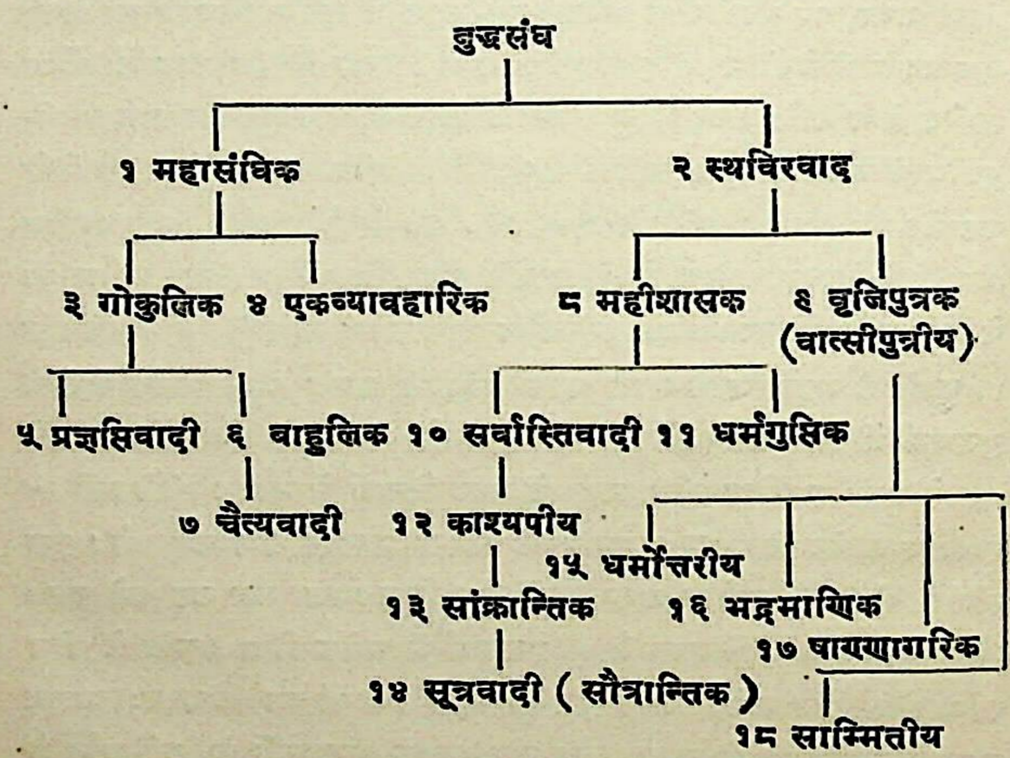
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n127/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अष्टादश निकायों के नाम तथा पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में बौद्धग्रन्थों में खूब वैमत्य दीख पड़ता है। आचार्य वसुमित्र ने 'अष्टादश-निकायशास्त्र' नामक नवीन ग्रन्थ की इन्हीं निकायों के सिद्धान्त के विषय में रचना कर इस विषय के स्पष्टीकरण के लिये खूब प्रयत्न किया; पर आचार्य वसुमित्र[1] तथा आचार्य भव्य के द्वारा उल्लिखित तथा दीपवंस[2] और कथावत्थु की अट्ठकथा में निर्दिष्ट इन निकायों के नाम तथा सम्बन्ध की विषमता आज भी बनी हुई है। अट्ठकथा के अनुसार इन अष्टादश निकायों की स्थिति इस प्रकार थी—



१. वसुमित्र तथा भव्य की सूची के लिये देखिये।
—कथावत्थु के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० ३६-३७।

२. दीपवंश की सूची के लिये देखिये अभिधर्मकोश भूमिका पृ० ४।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n128/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अष्टादश निकायों की उत्पत्ति अशोक से पहले ही हो चुकी थी; पर उनके बाद भी इस मतवाद का प्रवाह रुका नहीं, प्रत्युत बुद्धधर्म के विपुल प्रसार के साथ-साथ विभिन्न सिद्धान्तों के कारण नवीन सम्प्रदायों-की उत्पत्ति तथा पुष्टि होती ही रही। कथावत्थु में इन अवान्तर तथा अपेक्षाकृत नवीन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। चैत्यवादी सम्प्रदाय से आन्ध्रभृत्य राजाओं के राज्य में विस्तार पाने वाले 'अन्धक' सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। आन्ध्रभृत्यों की राजधानी धान्यकटक (जिला गुंटूर का धरनीकोट नगर) इस सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल था। इसी 'अन्धक' सम्प्रदाय से कालान्तर में ई० पू० प्रथम शताब्दी में चार अन्य सम्प्रदायों का जन्म हुआ—पूर्वशैलीय, अपरशैलीय, राजगिरिक तथा सिद्धार्थक। धान्यकटक के स्तूप का नाम ही 'महाचैत्य' था[1], जिसके कारण वहाँ का सम्प्रदाय चैत्यवादी कहलाया। 'राजगिरिक' तथा 'सिद्धार्थक' नामकरण के कारण का पता नहीं चलता; पर पूर्व-शैलीय तथा अपरशैलीय सम्प्रदाय, भोट-ग्रन्थों के आधार पर, धान्यकटक के पूर्व तथा पश्चिम में होने वाले पर्वतों के ऊपर स्थित विहारों के कारण तत्तत् नाम से अभिहित हुए हैं। अन्धकों की एक और शाखा थी जिसे वैपुल्यवादी या वेतुल्लवादी के नाम से पुकारते थे। इन अन्धक सम्प्रदायों तथा वैपुल्यवाद के सिद्धान्तों का सम्मिश्रण हो जाने से महायान सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई।

इन विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का परिचय पाने के लिये सर्वोपयोगी पालीग्रन्थ 'कथावत्थु' है। पर स्थानाभाव के कारण इन सब सिद्धान्तों का वर्णन यहाँ नहीं दिया जा रहा है। भोटग्रन्थों में इन

---

१. श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणापथसंज्ञके।
श्रीधान्यकटके चैत्ये जिनधातुधरे भुवि ॥
—मञ्जुश्रीमूलकल्प (दशम पटल)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n129/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टादश निकायों में से चार सम्प्रदायों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है—(१) आर्य-सर्वास्तिवाद, (२) महासंघिक, (३) आर्य साम्मितीय तथा (४) आर्य-स्थविर। अधिककालव्यापी होने के कारण ये चार ही प्रधान सम्प्रदाय हैं, जिनके भीतर उपरिनिर्दिष्ट अष्टादश निकायों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। ब्राह्मण दार्शनिकों (शङ्कराचार्य, उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र आदि) के ग्रन्थों में इनके सिद्धान्तों का उल्लेख भी इनकी प्रधानता तथा महत्ता प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त माना जा सकता है। आर्य-स्थविरवाद बुद्ध के मूल उपदेशों को माननेवाला सम्प्रदाय है, जिससे अनेक विनयगत नियमों में शिथिलता स्वीकार कर महासंघिक सम्प्रदाय सबसे प्रथम पृथक् हुआ। पालीत्रिपिटकों में उल्लिखित सिद्धान्त स्थविरवाद के ही माने जाते हैं। महासंघिकों के स्वतन्त्र सिद्धान्तों का वर्णन भी उनके विशिष्ट ग्रन्थों में मिलता है। इनके मन्तव्यानुसार बुद्ध लोकोत्तर (अलौकिक) थे; सांसारिक (साश्रव) धर्म का स्पर्श उनसे तनिक भी न था; इतिहास-प्रसिद्ध शाक्यमुनि लोकानुवर्तन के निमित्त उस लोकोत्तर बुद्ध का अवतार धारण करनेवाले व्यक्तिविशेष थे। बुद्ध सर्वशक्तिमान् हैं और वे सदा सत्य भाषण किया करते हैं। बुद्ध अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं; उनमें आकाश के किसी भी भाग में व्यापक होने की शक्ति है। वे इद्धि (विशेष शक्ति) के द्वारा नैसर्गिक नियमों को रोक सकते हैं। मनुष्य की योगक्रिया की सहायता से दीर्घजीवन प्राप्त करने की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। पर सबसे विशेषता थी बोधिसत्त्व[1] की कल्पना। स्थविरवाद के अनुसार अर्हत् का पद ही सर्वश्रेष्ठ था, पर महासंघिकों के अनुसार अर्हत् पद प्राप्त करने पर भी एक प्रकार का अज्ञान अवशिष्ट रहता ही है, जिसे वे दूर नहीं कर सकते।

१. महासंघिक आदि सम्प्रदायों के मतवाद के लिये देखिये 'कथावत्थु' का अंग्रेजी अनुवाद पृ० १८-२७।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n130/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वास्तिवादियों के अपने खास ग्रन्थ थे, जिनमें अनेक आजकल उपलब्ध हो गये हैं। उनके ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में मिलते हैं। कश्मीर इनका केन्द्रस्थल था, जहाँ से ये अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। उनके सिद्धान्तानुसार इस जगत् की प्रत्येक वस्तु—भूतात्मक तथा चित्तात्मक—विद्यमान है, भूतकाल में थी तथा भविष्य-काल में भी विद्यमान रहेगी। इनके अनेक सिद्धान्तों में स्थविरवाद से साम्य होने पर भी ये लोग स्कन्धों की सत्ता मानने में उनसे पृथक् थे। बुद्ध को ये लोग दैवी शक्तियों से समन्वित मानवमात्र ही मानते थे। महासंघिकों के समान ये लोग बुद्ध का इस जगत् में विद्यमान रहना काल्पनिक तथा कायिक नहीं मानते थे।

साम्मितीयों की सृष्टि अशोकवर्धन के पहले ही हो चुकी थी, पर उत्तरी भारत में इनका विपुल प्रचार गुप्तकाल में ही हुआ। हर्षवर्धन के समय यह सम्प्रदाय अपनी उन्नति के शिखर पर था। हुएनच्वांग इस सम्प्रदाय के १५ ग्रन्थों को अपने साथ चीन ले गये थे। इनके ग्रन्थों का पता नहीं चलता, पर उनकी भाषा अपभ्रंश बतलायी जाती है। इनके २० सिद्धान्तों की सूचना कथावत्थु की आलोचना से मिलती है, पर इनका सबसे सुप्रसिद्ध सिद्धान्त पुद्गल के विषय में है। ये लोग पंच-स्कंध के अतिरिक्त एक अन्य पदार्थ की भी सत्ता मानते हैं जो पंच-स्कन्धों को धारण किये रहता है, पर जिसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। स्कन्ध-पंचक के उत्पत्ति तथा विनाश के साथ ही इस पुद्गल पदार्थ के उत्पत्ति-लय हुआ करते हैं। यह पुद्गल हिंदू दार्शनिकों के जीव के समान होता है, पर एक अंश में भिन्न होता है। स्कन्धपंचक के नाश होने पर इस पुद्गल का नाश साम्मितीयों को अभिमत था। ये लोग अन्तराभव (जीव की मृत्यु तथा पुनर्जन्म के बीच में होनेवाले) देह को मानते थे और इस कार्य के लिये पुद्गल की कल्पना की गयी थी। अन्तराभव देह की कल्पना पूर्वशैलीय सम्प्रदाय की भी थी। अर्हत् पद की प्राप्ति

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n131/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वतिक नहीं है, प्राचीन कर्मों के फलानुसार अर्हंत् पद से पतन भी हो सकता है[1]।

अन्धक-सम्प्रदायों में वैपुल्यवादी अपना खास महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कथावत्थु की अट्ठकथा में इन्हें महाशून्यतावादी कहा गया है। इनके मत संघ, बुद्ध तथा मैथुन के विषय में अन्य सम्प्रदायों से विभिन्न थे[2]। इनका कहना था कि (१) संघ की कल्पना अलौकिक है; अतः संघ न दान ग्रहण करता है न उसे परिशुद्ध या उपभोग करता है। इसलिये संघ को दान देने में महाफल की प्राप्ति नहीं होती। (२) बुद्ध इस लोक में न आकर ठहरे और न धर्मोपदेश किये। अतः बुद्ध को दान देने में महाफल की प्राप्ति नहीं होती। (३) मैथुन के विषय में इनका सिद्धान्त था कि किसी खास मतलब से (एकाभिप्रायेण) यदि पति-पत्नी में स्वाभाविक अनुरक्ति हो या भविष्य लोकों में एक साथ निवास करने की इच्छा हो तो मैथुन का आचरण किया जा सकता है। यह नियम बौद्ध भिक्षुओं के लिये भी जायज़ था। कहना न होगा कि ये सिद्धान्त बौद्धधर्म में भयङ्कर विप्लव मचानेवाले थे। वैपुल्यवादियों के प्रथम-द्वितीय सिद्धान्तों में महायान के विकास की सूचना है, तथा अन्तिम सिद्धान्त में तान्त्रिक या वज्रयान सम्प्रदाय के स्फुट बीज। बुद्ध की ऐतिहासिकता को स्वीकार न करना तथा किन्हीं अवस्थाओं में मैथुन की अनुज्ञा देना एकदम घोर परिवर्तन के सूचक सिद्धान्त थे। पहला सिद्धान्त महायान को मान्य है। वैपुल्यवादियों में सबसे बड़े प्रचारक नागार्जुन माने जाते हैं। इन सब बातों की आलोचना के निष्कर्षरूप में यह कहना अनुचित न होगा कि महासंघिकों का ही अन्धक-सम्प्रदाय तथा वैपुल्यवाद के रूप में विकसित रूप महायान सम्प्रदाय है।

---

१ देखिये 'कथावत्थु' के अँग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० १८-१९।

२ देखिए 'कथावत्थु' के भाग १८, २३।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n132/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महायान सम्प्रदाय

आजकल समस्त बौद्ध जगत् प्रधानतया दो सम्प्रदायों का अनुयायी है। सिंघल, बरमा, स्याम आदि दक्षिणी देशों में हीनयान का प्रचार है; पर तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोलिया तथा जापान आदि उत्तरी प्रदेशों में महायान का बोलबाला है। महायान-सम्प्रदाय की अश्वघोष के समय प्रथम शताब्दी में उत्पत्ति मानी जाती है; इस सम्प्रदाय वालों ने अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिये निर्वाण की प्राप्ति में प्रधान साधनभूत होने के कारण अपने को महायान तथा स्थविरवादियों को हीनयान के नाम से अभिहित किया है। इन दोनों सम्प्रदायों का भेद मौलिक है[1]। वैमत्य का सबसे प्रधान विषय है इस मानवजीवन के अन्तिम लक्ष्य तथा तत्सम्बद्ध निर्वाण की विभिन्न कल्पना। बौद्धग्रन्थों में जीवन्मुक्ति या 'बोधि' त्रिविध यानों में तीन प्रकार की मानी गयी है— श्रावकबोधि, प्रत्येक बुद्धबोधि तथा सम्यक् सम्बोधि। बुद्ध के पास धर्म सीखनेवाले को 'श्रावक' कहते हैं। श्रावकबोधि हीनयान का चरम लक्ष्य है। बुद्ध का कहना है कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप स्वयं है; अतः इस भव-बन्धन से मुक्ति पाने के लिये उसे परमुखापेक्षी होने की जरूरत नहीं, वह स्वयं आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण कर राग-द्वेष की विषम वागुरा से छुटकारा पाकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। ऐसे साधक के लिये चार अवस्थाओं का वर्णन महालिसुत्त ने किया है।

---

१ महायान मुख्यतया निम्नलिखित सिद्धान्तों को माननेवाला है— (१) बोधिसत्व की कल्पना, (२) षट् पारमिताओं का अनुष्ठान, (३) बोधिचित्त का विकास, (४) आध्यात्मिक उन्नति की दस भूमियाँ, (५) बुद्धत्व का चरम लक्ष्य, (६) धर्मकाय, संयोगकाय तथा निर्वाणकाय—इन त्रिविध कायों की कल्पना तथा (७) धर्मशून्यता या धर्मसमता या तथता की कल्पना।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n133/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली अवस्था 'स्रोत आपन्न' कही जाती है, जब मनुष्य का चित्त प्रपंचमार्ग से नितरां हटकर निर्वाणमार्ग की ओर स्वतः प्रवृत्त हो जाता है। दूसरी भूमि 'सकृदागामी' कही जाती है, जिसमें इस जन्म में नहीं बल्कि अगले जन्म में साधक निर्वाण का अधिकारी बन जाता है। और इसके लिये उसे एक बार पुनः संसार में आने की आवश्यकता बनी रहती है। 'अनागामी' भूमिका में फिर इस क्लेशबहुल संसार में आने की आवश्यकता नहीं रहती और चतुर्थी भूमिका 'अर्हत्' कहलाती है—जिसमें साधक अपने व्यक्तिगत कल्याण की साधना कर जीवन्मुक्ति लाभ कर लेता है, पर उसे अन्य जीवों को मुक्त करने की योग्यता अभी नहीं प्राप्त होती। अर्हत् के लिये निर्वाण अखिल राग-द्वेष का अत्यन्ताभाव रूप है। यही अर्हत्पद की प्राप्ति हीनयान का लक्ष्य है।

'प्रत्येक बुद्ध' की कल्पना अर्हत् तथा बोधिसत्त्व के बीच की साधना का सूचक है। गुरु के पास उपदेश ग्रहण किये बिना ही जिसे स्वस्फूर्ति से बुद्धत्व का लाभ हो जाता है, उसे 'प्रत्येक बुद्ध' कहते हैं; पर उसमें दूसरे लोगों को तारने की शक्ति नहीं रहती। वह तो केवल जङ्गल आदि एकान्त स्थानों में निवास कर विमुक्तिसुख का अनुभव करता है। तीसरी बोधि 'सम्यक् संबोधि' कही जाती है और उसके प्राप्त करने वाले को 'बुद्ध' कहते हैं। बुद्धत्व के अधिकारी साधक को 'बोधिसत्त्व' कहते हैं।

बोधिसत्त्व की कल्पना महायान-सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता है। यह कल्पना इतनी उदात्त तथा इतनी मनोरम है कि केवल इसी कल्पना के आधार पर यह धर्म संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्मों में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है। 'बोधिसत्त्व' का शाब्दिक अर्थ है, बोधि=ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति (बोधौ सत्त्वं अभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्त्वः[१]) । अर्हत् तथा प्रत्येक बुद्ध का लक्ष्य नितान्त सीमित

१. बोधिचर्यावतारपंजिका पृष्ठ ४२१ ।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n134/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। अपना अभ्युदय तथा व्यक्तिगत कल्याण-साधन करना ही इन दोनों के अनुष्ठान का अन्तिम उद्देश्य रहता है, पर बोधिसत्त्व संसार के समस्त प्राणियों के समग्र दुःखियों का नाश कर उन्हें निर्वाण-प्राप्ति करा देना अपना जीवन-उद्देश्य मानता है। संसार का एक भी प्राणी जबतक मुक्त नहीं हो जाता तबतक वह स्वयं निर्वाणसुख को भोगने के लिये कथमपि उद्यत नहीं होता। उसके जीवन का ध्येय स्वार्थसिद्धि न होकर परोपकारव्रत रहता है। वह जगत् के प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही स्वरूप समझता है। अतः बोधिसत्त्व का 'स्व' इतना विस्तृत रहता है कि उसकी परिधि में जगत् के समस्त जीव समा जाते हैं। बोधिसत्त्व यही चाहता है[1] कि बुद्धप्रदर्शित मार्ग के अनुष्ठान से जिस पुण्यसंभार का उसने अर्जन किया है, उसके द्वारा समस्त प्राणियों के दुःखों की शान्ति हो। समग्र जीवों के मुक्तिलाभ करने पर जो आनन्दसमुद्र हिलोरें मारने लगता है, वही उसके जीवन को आनन्दमय—सार्थक बनाने के लिये पर्याप्त है; रसहीन—सूखे मोक्ष को लेकर क्या करना है? बोधिसत्त्व में प्रधान गुण होता है—महाकरुणा। पिपीलिका से लेकर हस्ती पर्यन्त निखिल जीवों के क्लेशमय जीवन को देखकर उसके हृदय में उनके प्रति नैसर्गिक रूप से करुणा का आविर्भाव होता है तथा उनके दुःखों का सर्वथा नाश कर उन्हें आनन्द प्रदान करने का पवित्र आदर्श ही उसके जीवन का महान् व्रत बन जाता है। बोधिसत्त्व का अवसान है—बुद्धत्व की प्राप्ति अर्थात् सम्यक् संबोधि की उपलब्धि। इसे पाये बिना

---

१. एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयाऽऽसादितं शुभम्।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखप्रशान्तिकृत्॥
मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रामोद्यसागराः।
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेनारसिकेन किम्॥
(बोधिचर्यावतार)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n135/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों को मुक्त करने की तथा उपदेश देने की योग्यता आ ही नहीं सकती। महायान महाकरुणा को सम्यक् संबोधि का प्रधान साधन मानता है।

महायान ग्रन्थों में बोधिसत्त्व के उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिये अनेक शिक्षाओं तथा अनुष्ठानों का विधान किया गया है, जिन्हें 'बोधि-चर्या' के नाम से पुकारते हैं। बोधिसत्त्व को सबसे पहले बोधिचित्त का परिग्रह करना चाहिये। सब जीवों के समुद्धरण के लिये बुद्धत्व की प्राप्ति के अभिप्राय के सम्यक् संबोधि में चित्त का प्रतिष्ठित करना बोधि-चित्त का ग्रहण करना है। भवसागर से पार जाने के लिये सभी प्राणियों को बोधिचित्त का ग्रहण करना नितान्त आवश्यक है। बोधिचित्त के उत्पादन के लिये सप्तविध अनुत्तर पूजा का विधान बौद्धग्रन्थों में किया गया है। इन पूजाविधानों के नाम हैं—वन्दना, पूजा, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, अध्येषणा, बोधिचित्तोत्पाद तथा परिणामना। इन अनुष्ठानों के साथ-साथ षट् पारमिताओं का अनुशीलन नितान्त आव-श्यक है। 'पारिमिता' कहते हैं पूर्णत्व को। दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा—इन षट् पारिमिताओं का उपार्जन बुद्धत्व प्राप्ति का प्रधान साधन है। स्वार्थबुद्धि बन्धन में हेतु है। अतः आत्मभाव का त्याग निर्वाण का हेतु माना जाता है। इस निःस्वार्थबुद्धि की पराकाष्ठा दान-पारमिता की सूचिका मानी जाती है। प्राणातिपात आदि गर्हित कार्यों से चित्त की विरति 'शील' शब्दवाच्य है। दूसरे के द्वारा अपकार के होते हुए भी चित की अकोपनता 'क्षान्ति' है। सतत दुःखों के उत्पन्न होने पर भी उनके द्वारा अधिवासित न होना (दुःखाधिवासना) क्षान्ति कहलाता है, तथा दूसरों के अपकारों का सहन करना (परापकारमर्षण) क्षान्ति कहलाता है। क्षान्ति के साथ कुशल कर्म करने के सामर्थ्य का होना भी नितान्त उपयुक्त है। इसी को 'वीर्य' कहते हैं। वीर्य का फल ध्यान-चित्तैकाग्रता है। समाहितचित्त पुरुष प्रज्ञा का उपार्जन कर

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n136/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है; चित्त के ध्यान-सम्पादन से निष्कलुष होने पर ही प्रज्ञा का उदय हो सकता है। दानादि पञ्च पारमिताओं का सुफल प्रज्ञापारमिता का आविर्भाव माना जाता है; प्रज्ञा के बिना उदय हुए बुद्धत्व की प्राप्ति असम्भव ही है।

शून्यता में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति ही प्रज्ञापारमिता (पूर्णज्ञान, सर्वज्ञता) को प्राप्त कर लेता है। जब यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि भावों की उत्पत्ति न स्वतः होती है, न परतः होती है, न उभयतः होती है और न अहेतुतः होती है, तभी प्रज्ञापारमिता का उदय होता है। उस समय किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रह जाता। उस समय इस परमार्थ सत्य की प्रतीति होती है कि यह दृश्यमान वस्तुजात माया के सदृश है, तथा स्वप्न की तरह अलीक और मिथ्या है। इसकी व्यावहारिक सत्ता (सांवृतिक सत्य) ही है, पारमार्थिक सत्ता नहीं। व्यवहारदशा में ही प्रतीत्यसमुत्पाद की सत्यता है, परमार्थदशा में सर्वभाव धर्मशून्य हैं। वास्तव में सब भावों की शून्यता ही पारमार्थिक ज्ञान है। उस समय समुत्पन्न बोधिचित्त (संबोधिनिष्ठित चित्त) निःस्वभाव, निरालम्ब, सर्वशून्य, निरालय तथा प्रपञ्चसमतिक्रान्त माना जाता है[1]। वह काठिन्य तथा मार्दव, उष्णता तथा शीतलता, संस्पर्श तथा ग्राह्यता आदि धर्मों से शून्य होता है। प्रज्ञापारमिता प्राप्त करने वाले पुरुष के लिये इस जगत् का समग्र व्यवहार स्वप्न से अधिक सत्ता नहीं रखता। संवृति=संसार समस्त दोषों का आकर है, पर निर्वृति=निर्वाण—समस्त गुणों का भण्डार है। इस प्रज्ञापारमिता की कल्पना पूजनीया देवी के रूप में पारमितासूत्रों में की गयी है[2]। प्रज्ञा

१. बोधिचित्त के स्वरूप के लिये देखिये 'नैरात्म्यपरिपृच्छासूत्र' ११–२६ (विश्वभारती सीरीज नं० ४)

निःस्वभावं निरालम्बं सर्वशून्यं निरालयम्।
प्रपञ्चसमतिक्रान्तं बोधिचित्तस्य लक्षणम्॥ १२॥

२. देखिये—प्रज्ञापारमितासूत्र—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n137/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपासना महायान की प्रधान विशेषता मानी जाती है।

महायान ने त्रिकाय (निर्माण या रूपकाय, संभोगकाय तथा धर्मकाय) की कल्पना कर बुद्धत्व के आदर्श को बड़ा ही ऊँचा दिखलाया है। शाक्यमुनि के सब कार्य तात्त्विक बुद्धि के आचरण नहीं हैं, प्रत्युत मानव-समाज के सामने 'बुद्धत्व की प्राप्ति नितान्त काल्पनिक न होकर वास्तविक है'--यह शिक्षा देने के लिये लोकानुवर्तन के निमित्त बुद्ध के निर्माणकाय के द्वारा किये गये हैं। धर्मकाय अनन्त तथा अपरिच्छेद है। सम्पूर्ण स्थान में यह व्यापक है। संभोग तथा निर्माणकाय का यह मूल आधार है। यह नित्य, सत्य तथा परिच्छेदातीत गुणों का निकेतन है। धर्मकाय एक—अभिन्न रूप में स्थित रहता है। इस धर्मकाय की कल्पना बुद्ध को ईश्वर रूप में मानने के लिए की गयी है। परमसत्य स्वरूप बुद्ध मानव-समाज के कल्याण-साधन के निमित्त अनेक रूप धारण किया करते हैं। ऐतिहासिक बुद्ध भी उन्हीं के एक अवतारमात्र माने जाते हैं। इनकी भक्तिपूर्वक उपासना करने से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। सद्धर्मपुण्डरीक का कहना है कि सच्चे प्रेम से भगवान बुद्ध की एक पुष्प के अर्पण द्वारा पूजा करने से साधक को अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार महायान धर्म ने निरीश्वर-वादी शुष्क निवृत्तिप्रधान हीनयान की कायापलट कर उसे सेश्वरवादी तथा प्रवृत्ति-प्रधान के मनोरम रूप में उपस्थित किया है। भक्तियोग ने मानवसमाज की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के नैसर्गिक विकास के लिये बुद्ध धर्म को एक नवीन मार्ग पर आरूढ़ किया। इस कारण तथागतधर्म की लोकप्रियता बढ़ी तथा विपुल जीवों ने कल्याणसाधन के सुगम मार्ग

सर्वेषामपि वीराणां परार्थनियतात्मनाम्।
साधिका जनयित्री च माता त्वमसि वत्सला ॥ १६ ॥
बुद्धैः प्रत्येकबुद्धैश्च श्रावकैश्च निषेविता।
मार्गस्त्वमेका मोक्षस्य नास्त्यन्य इति निश्चयः॥ १७ ॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n138/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीख कर बुद्ध, तथा संघ की शरणागति ग्रहण की। महायान की कल्पना के मूल में गीता का भक्तिसमन्वित-कर्मयोग कारण माना जाता है। भोटदेशीय सुप्रसिद्ध विद्वान् तारानाथ ने गीताधर्म के प्रभाव को महायान के रूपपरिवर्तन में प्रधान कारण माना है[1]।

इस महायान के रूप का विकास चलता ही गया। वैपुल्यवादियों ने मन्त्र तन्त्र की ओर विशेष रुचि दिखलायी। इस मत के आचार्य नागार्जुन एक प्रकाण्ड तान्त्रिक तथा सिद्ध पुरुष माने जाते हैं। इनकी गुह्य शिक्षाओं ने महायान का स्वरूप बदलने में विशेष सहायता दी। वैपुल्यवादी 'मञ्जुश्रीमूलकल्प' में हम नाना मन्त्र-तन्त्रों का विधान पाते हैं, पर उस रूप का यहाँ अभाव है, जो वज्रयान में दीख पड़ता है। पहले मन्त्रयान की उन्नति हुई, भोटग्रन्थों के आधार पर धान्यकटक तथा श्रीपर्वत के आसपास इसकी उत्पत्ति मानी जा सकती है। धारणियों की रचना हुई; मन्त्र-यन्त्रों की विपुलता ने प्राचीन बुद्धत्व के आदर्श को ढक दिया। आगे चलकर मन्त्रयान से वज्रयान की उत्पत्ति हुई—जिसमें मद्य, मन्त्र, हठयोग तथा मैथुन की शिक्षाएँ प्रधान विषय हैं। वज्रयान है तान्त्रिक बुद्धधर्म का विकसित रूप। दार्शनिक दृष्टि शून्यवाद की है[2] पर आचार में तान्त्रिक क्रियाकलाप की बहुलता है। यही वज्रयान सहजयान के रूप में परिवर्तित होकर तिब्बत, चीन आदि भारतेतर देशों के तथा स्वयं पूर्वी भारत के धार्मिक विकास का कारण माना जाता है।

---

१ तिलक-गीतारहस्य (पृ० ५७०—५८५)।

२ अविनाशी तथा सारभूत होने के कारण शून्यता ही 'वज्र' शब्द का वाच्यार्थ है—दृढ़ सारमसौशीर्यमच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाहि अविनाशी च शून्यता वज्रमुच्यते ॥
—वज्रशेखर (अद्वयवज्रसंग्रह पृ० २३)

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n139/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू धर्म में बुद्ध का स्वरूप

अधिकांश आलोचकों का बुद्धविषयक ज्ञान बौद्ध धर्म ग्रन्थों के आधार पर ही प्रतिष्ठित है। कहना न होगा कि बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में बड़े विस्तार के साथ भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व अभिव्यक्ति पा रहा है। बुद्ध के रूप, जीवन-चरित तथा उपदेश का बहुत सुन्दर तथा रोचक वर्णन पाली त्रिपिटकों में तथा महायानी संस्कृत ग्रन्थों में प्रस्तुत किया गया है। पाठक जानते होंगे कि बुद्ध की मृत्यु के अनन्तर उस धर्म में नये-नये सम्प्रदायों का उदय तथा अभ्युदय होता गया। अशोक के समय में तो इन सम्प्रदाय या निकायों की संख्या १८ तक पहुँच गयी थी जिनके सिद्धांत परस्पर बहुत ही विरुद्ध तथा एक-दूसरे के खंडन करने वाले थे। इन सम्प्रदायों ने बुद्ध के स्वरूप के विषय में बड़ी विलक्षण बातें प्रस्तुत कर रखी हैं। कोई तो बुद्ध को सामान्य मानव ही मानता था, तो कोई उन्हें लोकोत्तर पुरुष अंगीकार करता था। किसी की दृष्टि में बुद्ध सदा तुषित नामक स्वर्ग में निवास करते हैं, तो किसी के विचार में वह वहाँ से इस भूतल पर अवतीर्ण होते हैं। तात्पर्य यह है कि खास बौद्ध धर्म के निकायों में इस प्रकार बुद्ध के व्यक्तित्व के विषय में पर्याप्त मतभेद है जिनकी जानकारी बौद्ध धर्म के समीक्षक के लिए नितान्त आवश्यक होती है।

परन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित तथा स्वरूप की एक दूसरी भी दिशा है जिधर विद्वानों का ध्यान अभी तक विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ है—वह है हिन्दू ग्रन्थों में बुद्धत्व की भावना।

कर्मकाण्ड में तत्कालीन घोर हिंसा की प्रवृत्ति को बुद्ध ने अवश्य निन्दनीय ठहराया, परन्तु इस विषय में तो वह वैष्णव पांचरात्रों के ही मत का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं। वेद का ही आदेश है—मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि (सब प्राणियों की हिंसा मत करो)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n140/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णव मत ने वैदिक यज्ञ को पूर्ण रूप से अपनाया, परन्तु उसके पशुवध के स्थान पर धान्य (यव, तिल आदि) को ही बलि के लिए उपयुक्त साधन स्वीकार किया। फलतः वैष्णव मत ही अहिंसा मत का प्रथम शंखघोष करने वाला सम्प्रदाय है। जैन तथा बौद्ध मतों ने 'अहिंसा' के इस सिद्धान्त को पांचरात्रों से ही ग्रहण किया। ऐतिहासिकों से यह विषय परोक्ष नहीं है। हिन्दू धर्म ने इसीलिए बुद्ध को एक संस्कारक के रूप में ही देखा और इसीलिए वे विष्णु के अन्यतम अवतार माने जाते हैं। प्रत्येक आस्तिक हिन्दू संकल्प करने के समय बुद्धावतारे का निर्देश करता है अर्थात् वह इस बात का स्मरण करता है कि वह भगवान् बुद्ध के अवतार युग में ही अपना धार्मिक कृत्य कर रहा है। कविवर जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' में बुद्ध को विष्णु का नवम अवतार मान कर यह प्रख्यात स्तुति की है—

> निन्दसि यज्ञविधेरह श्रुतिजातम्।
> सदय-हृदय-दर्शित पशुघातम्।
> केशव धृत बुद्ध शरीर !
> जय जगदीश हरे !!.

इसीलिए हिन्दू ग्रन्थों में बुद्ध की पूजा-अर्चा का विधान उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार विष्णु के किसी अन्य अवतार का। श्रावण शुक्ला द्वादशी को बुद्ध की पूजा विशेषरूप से करनी चाहिए। इसीलिए वह बुद्धद्वादशी के नाम से प्रसिद्ध है। भविष्य पुराण (२/७३) में इसका वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है कि कलश के ऊपर भगवान् बुद्ध की सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर अनेक वैदिक मन्त्रों से उसका पूजा कर ब्राह्मण को दान देना चाहिए। हेमाद्रि ने अपने 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' ग्रन्थ (व्रतखण्ड अध्याय १५) में इसी बात का पुनः निर्देश किया है—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com
Page 139 of 320

https://archive.org/details/bk1332/page/n141/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमभ्यर्च्य मेधावी तस्याग्रे पूर्ववद्द्रुमम् ।
स्थापयेत्तत्र सौवर्णं बुद्धं कृत्वा विचक्षणः ।
तमप्येवं तु सम्पूज्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

'निर्णयसिन्धु' के अनुसार पौष के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी को भगवान् बुद्ध का पूजन अवश्य करना चाहिए। बुद्ध की मूर्ति तथा ध्यान का उल्लेख अनेक पुराणों में दिया गया है। 'अग्निपुराण' के अनुसार बुद्ध का रूप शान्त, लम्बा कान वाला, गौर अंग वाला, कपड़े से ढका हुआ, ऊर्ध्वमुख पद्म के ऊपर बैठा हुआ तथा वरद-अभय मुद्रा से अंकित होना चाहिए।

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरांगश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्ध्वपद्मास्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥

हेमाद्रि ने अपने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' (व्रतखंड अध्याय १) में बुद्ध का निम्नलिखित ध्यान निर्दिष्ट किया है—

कासायवस्त्रसंवीतः स्कन्धे संसक्त चीवरः ।
पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धः प्रकीर्तितः ।

बुद्ध का शरीर काषाय वस्त्र से ढका हुआ होना चाहिए। कन्धे के ऊपर चीवर (पहनने का वस्त्र) रखा होना चाहिए। पद्मासन के ऊपर बैठे हुए दो भुजा वाले, ध्यानासक्त बुद्धि का चिन्तन किया जाता है। इस श्लोक के ऊपर विशेष टीका की आवश्यकता नहीं है। यह स्पष्ट ही कला में चित्रित बुद्ध की ध्यानस्थ मूर्ति का वर्णन है। इस प्रकार हेमाद्रि (१३ शती) का यह कथन यथार्थ है। 'सूत संहिता' के अनुसार बुद्ध की प्रतिमा में देवता बुद्धि करना भी एक प्रकार का यज्ञ ही होता है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n142/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धार्हतादिमार्गस्थे देवता प्रतिमासु च ।
देवता बुद्धि मात्रं यत् सोऽपि यज्ञः प्रकीर्तितः ।

भगवान् विष्णु तथा नाना अवतारों का पूजन शालग्राम शिला में किया जाता है। ये शालग्राम शिलाएं नाना रूपों की होती हैं तथा वे भिन्न-भिन्न अवतारों को सूचित करती हैं। देखने में वे सब काली-काली एक ही आकार की प्रतीत होती हैं, परन्तु ध्यान से देखने पर उनमें पर्याप्त भेद तथा पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्मांड पुराण ने बुद्ध के द्योतक शालग्राम का वर्णन इस प्रकार किया है—

अणुगह्वरसंयुक्तं चक्रहीनं यथा भवेत् ।
निविडो बुद्धसंज्ञः स्यात् ददाति परमं पदम् ॥

जिस शालग्राम में एक छोटा छेद होता है, पर वृत्ताकार चिह्न नहीं होता एवं जिसके रवें बहुत घने होते हैं, वह बुद्ध का प्रतीक कहलाता है। इसका पूजन बुद्ध का ही पूजन होता है। इस प्रकार दोनों प्रकार से—चाहे मूर्ति का तथा शालग्राम का—पूजन करने से एक ही फल प्राप्त होता है—उत्कृष्ट फल या मुक्ति।

बुद्ध की मूर्तियों में तिलक तथा जनेऊ धारण करने का वर्णन अनेक वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। सूतसंहिता के अन्तर्गत सूतगीता (८/३४) में बौद्ध मत के साधुओं के लिए माथे पर तिलक धारण करना उपयुक्त बतलाया गया है—

अश्वत्थपत्रसदृशं हरिचन्दनेनमध्ये ललाट मति-शोभन मादरेण ।
बुद्धागमे मुनिवरा यदि संस्कृताश्चेत् मृद्वारिणा सततमेव तु धारयेच्च ॥

तात्पर्य यह है कि यदि हिन्दू साधु बुद्ध के धर्म में दीक्षित हों तो उन्हें अपने सम्प्रदाय का द्योतन करने के लिए मस्तक पर एक प्रकार का तिलक लगाना चाहिए जो पीपल के आकार का हो तथा पीले

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n143/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दन (हरिचन्दन) की लकड़ी को घिसकर लगाया गया हो। साधुओं के विषय में ही यह चरितार्थ नहीं है। बुद्ध की प्रतिमाओं में भी जो जावा, तिब्बत, जापान, लंका तथा चीन जैसे बौद्ध देशों में उपलब्ध होती हैं, बुद्ध के ललाट पर तिलक देखा जाता है। इतना ही नहीं, जावा में उपलब्ध बौद्ध प्रतिमाओं में यज्ञोपवीत का भी चिह्न मिलता है। उसका समर्थन सौभाग्य-विजय नामक एक जैन साधु के प्रामाणिक उल्लेख से भी होता है जिन्होंने १६०० ई० के लगभग बुद्ध गया की यात्रा की थी। उनका कहना है कि बुद्ध गया में स्थित बुद्ध की विशाल मूर्ति के कंठ में "जनोई" (यज्ञोपवीत) विराजमान था ('तीर्थमाला स्तवन' अ० १०, प० २)—

तिहां थी बोधगया कोस त्रण छेरे प्रतिमा बोधतणों नहिं पार रे।
जिन मुद्रा थी विपरीत जाणजे रे कंठ जनोइनो आकार रे॥

कंठ में जनेऊ धारण करने के कारण ही मुनि ने इसे जैनमूर्ति से विपरीत बतलाया है। जनेऊ तथा तिलक का धारण स्पष्टतः ही बुद्ध को हिन्दू देवताओं की मंडली में रखता है।

बुद्ध भगवान् ने वेदों की जो निन्दा की तथा वेद-निन्दक या वेद-विरोधी शास्त्रों का जो प्रणयन किया उसके कारण की समीक्षा अनेक पुराणों में की गयी है। सब पुराणों ने एक स्वर से इस कारण की एक ही मीमांसा की है—संमोहाय सुरद्विषाम्। देवों के द्वेषी असुरों को मोहित करने के लिए बुद्ध ने ऐसा किया। आशय यह है कि असुरगण अपने कुटिल आक्रमणों से वेदों का ध्वंस करना चाहते थे और इसीलिए उन असुरों को मोहित करने के लिए बुद्ध ने यह नया मार्ग चलाया जिससे वे उसके नास्तिक पंथ से विमुग्ध होकर उधर ही लग जाय और वेद अपनी विशुद्धता तथा गम्भीरता के साथ अछूता बच जाय। (भागवत १/३/२४) के अनुसार बुद्ध के अवतरण का यही रहस्य है—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n144/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥

गरुड़ पुराण (१/२/३४) में यही श्लोक अक्षरशः आता है । इसी पुराण में अन्यत्र स्पष्ट ही इस उद्देश्य का निर्देश किया गया है—

वासुदेवः पुनर्बुद्धः सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
देवादि रक्षणार्थाय अधर्मं हरणाय च ।
भारतांश्चावतारांश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः ॥

"पद्म पुराण" में भी यही बात कही गयी है । विज्ञान भिक्षु ने अपने "सांख्य प्रवचन भाष्य" (१/२२) में इसी मत के समर्थक पद्मपुराणीय पद्यों को प्रणाम कोटि में उद्धृत किया है । "पद्मपुराण" का यह पद्य (क्रिया खंड ६/१८८) विशेष अवलोकनीय है—

वेदा विनिन्दिता येन विलोक्य पशुहिंसनम् ।
सकृयेन त्वया येन तस्मै बुद्धात्मने नमः ॥

भागवत् भी यही बात कहता है । वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदहीन (वेद के अनधिकारी व्यक्तियों को यज्ञ से पराङ्मुख करने के लिए वादों के द्वारा आप उन्हें मोहित करते हैं, महाभारत के "भीष्मस्तव-राज" में भगवान् को बुद्ध रूप में मोहात्मा कहा गया है—

बुद्धरूपं समास्थाय बहुरूप परायणः ।
मोहयन् सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥

इस प्रकार पुराणों ने बुद्ध के वेदविरोधी सिद्धान्तों की व्याख्या में वेद की रक्षा का भाव ही दिखलाया है । इस मोहनभाव के कारण ही वे 'मायी' के नाम से पुकारे गये हैं । इन सब वाक्यों की छानबीन करने से यही प्रतीत होता है कि वेद में स्वतः दो विचारधाराएं मिलती

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n145/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—एक है सत्-धारा जो "सत्" से विश्व की सृष्टि मानती है, और दूसरी है असत्धारा जो "असत्" से विश्व की सृष्टि मानती है। ऋग्वेद स्वयं कहता है—

देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत

(देवताओं के पूर्व युग में असत् से सत् उत्पन्न हुआ था)

छान्दोग्य उपनिषद् (६/२/१) में भी इस मत का उल्लेख मिलता है—

तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीत् एकमेव अद्वितीयम् तस्मादसतः सदजायत।

"सत्-धारा" के अन्तर्मुक्त समग्र वैदिक ग्रंथ हैं तथा "असत्-धारा" के भीतर बौद्ध दर्शन का अन्तर्भाव विद्यमान है। दोनों का मूल एक ही वेद है। प्रतीत यह होता है कि हिन्दुओं को बुद्ध से घृणा नहीं है, प्रत्युत बौद्धों से। बुद्ध ने आध्यात्म पक्ष पर कभी आग्रह नहीं दिखलाया, बल्कि व्यवहार में सदाचार के ही वह पूर्ण समर्थक तथा व्याख्याता थे। उनके सिद्धान्तों का निचोड़ "धम्म-पद" सदाचार का ही एक महिमाशाली ग्रंथ है। यह प्रसिद्ध बात है कि बुद्ध व्यवहार की मीमांसा तथा सदाचार के प्रवर्तन के लिए दर्शन के प्रश्नों तथा तथ्यों की मीमांसा को अनावश्यक समझते थे तथा अतिप्रश्नों के उठाये जाने पर मौन धारण कर लेते थे। इस मौना-श्रयण से कुछ आलोचकों का कहना है कि बुद्ध ईश्वर को मानते ही न थे, परन्तु वस्तुस्थिति कुछ दूसरी है। वह ईश्वर को स्वयं मानते हों या नहीं, परन्तु इतना तो निश्चित है कि वह सांसारिक दुखों के परिहार के लिए ईश्वर को बीचमें डालने के झमेलेके सदा विरोधी थे। महायानी ग्रन्थों में बुद्ध के मौनावलम्बन की एक बड़ी सुन्दर व्याख्या है। परमार्थ की व्याख्या शब्दों तथा संकेतों का आश्रय लेकर नहीं की जा सकती,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n146/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वह व्यवहार से सर्वदा भिन्न ही होता है। वह तत्त्व अक्षरातीत है तथा सांसारिक तत्त्वों से बहुत ही ऊपर है। उसका न श्रवण हो सकता है न उसका उपदेश ही हो सकता है—

अनक्षरस्य तत्त्वस्य श्रुतिः का देशना च का।

जब वह परमार्थ तत्त्व अक्षर के द्वारा गम्य नहीं है, तब उसके विषय में बुद्ध का उस विषय में मौन रह जाना नितान्त स्वाभाविक ही है। जो कुछ भी हो, बुद्ध ने अपने उपदेशों के द्वारा उसी संस्कृति का सन्देश जनता तक पहुँचाया जिसका रूप हिन्दू ग्रन्थों ने पूर्णतया अभिव्यक्त किया है। वह आसमान से टपक नहीं पड़े थे। भारत की वैदिक संस्कृति में जनमे, पले तथा पुष्ट हुए। यही कारण है कि हिन्दू धर्म ने उन्हें एक उद्धारक के रूप में अपनाया, भगवान विष्णु का अवतार माना तथा उनके सदाचार के नियमों को अपने जीवन के भीतर उतारा। बुद्ध का सन्देश भारतीय संस्कृति का सन्देश है। संसार के दुखी प्राणियों के कष्ट का निवारण करना, पूर्ण करुणा तथा अखंड मैत्री की भावना को परिपुष्ट करना बौद्ध धर्म की आधारशिला है। बोधिसत्त्व की कल्पना वैदिक धर्म की जीवन्मुक्त की कल्पना का ही एक भव्य निदर्शन है। बुद्ध अपने लिए मोक्ष नहीं चाहते, क्योंकि जब संसार के असंख्य प्राणी दुखों से पीड़ित होकर नानाप्रकार के क्लेशों में अपना जीवनयापन कर रहे हैं, तब अकेले आनन्द उठाना कहाँ की बात है? बुद्ध का कथन है—

मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रामोद्यसागराः।
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षे नारसिकेन किम्॥

संसार के जीवों के हृदय में जो आनन्द का सागर हिलोरें मारने लगता है, वही मेरे जीवन को सुखी बनाने के लिए पर्याप्त है। रसहीन सूखे मोक्ष को लेकर मुझे क्या करना है? बुद्ध का यह उच्च आदर्श है

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n147/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यही आदर्श जीवनमुक्त पुरुष का। अन्यत्र सप्रमाण दिखलाया गया है कि बुद्ध धर्म के विकास के ऊपर भगवद्गीता का प्रकृष्ट प्रभाव पड़ा हुआ है (देखिये मेरा बौद्धदर्शन मीमांसा पृ० ४६७—८)

बुद्ध के अनन्तर उनके शिष्यों ने दार्शनिक जगत् में नये-नये तर्क-वितर्कों को उपस्थित किया जो शायद बुद्ध को भी मान्य नहीं होता। शंकराचार्य के खंडन का लक्ष्य ये ही बौद्धों के दार्शनिक विचार हैं, बुद्ध का मूल सदाचार प्रधान धर्म नहीं। इस प्रकार एकवाक्यता की जा सकती है। श्री शंकराचार्य के दशावतार स्तोत्र का यह सुन्दर पद्य बुद्ध के ध्यानावस्थित रूप का पूर्ण परिचायक है—

धराबद्ध पद्मासनस्थाङ्घ्रियष्टि
नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्ती॥

———

(घ)

वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म

१

बौद्धधर्म तथा उपनिषद् के परस्पर सम्बन्ध की मीमांसा एक विकट समस्या है। इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं दिखलायी पड़ता। कुछ विद्वान् बौद्धधर्म को उपनिषदों के मार्ग से नितान्त पृथक् मानते हैं। बुद्ध ने यज्ञों के कर्मकाण्ड की समधिक निन्दा की है, अतः उसे अवैदिक मानकर उसके सिद्धान्त को सर्वथा वेदविरुद्ध अङ्गीकार करते

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n148/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। परन्तु अधिकांश विद्वानों की सम्मति में यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। शाक्यमुनि स्वयं वैदिक धर्म में उत्पन्न हुए थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा इसी धर्म के अनुसार हुई थी, अतः उनकी शिक्षा पर उपनिषदों का प्रचुर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। बुद्धधर्म तथा दर्शन के सिद्धान्तों की वैदिक तथ्यों से तुलना करने पर जान पड़ता है कि बुद्ध ने अपनी अनेक मौलिक शिक्षाओं को उपनिषदों से ग्रहण किया है।

बौद्ध धर्म और उपनिषद्

जगत् की उत्पत्ति के विषय में 'छान्दोग्य[1] उपनिषद्' का कहना है 'कुछ लोग कहते हैं कि आरम्भ में असत् ही विद्यमान था। वह एक था, उसके समान दूसरा न था। उसी असत् से सत् की उत्पत्ति हुई।' यह असत् से सदुत्पत्ति की कल्पना के आधार पर ही बौद्धों ने उत्पत्ति से पहले प्रत्येक वस्तु को असद् माना है। श्रीशङ्कराचार्य ने भाष्य में इस 'सद्भाव' के सिद्धान्त को बौद्धों का विशिष्ट मत बतलाया है। नचिकेता ने जगत् के पदार्थों के विषय में स्पष्ट कहा है कि मर्त्यों के पदार्थ कल तक भी टिकने वाले नहीं है, ये समग्र इन्द्रियों के तेज (या शक्ति) को जीर्ण कर देते हैं, समस्त जीवन भी मनुष्यों के लिए अल्प ही है, संसार में वर्य, प्रेम तथा आनन्द के अनित्य रूप का ध्यान रखने वाला व्यक्ति अत्यन्त दीर्घजीवन में कभी प्रेम नहीं धारण कर सकता—यह कथन[2] बुद्ध के 'सर्वं दुःखम्' तथा 'सर्वमनित्यम्'

---

१ तद्ध एक एवाहु रसदेवेदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयम्। तस्मादसतः सज्जायते—(छान्दोग्य ६।२।१)

२ श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तर एतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। अपि सर्वं जीवितमल्पमेव। × × अभिध्यायन् वर्णरति प्रमोदान् अति दीर्घे जीविते को रमेत—कठ १।१।२६, २८।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n149/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तों का बीज प्रतीत होता है। भिक्षु बनकर निवृत्ति का जीवन बिताना उपनिषन्मार्ग का प्रधान ध्येय था। 'बृहदारण्यक' के अनुसार मुक्ति के अभिलाषी पुरुष संसार की तीनों एषणाओं (पुत्रैषणा=पुत्र की कामना, वित्तैषणा=धन की कामना तथा लोकैषणा=यश, कीर्ति कमाने की अभिलाषा) का परित्याग करके भिक्षा माँगकर अपना जीवन-यापन करता है। इसी सिद्धान्त का विशदरूप बौद्ध भिक्षु तथा जैन यतियों की व्यवस्था में दिखलायी पड़ता है। बुद्ध से बहुत पहले भारत में भिक्षुओं की संस्था थी। इसका पता पाणिनि की अष्टाध्यायी देती है। पाणिनि के अनुसार पाराशर्य तथा कर्मन्द नामक आचार्यों ने भिक्षुसूत्रों की रचना की थी। भिक्षुसूत्रों से तात्पर्य उन सूत्रों से है, जिनका निर्माण भिक्षुओं की चर्या तथा ज्ञान बतलाने के लिए किया गया था। बुद्ध की निवृत्ति मार्ग की कल्पना ही वैदिक है। कर्म-सिद्धान्त बुद्धधर्म के आचारशास्त्र की आधारशिला है। प्राणी अपने किये गये भले या बुरे कर्मों का फल अवश्यमेव भोगता है। कर्म का सिद्धान्त इतना जागरूक तथा प्रभावशाली है कि विश्व का कोई भी व्यक्ति इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त उपनिषदों में विशेषतः प्रतिपादित लक्षित होता है। 'बृहदारण्यक उपनिषद' (३।२।१३) में जरत्कारव ने याज्ञवल्क्य से ग्रह तथा अतिग्रह के विषय में जो प्रश्न पूछा था तथा जिसके अन्तिम उत्तर के लिए उन दोनों ने एकान्त में जाकर मीमांसा की थी, वह चरम उत्तर है—कर्म की प्रशंसा। 'पुण्य कर्म के अनुष्ठान से मनुष्य पुण्यशाली होता है और पाप कर्म के आचरण से पापी होता है' (पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेनेति)। इसी सिद्धान्त को लक्ष्य करके 'कठ उपनिषद' कहता है—कुछ देहधारी शरीर ग्रहण करने के लिए योनि का आश्रय लेते हैं और कुछ लोग वृक्ष में जन्म लेते हैं। जन्म धारण करना कर्म तथा ज्ञान के अनुसार होता है। यह कर्म सिद्धान्त उपनिषदों को

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n150/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा मान्य है और इसी के प्रभाव से वर्तमान हिन्दूधर्म में यह नितान्त ग्राह्य सिद्धान्त है। बुद्धधर्म में जो इसकी विशिष्टता दिखलायी पड़ती है, वह उपनिषदों के ही आधार पर है। इस प्रकार बुद्धधर्म में असत् की कल्पना, जीवन की क्षणिकता, भिक्षाव्रत धारण करनेवाले भिक्षु की चर्या, कर्म का सिद्धान्त—सब उपनिषदों को मूल मानकर गृहीत हुआ है।

अतः बौद्धधर्म को उपनिषद्-मार्ग से नितान्त भिन्न मानना उचित नहीं प्रतीत होता। उपनिषदों में जिस ज्ञानमार्ग का प्रतिपादन है, उसी का एकाङ्गी विकास बुद्धधर्म में दीख पड़ता है। बुद्धधर्म परमार्थ को जगत् के मूल में एक व्यापक प्रभावशाली सत्ता को, मानता है, उसके लिए वह केवल निषेधात्मक शब्दों का व्यवहार करता है, इतना ही अन्तर है। परमतत्त्व के विवेचन की दो धाराएँ हैं—सत्धारा और असत्धारा। सत्धारा ब्राह्मणधर्म में है तथा असत् धारा बौद्धधर्म में है। वस्तुतः परमार्थ शब्दतः अनिर्वचनीय है। हमारे शब्द इतने दुर्बल हैं कि उसका निर्वचन कथमपि कर नहीं सकते। शब्द भी मायिक हैं। अतः वे उसी की व्याख्या कर सकते हैं, जो इस मायिक जगत् का विषय हो। माया से विरहित परमतत्त्व की व्याख्या शब्दतः हो ही नहीं सकती। उपनिषदों के 'नेति-नेति' उपदेश का यही स्वारस्य है। बुद्ध के मौनावलम्बन का भी यही तात्पर्य है। जब वह परमार्थ सत्-असत्, द्वैत-अद्वैत उभयकोटि से विलक्षण है, तब उसका स्वरूप-निर्णय किस प्रकार किया जाय? केवल व्याख्या करने के लिए कोई दार्शनिक सत् बतलाता है। उसे असत् बतलाकर जगत् की व्याख्या करना भी उतना ही युक्तियुक्त है। बुद्ध उपनिषद् के सिद्धान्तों को मानते हैं, मूलतत्त्व की निषेधात्मक शब्दों से व्याख्या करते हैं, परन्तु वे उसकी सत्ता को एकदम निषेध करते हों, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता। अतः

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n151/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्म को उपनिषत्परम्परा से बहिर्भूत मानना उचित नहीं जान पड़ता।

वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म

(ख)

बुद्ध और सांख्य

शाक्यमुनि के उपदेशों पर सांख्यमत का कम प्रभाव नहीं दीखता। इसमें आश्चर्य करने के लिए स्थान नहीं है। उपनिषदों के बीजों को ग्रहण करके ही कालान्तर में सांख्यमत का उदय हुआ। सांख्यमत बुद्ध से प्राचीन है, इसके लिए ऐतिहासिक प्रमाणों की कमी नहीं है। महाकवि अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' के १२ वें सर्ग में गौतम तथा अराड कालाम नामक आचार्य की भेंट का वर्णन किया है। जिज्ञासु बनकर गौतम अराड के पास गये। तब अराड ने जिन तथ्यों का वृहत् रूप से प्रतिपादन किया (१२ सर्ग, १७ – ८२ श्लोक), वे सांख्य के अनुकूल हैं। सांख्य के प्रवर्तक कपिलमुनि ही 'प्रतिबुद्ध' नहीं बतलायें गये हैं, प्रत्युत जैगीषव्य तथा जनक जैसे सांख्याचार्यों को इसी मार्ग के अनुशीलन से मुक्त बतलाया गया है (१२।६७)। अव्यक्त तथा व्यक्त का भिन्न स्वरूप, पंचपर्वा अविद्या के प्रकार तथा लक्षण, मुक्ति की कल्पना—सब कुछ सांख्यानुकूल[२] है। परन्तु गौतम ने इस मत को

---

१ यह संस्कार की क्रमशः अभिवृद्धि और अभ्यासपटुता का फल है। 'परमात्मवासना और पूर्णानन्द' शीर्षक निबन्ध देखिए।

२ अराड के सिद्धान्तों की प्रसिद्ध सांख्यसिद्धान्त से तुलना करना आवश्यक है। यह सांख्य प्राचीन सांख्य तथा 'सांख्यकारिका' में प्रतिपादित सांख्य के बीच का प्रतीत होता है। पञ्चभूत, अहंकार, बुद्धि,

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n152/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकृत्स्न (अपूर्ण) मानकर ग्रहण नहीं किया। इसका अर्थ यह हुआ कि गौतम को अराड के सिद्धांतों में त्रुटि मिली, उनकी इच्छा के अनुसार वह मत कृत्स्न (पूर्ण) न था, परन्तु हम इसके प्रभाव से उन्हें नितान्त विरहित नहीं मान सकते। कम से कम इतना तो मानना ही पड़ेगा कि अश्वघोष जैसे प्राचीन बौद्ध आचार्य की सम्मति में सांख्य गौतम से पुरानी है।

दार्शनिक दृष्टि से दोनों मतों में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। (१) दुःख की सत्ता पर दोनों जोर देते हैं। संसार में आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—इन त्रिविध दुःखों की सत्ता इतनी वास्तव है कि इसका अनुभव पद-पद पर प्रत्येक व्यक्ति को मिलता[1] है। बुद्धधर्म में आर्यसत्यों का प्रथम सत्य यही दुःखसत्य है। (२) वैदिक कर्मकाण्ड को दोनों गौण मानते हैं। ईश्वर-कृष्ण की स्पष्ट उक्ति है कि संसार के दुःख का निराकरण लौकिक उपायों के समान वैदिक (आनुश्रविक) उपायों के द्वारा भी सम्पन्न नहीं हो सकता। वैदिक यज्ञानुष्ठान में अविशुद्धि, क्षय (फल का नाश) तथा अतिशय (फलों में विषमता, कमी-बेशी होना) विद्यमान[2] हैं। तब इनसे आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति किस प्रकार हो सकती है ? बुद्ध इससे आगे बढ़कर यज्ञों को दुःखनिवृत्ति का कथमपि साधन मानने के लिए उद्यत नहीं हैं। (३) ईश्वर की सत्ता पर दोनों अनास्था रखते हैं। प्रकृति

तथा अव्यक्त इनको प्रकृति कहा गया है तथा विषय, इन्द्रियाँ, मन को विकार कहा गया है (१२।१८, १) यह वर्तमान कल्पना से भिन्न पड़ता है।

१ दुःखत्रयाभिघातात् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ। (सां० क० १)।

२ दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः। तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् (सांख्यकारिका)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n153/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पुरुष—इन्हीं दोनों को मूलतत्त्व मानकर सांख्य सृष्टि की व्यवस्था करता है। उसके मत में ईश्वर की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बुद्ध ने ईश्वर के अनुयायियों की बड़ी दिल्लगी उड़ायी है। कभी कभी प्रश्न पूछने पर उन्होंने मौन का अवलम्बन ही श्रेयस्कर समझा। तात्पर्य यह है कि ईश्वर को दोनों मत अपने सिद्धान्त की पर्याप्तता के लिए कथमपि आवश्यक नहीं मानते।

(४) दोनों जगत् को परिणामशील मानते हैं। प्रकृति सतत परिणामशालिनी है। जगत् का परिणाम वह जड़ होने पर भी स्वयं करती है। इसलिए वह स्वतन्त्र है किसी पर अवलम्बित नहीं रहती। बुद्ध को भी यह परिणामशीलता का सिद्धान्त मान्य है। पर एक अन्तर है। सांख्य चित्शक्ति अर्थात् पुरुष को परिणामी नहीं मानता। पुरुष एकरस रहता है, उसमें परिणाम नहीं होता[1]। परन्तु बुद्धधर्म में पुरुष की कल्पना मान्य न होने से उसके अपरिणामी होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(५) **अहिंसा की मान्यता**—अहिंसा को जैन तथा बौद्धधर्म में मुख्य मत मानने की चाल सी पड़ गयी है। परन्तु वस्तुतः इसकी उत्पत्ति सांख्यों से हुई है। ज्ञानमार्ग कर्ममार्ग को अग्राह्य सदा से मानता है। पशुयाग में अविशुद्धि का दोष मुख्य है। पशुयाग श्रुतिसम्मत

---

१ त्रिगुणमविवेकविषयः सामान्य चेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥' (सांख्यकारिका ११)। प्रकृति कभी परिणामशून्य नहीं है। सृष्टिदशा में उसमें विरूपपरिणाम तथा प्रलयदशा में स्वरूपपरिणाम होते हैं। वह परिणाम से कदापि रहित नहीं होती। इस कारिका में 'प्रसवधर्मि' में मत्वर्थीय इन् प्रत्यय का यही स्वारस्य है। "प्रसवधर्मेति वक्तव्ये मत्वर्थीयः प्रसवधर्मस्य नित्ययोगमाख्यातुम्। सरूपविरूपपरिणामाभ्यां न कदाचिदपि वियुज्यते इत्यर्थः"—(वाचस्पति)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n154/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से कर्तव्य कर्म है, क्योंकि यज्ञ में हिंसित पशु पशुभाव छोड़कर मनुष्यभाव की प्राप्ति के बिना ही देवत्व को सद्यः प्राप्त कर लेता है। सांख्य-योग की दृष्टि में यज्ञ में पशुहिंसा अवश्य होती है। पशु को प्राण-वियोग का क्लेश सहना ही पड़ता है। अतः इतनी हिंसा होने से पुण्य की समग्रता नहीं रहती। इसका नाम व्यासभाष्य (२।१३) में 'आवाप-गमन' दिया गया[1] है। इसीलिए समस्त यम-नियमों में 'अहिंसा' की मुख्यता है। सत्य की भी पहचान अहिंसा के ऊपर निर्भर है। जो 'सत्य' सब प्राणियों का उपकारक होता है, वही ग्राह्य होता है। जिससे प्राणियों का उपघात होता है, वह 'सत्य' माना ही नहीं जा सकता[2]। सत्य से बढ़कर अहिंसा को आदर देने का यही रहस्य है। बौद्धधर्म में तो यह परमधर्म ही है।

(६) आर्यसत्य के विषय में भी दोनों मतों में पर्याप्त समता है। दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा निरोधगामिनी प्रतिपद् के प्रतीक सांख्यमत में सांख्यप्रवचनभाष्य के अनुसार इस प्रकार है—(१) जिसे हमें अपने को मुक्त करना है, वह दुःख है, (२) दुःख का कारण प्रकृति पुरुष का अविवेक है। इस अविवेक के कारण प्रकृति तथा पुरुष स्वभावतः भिन्न होने पर भी आपस में मिले हुए जान पड़ते हैं, (३) मुक्ति होने से दुःख का निरोध हो जाता है, (४) मुक्ति का साधन विवेकजन्य ज्ञान—प्रकृति-पुरुष की अन्यताख्याति, पुरुष का प्रकृति से पृथक् होने का ज्ञान है।

दोनों में इस प्रकार पर्याप्त समानता है, साथ ही विषमता भी कम नहीं है। इस साम्य को देखकर अनेक विद्वान् बुद्धधर्म को सांख्यमत का

---

२ स्यात् स्वल्पः सङ्करः सपरिहारः सप्रत्यवमर्षः कुशलस्य नापकर्षायालम्। कस्मात्? कुशलं हि मे बह्वन्यदस्ति यत्रायमवायं गतः स्वर्गेऽपि अपकर्षमल्पं करिष्यति। (भाष्य में उद्धृत पंचशिख का सूत्र)।

३ व्यासभाष्य २।३० में 'सत्य' की मार्मिक व्याख्या को देखिए।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n155/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषी बतलाते हैं। इतना तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि ये सिद्धान्त षष्ठ शताब्दी विक्रमपूर्व में अवश्य विद्यमान थे। अतः उस युग में उत्पन्न होनेवाले धर्म का इन सिद्धान्तों से प्रभावित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म

गीता और महायान—सम्प्रदाय

उपनिषद् तथा बौद्धधर्म के दार्शनिक विचारों की समता का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब हमें यह देखता है कि गीताधर्म तथा बौद्धधर्म के महायान—सम्प्रदाय में कहाँ तक विचारसाम्य है तथा इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति का मूलभूत आधार क्या है। बौद्धधर्म-सम्बन्धी इतिहास के पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि यह धर्म प्रारम्भ में निवृत्तिप्रधान था। बुद्ध ने ईश्वर तथा आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करके अपने शिष्यों को आचार की शिक्षा दी। उन्होंने सम्यक्आचार, सम्यक्दर्शन, सम्यक्व्यवहार और सम्यक्दृष्टि आदि अष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश करके चरित्रशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया। सङ्घ के अन्दर प्रवेश करनेवाले भिक्षुओं के लिए इन्होंने अत्यन्त कठोर नियमों का आदेश दिया, जिससे संघ में किसी प्रकार की बुराई न आने पाये। इसके अतिरिक्त संसार को छोड़कर जङ्गल में रहने तथा अपनी इन्द्रियों के दमन करने की भी उन्होंने ने आज्ञा दी है। उन्होंने अवैर से वैर को तथा अक्रोध से क्रोध को जीतने के लिए इसी आत्मदमन के ऊपर विशेष जोर दिया है—"न हि बैरेन वेदानि सम्मन्तीध कदाचन। अवेरेन च सम्पन्ति एस धम्मो सनातनो॥" उन का समस्त जीवन ही आत्मसंयम, इन्द्रियदमन और त्याग का उदाहरण

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n156/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उन्होंने जिन चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन किया था, उनका उद्देश्य मनुष्यमात्र को निवृत्तिमार्ग की ओर ले जाना ही था। भगवान् बुद्ध ने स्वयं पुत्र छोड़ा, स्त्री का त्याग किया, विशाल साम्राज्य को ठुकराया एवं संसार के सुखों से नाता तोड़कर कठिन तपस्या तथा आत्मदमन का मार्ग ग्रहण किया। इस प्रकार से उन्होंने मनसा, वाचा और कर्मणा मानवमात्र के लिए निवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया। इसीलिए प्राचीन बौद्धधर्म अर्थात् हीनयान पूर्णतः निवृत्तिप्रधान धर्म है।

बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त उनके शिष्यों को इस धर्म के प्रचार की आवश्यकता प्रतीत हुई। परन्तु इसके लिए किसी सरल मार्ग की आवश्यकता थी। घर-द्वार को छोड़कर भिक्षु बनकर बैठे-बैठाये मनोनिग्रह करके निर्वाण प्राप्त करने के इस निवृत्तिप्रधान मार्ग की अपेक्षा जनता में प्रिय लगनेवाले तथा उसके चित्त को आकर्षित करनेवाले किसी मार्ग की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। बुद्ध के जीवनकाल में जबतक उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व विद्यमान था, जनता को जबतक उनके भाषण सुनने को मिलते थे, तबतक इस कमी का अनुभव किसी को नहीं हुआ, परन्तु उनके निर्वाण के पश्चात् सामान्य जनता को आकर्षित करने के लिए बुद्ध के प्रति श्रद्धा की भावना को मूर्तिमान् स्वरूप देना आवश्यक था। अतः उनके निर्वाण के कुछ ही दिनों के पश्चात् लोगों ने उनको 'स्वयम्भू, अनादि अनन्त तथा पुरुषोत्तम' मानना प्रारम्भ कर दिया तथा वे कहने लगे कि असली बुद्ध का नाश नहीं होता, वह तो सदैव अचल रहता है। बौद्धग्रन्थों में यह भी प्रतिपादन किया जाने लगा कि "असली बुद्ध सारे जगत् के पिता हैं और जनसमूह उनकी सन्तान है। धर्मकृत्य के लिए समय-समय पर वे बुद्ध के रूप से प्रकट हुआ करते हैं और इस देवातिदेव की पूजा-भक्ति करने और उनकी मूर्ति के सम्मुख कीर्तन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com
Page 155 of 320

https://archive.org/details/bk1332/page/n157/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से मनुष्य को सद्गति प्राप्त होती है[1]। इस प्रकार धीरे-धीरे इस नवीन सम्प्रदाय का उदय हुआ, जो अपनी विशिष्टता के कारण अपने को महायानी (प्रशस्तमार्गवाला) कहता था और इससे पूर्ववाले सम्प्रदाय को हीनयानी नाम देता है। इस महायान-सम्प्रदाय में भक्ति की प्रधानता थी। इस मत के अवलम्बी भगवान् बुद्ध को अवतार के रूप में मानने लगे और उनकी मूर्ति बैठाकर पूजा-अर्चना भी करने लगे। इतना ही नहीं, इन्होंने लोक-संग्रह के भावों को भी अपनाया। वे यह भी कहने लगे कि बौद्ध भिक्षु को 'गेंड़े के समान अकेले तथा उदासीन बने रहना न चाहिए, किन्तु धर्मप्रसार आदि लोकहित तथा परोपकार के काम निरिस्सित बुद्धि से करते जाना ही उनका परम कर्तव्य है।' इसी मत का विशेष रूप से प्रतिपादन महायानपन्थ के 'सद्धर्मपुण्डरीक' आदि बौद्धग्रन्थों में किया गया है। नागसेन ने मिलिन्द से कहा है कि "गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी निर्वाणपद को पा लेना बिलकुल अशक्य नहीं है" (मि० प्र० ६।२।४)। इस प्रकार से महायानसम्प्रदाय में भक्ति की भावना तथा लोकसंग्रह का भाव विशेष रूप से पाया जाता है। अब हमें विचार करना है कि इस नवीन सम्प्रदाय की उत्पत्ति कैसे हुई ? क्या निवृत्ति-प्रधान हीनयानधर्म से भक्ति तथा प्रवृत्तिप्रधान महायान-सम्प्रदाय की उत्पत्ति सम्भव है ?

मेरी यह निश्चित धारणा है कि इस महायान-सम्प्रदाय की उत्पत्ति गीता से हुई है और इस धारणा के लिए निम्नाङ्कित चार प्रधान कारण हैं—(१) केवल अनात्मवादी तथा संन्यासप्रधान मूल हीनयान बौद्धधर्म से ही आगे चलकर क्रमशः स्वाभाविक रीति से भक्तिप्रधान तथा प्रवृत्तिप्रधान तत्त्वों का निकलना सम्भव नहीं है। (२ , महायानपन्थ की उत्पत्ति के विषय में स्वयं बौद्ध ग्रन्थकारों ने

---

१ सद्धर्म पुण्डरीक २।७७।६८, मिलिन्द प्रश्न ३।७।७।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n158/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण के नाम का स्पष्टतया निर्देश किया है। (३) गीता के प्रधान तत्वों की महायान-पन्थ के मतों से अर्थतः तथा शब्दतः समानता है। (४) बौद्धधर्म के साथ ही साथ तत्कालीन प्रचलित सामान्य जैन तथा वैदिक पन्थों में प्रवृत्ति-प्रधान भक्तिमार्ग का प्रचार न था।

इन्हीं चार कारणों पर यहाँ संक्षेप से विचार किया जायगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, प्रारम्भ में बौद्धधर्म संन्यासप्रधान तथा निवृत्तिमार्गी था। इन्द्रियों का दमन करके, सदाचरण से रहते हुए निर्वाण की प्राप्ति करना ही भिक्षु का चरम लक्ष्य था। इस सम्प्रदाय में तो बुद्ध की पूजा के लिए न कोई स्थान था और न परोपकार की प्रवृत्ति। मानापमान तथा सुख-दुःख से ऊपर उठे हुए भिक्षु को सांसारिक वस्तुओं से कुछ काम नहीं था। उस का सारा पवित्र तथा शान्त जीवन निर्वाण की प्राप्ति में ही लगा रहता था। ऐसे निवृत्तिमार्गी तथा लोकसङ्ग्रह के भाव से दूर रहनेवाले (हीनयान) से क्या भक्तिप्रधान महायान की उत्पत्ति कभी सम्भव है ? जिस प्रकार जल से घी की अथवा सिकता (बालू) से तेल की उत्पत्ति नहीं हो सकती (क्योंकि घी और तेल को उत्पन्न करने की शक्ति जल और सिकता में नहीं है), उसी प्रकार निवृत्ति-परक हीनयानी पन्थ से प्रवृत्ति कथमपि सम्भव नहीं है।

बौद्ध ऐतिहासिकों के लेखों से पता चलता है कि महायान की उत्पत्ति गीता से हुई है। तिब्बती भाषा में बौद्धधर्म के इतिहास के विषय में श्रीतारानाथ ने जो ग्रन्थ लिखा है, उसमें उन्होंने स्पष्ट रीति से यह उल्लेख किया है कि "महायान-सम्प्रदाय का मुख्य पुरस्कर्ता नागार्जुन था। उसका गुरु राहुलभद्र नामक बौद्ध ब्राह्मण था तथा इस ब्राह्मण को महायान-पन्थ की कल्पना सूझ पड़ने के लिए

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n159/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी श्रीकृष्ण और गणेश कारण हुए"। इसके सिवा एक दूसरे तिब्बती ग्रन्थ में भी यही उल्लेख पाया जाता है[१]। इसी बात को पश्चिमी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। यह सच है कि श्रीतारानाथ का ग्रन्थ अधिक प्राचीन नहीं है, परन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ही लिखा गया होगा। श्रीतारानाथ के कथन में सन्देह करने का तनिक भी स्थान नहीं है, क्योंकि कोई बौद्धग्रन्थकार अपने धर्मग्रन्थ के तत्वों को बतलाते समय बिना किसी प्रबल कारण के परधर्मियों का इस प्रकार उल्लेख नहीं कर सकता। श्रीतारानाथ के द्वारा श्रीकृष्ण का नामोल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण के नाम से भगवद्गीता को छोड़कर वैदिक धर्म में अन्य कोई ग्रन्थ सम्बद्ध नहीं है, अतः इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि महायानपन्थ ने अपने अनेक सिद्धान्तों का ग्रहण भगवद्-गीता से किया है।

महायान सम्प्रदाय तथा गीताधर्म के दार्शनिक विचारों में इतनी अधिक समानता है कि उनके गम्भीर अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन नहीं है कि इनमें से एक दूसरे से अवश्य प्रभावित हुआ है। गीता में श्रीकृष्ण ने लिखा है कि मैं पुरुषोत्तम ही सब लोगों का पिता और पितामह हूँ, मैं सबको सम हूँ, मुझे न तो कोई द्वेष है और न प्रिय, मैं यद्यपि अज और अव्यय हूँ, तथापि धर्मरक्षणार्थ समय-

---

१ श्रीनागार्जुन महायान-सम्प्रदाय के राहुलभद्र ब्राह्मण के शिष्य थे। यह ऋषि कृष्ण और उनसे भी अधिक गणेश का आभारी था। इतिहासाभास का, जिसकी आलङ्कारिक अभिव्यक्ति भी कम कर दी गयी है, अभिप्राय यह है कि महायान-सम्प्रदाय भगवद्गीता का और उससे भी अधिक शैवसम्प्रदाय का ऋणी है। (डाक्टर कर्न, 'मेन्युअल ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म' पृ० १२२)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n160/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पर अवतार लेता हूँ। मनुष्य कितना भी दुराचारी क्यों न हो, परन्तु मेरा भजन करने से वह साधु हो जाता है (९, ३०)। इस प्रकार गीता में कर्म-योग तथा भक्तियोग का जो समन्वय पाया जाता है, वही बातें अक्षरशः महायानधर्म में भी पायी जाती हैं।

अब यह देखना है कि गीता के अतिरिक्त और अन्य कौन ग्रन्थ है, जिससे इन सिद्धान्तों की समता दिखायी पड़ती है। महायान के पहले जैन तथा वैदिक धर्म की प्रधानता थी। ये दोनों धर्म निवृत्ति-परक हैं, अतः इनसे महायानधर्म की उत्पत्ति नहीं हो सकती। विद्वानों ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि गीता की रचना महायान की उत्पत्ति से पहले हो चुकी थी। अतः इस कथन में तनिक भी सन्देह नहीं है कि महायान-सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों के लिए भगवद्गीता का ही ऋणी है तथा गीता का प्रभाव इस धर्म पर बहुत ही अधिक है। (इस विषय के विशेष प्रतिपादन के लिए देखिए लेखक का 'बौद्धदर्शन')।

---

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n161/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी-धर्म

(१२) कुङ्गफुत्सं का मत

चीन के प्राचीन धर्म में दो विभाग अलग अलग रखे गये हैं। वर्तमान विद्वान् उन दोनों को दो अलग धर्म समझते हैं। परन्तु वास्तव में दोनों के मूल सिद्धान्त एक ही हैं। भिन्नता यह है कि अधिकार के अनुसार दोनों भिन्न मार्ग-प्रदर्शन करते हैं। सर्व-साधारण के लिए धार्मिक विधि-निषेध के नियमों का संग्रह कौंग-त्से ने जिनको पाश्चात्य लोग 'कोन्फ्यूशस' कहते हैं, किया है। इनके विचार मनु से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इनकी दृष्टि लौकिक धर्म और समाज शुद्ध रखने के नियमों पर है। इस धर्म में उपासना-मार्ग केवल पितरों का पूजन और उनमें श्रद्धा है। इसमें ज्ञान और भक्ति का नाम भी नहीं आता। इसका विषय उत्तम मनुष्यता है। कौंग-त्से ने अच्छे जीवन और काम-क्रोधादि को वश में रखने के उपाय बतलाये हैं। उनकी दृष्टि यह थी कि जब ज्ञान और भक्ति की चर्चा बहुत होती है, तब सदाचार गौण हो जाता है, क्योंकि ज्ञानी और भक्तों के लिए सदाचार स्वाभाविक है। परन्तु, साधारण मनुष्य, जिसकी मनोवृत्ति ज्ञान और भक्ति की ओर नहीं है, यदि ज्ञान और धर्म की शिक्षा को एक साथ मिलाता है तो वह ज्ञान और भक्ति एकसाथ मिलाने में असमर्थ होकर ज्ञान के साथ धर्म और सदाचार को भी छोड़ देता है। जब से सदाचार और काम-क्रोधादि वश में रखना मनुष्यता और सभ्यता का चिह्न समझा गया, तब से इसके विरुद्ध किसी ने आवाज नहीं उठाई। पापी भी, जो ईश्वर में या पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते, भयभीत

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n162/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना, चोरी करना, झूठ बोलना या उच्छृंखलता में रहना यह सब पाप नहीं, बल्कि असभ्यता समझते हैं और इससे उनको इतनी लज्जा होती है कि उनके लिए, जीवन असह्य हो जाता है। यहाँ तक देखा गया है कि चीन में छोटे बच्चे दुःख सहने पर भी कभी नहीं रोते, क्योंकि जन्म से उनको यह समझा दिया जाता है कि मन की ऐसी कमजोरी से सब परिवार का नाम कलङ्कित होगा। इस तरह कोंग-त्से के सांसारिक धर्म का चीन की सभ्यता पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग इस सन्त पुरुष को 'कोनूफ्यूशस' के महनीय नाम से पुकारते हैं, परन्तु इनके चीनी नाम 'कुङ्ग फुत्जे' के आद्य शब्द में मुनि शब्द मिला देने से हमारे लिए आप 'कुङ्ग मुनि' हैं। चीन देश की सभ्यता को प्रतिष्ठित करने वाले लोगों में कुङ्गमुनि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। बुद्धधर्म का प्रचार चीन देश में पर्याप्त मात्रा में है, पर कुङ्गमुनि तथा बुद्ध की शिक्षाओं में पारस्परिक विभेद न होने के कारण इन दोनों मतों का प्रसार साथ ही साथ हुआ है। प्रत्येक चीनी ऐहिक जीवन के लिए कुङ्गमुनि के सदुपदेशों में श्रद्धा रखता है, साथ ही साथ पारलौकिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए वह बौद्धधर्म का पक्षपाती है। इस प्रकार दोनों मतों को मिलकर चीनदेशीय सभ्यता तथा संस्कृति को चिरस्थायी बनाने का गौरव प्राप्त है। कुङ्गमुनि चीन देश की विभूति थे, बुद्ध भारतवर्ष की। इन दोनों के उपदेश चीन की पवित्र भूमि में दूध पानी की तरह मिलकर चीन देशवासियों के जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि इन दोनों के प्रभावों का पृथक्करण नितान्त असम्भव सा प्रतीत होता है।

कुङ्गमुनि बुद्ध के समकालीन थे। इनका जन्म ईसा से पूर्व ५५१ वर्ष में आधुनिक 'शंगटुंग' नामक प्रान्त के 'चो' नामक स्थान पर हुआ था। तीन साल की अवस्था में पिता मर गये, जिससे घर में

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n163/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरिद्रता का राज्य हो गया, पर आपने इतने उत्साह तथा प्रेम से विद्या का अभ्यास किया कि ये २० वर्ष की उम्र में अपनी विद्या, बुद्धि-मत्ता तथा चरित्रबल के कारण विख्यात हो गये। २० वर्ष की अवस्था में ही ये प्राचीन इतिहास, राजनीति तथा तत्त्वज्ञान की शिक्षा देने लगे। भारतीय आदर्श के अनुसार इनकी शिक्षा निःशुल्क होती थी। दूर दूर से विद्यार्थी इनकी विद्वत्ता की कमनीय कीर्ति सुनकर आने लगे। इन्होंने संगीतशास्त्र का भी खूब अभ्यास किया था, दैवयोग से इनकी पूजनीया माता का देहावसान इसी काल के आसपास हो गया। उस समय चीन की राजधानी 'होनान' प्रान्त में 'लोयाग' नामक नगर में थी। महाराजा का नाम था चाव। कुङ्गमुनि इनने मिलने राजधानी पहुँचे, पर बड़े सुयोग से इनकी तत्कालीन एक विख्यात दार्शनिक से भेंट हुई। महाराजा चाव के विशाल ग्रन्थालय का अध्यक्ष 'लावटान' था, जो 'लावा त्सु' के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसके मत का आदर आज भी यूरोप में सर्वत्र है। लावा त्सु वृद्ध हो गये थे, कुङ्ग अभी नवयुवक थे। दोनों की भेंट हुई। इस भेंट से कुङ्ग के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। लाव त्सु त्याग, शान्ति तथा निष्काम कर्म आदि उपनिषद्-प्रतिपाद्य सिद्धान्तों के पक्षपाती थे, कुङ्ग आपाततः इनसे प्रेम न करते थे, पर पारस्परिक विचार-विनिमय से इनके ऊपर भी इन सिद्धान्तों का कम प्रभाव न पड़ा। सन् ५०१ ई० पू० अपनी उम्र के पचासवें वर्ष में कुङ्गमुनि 'चुंग टू' नामक प्रधान न्यायाधीश बनाये गये। तब इन्होंने अपने सदुपदेशों को व्यवहार में लाकर लोगों को चकित कर दिया। देश से चोरी-चमारी का नाम मिटने लगा, लोगों ने घरों में ताला लगाना बन्द कर दिया, सर्वत्र शान्ति विराजने लगी। उस प्रान्त के राजा 'टिंग' ने इस सुव्यवस्था को देखकर इनके नियमों को सम्पूर्ण प्रान्त भर में प्रचारित किया। वहाँ भी वही शान्ति विराजने लगी, पर अन्य राजाओं को यह कब अच्छा लगता? उन्होंने

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n164/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक षड्यन्त्र रचकर राजा के मन में इनके प्रति वैमनस्य का उदय करा दिया। बेचारे योग्य न्यायाधीश होते हुए भी राज्य के उन्नत पद से हटा दिये गये। इसके बाद इन्होंने अपने नियमों का प्रचार करने के लिए बड़े बड़े दरबारों की खाक छानी, पर किसी ने भी इनकी नीतिमय शिक्षाओं पर ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया। अन्त में उनकी पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु हो गयी, इन्होंने इन क्लेशों को भी अपनी धैर्यशक्ति से सह लिया। इस प्रकार ४७८ ई० पू० ७३ वर्ष की उम्र में कुङ्गमुनि ने यह भौतिक शरीर छोड़ा। इतने बड़े मेधावी, परोपकारी महात्मा का इस प्रकार देहावसान हो गया। यद्यपि राजाओं तथा सरदारों के द्वारा जीवनकाल में समादृत होने का इन्हें गौरव प्राप्त न था, पर इनके शिष्यों ने इनकी खूब सेवा की, उपदेशों का खूब मनन किया तथा दूर दूर देशों में इनकी नीतिमय शिक्षा का विस्तार किया। मरने के बाद इनके शरीर को पिटारी में रखकर समाधि दे दी गयी तथा इनके ५०० शिष्यों ने गुरु की समाधि पर तीन वर्ष तक शोक मनाया। इनकी 'तालिनफू' नामक नगर में समाधि आज भी विद्यमान है। इन्होंने अपनी शिक्षाओं को लिपिबद्ध भी किया था। इनके चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। संसार की समस्त प्रतिष्ठित भाषाओं में इन ग्रन्थरत्नों के अनुवाद विद्यमान हैं। सौभाग्य का विषय है कि लंडन-प्रवासी डाक्टर हरिप्रसाद शास्त्री ने इनमें से एक ग्रन्थ का मूल चीनी भाषा से हिन्दी में अनुवाद किया है तथा विद्या-प्रेमी बड़ोदा के महाराजा ने 'श्री सयाजी साहित्यमाला' में (२२५नं०) 'कुङ्गमुनिज्ञानामृत' नाम से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

कुङ्गमुनि ने ऐहिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए नीति की सुन्दर शिक्षाओं का विधान किया है। ईश्वर के अस्तित्व को वे मानते हैं, आत्मा के पुनर्जन्म में उन्हें विश्वास है, फिर भी वे परलोक के सुधारने की उतनी चिन्ता नहीं करते जितनी इस लोक की। मनुष्य

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n165/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सामाजिक जीव' है, वह समाज में रहता है, पनपता है तथा अन्त में नाश को प्राप्त हो जाता है, उसका मानव समाज के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ है। अतः समाज की उन्नति से उसकी उन्नति होगी। वैयक्तिक उन्नति मानवजीवन का लक्ष्य नहीं है, वह तो सामाजिक उन्नति का आनुषङ्गिक फल है। समाज के प्रत्येक प्राणी के साथ सद्-व्यवहार करना हमारा परम धर्म है। माता पिता के प्रति भक्ति, दीनजन तथा सेवक के प्रति दया, भाई-बन्धुओं के साथ सहानुभूति रखने की सुन्दर शिक्षा देकर इस सिद्ध पुरुष ने चीनी सभ्यता को ध्वंस से बचा लिया। प्रजा के ऊपर पुत्र-प्रेम रखना, उनके कल्याण की सर्वदा कामना करना, राज्य की आय को अपने व्यक्तिगत भोग-विलास में न खर्च कर सार्वजनिक हित के कामों में लगाना, हितेच्छु न्याय-परायण पुरुष को आमात्य-पद पर प्रतिष्ठित करना आदि राजनीति के उपदेशों पर भारतीय राजनीति की स्पष्ट छाप दीख पड़ती है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि कुङ्मुनि के उपदेश सनातन धर्म के उपदेशों के ही छायामात्र हैं। मानव समाज के कल्याण-साधन के लिए दिये गये भगवान् मनु के सारगर्भित उपदेशों पर ही ये शिक्षाएँ अवलम्बित हैं। बुद्ध के जन्म से पहले भी भारत तथा चीन का आदान-प्रदान था, लेन-देन होता था। उसी समय भारतीय धर्म की शिक्षाओं ने इस महात्मा पुरुष को मुग्ध कर लिया था और उसी का प्रभाव उनके सदुपदेशों तथा वचनामृतों में प्रत्यक्षरूप से लक्षित हो रहा है। इस ऐतिहासिक घटना के पर्याप्त प्रमाण हमारे पास इस समय भले ही उपलब्ध न हों, पर इतना तो निश्चय है कि इस मानवधर्म (या सनातन धर्म) का हृदय इन उपदेशों में स्पष्टतया परिलक्षित हो रहा है। विद्या तथा धर्म का संग्रह करना उतना उपादेय नहीं है जितना समभाव से व्यवहार में लाना। इस पर आप कहते हैं—'विद्या तथा धर्म का संग्रह करना मिट्टी के टीले बनाने के समान है, अगर एक

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n166/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोकरा मिट्टी डालना बाकी रहे और मैं रुक जाऊँ. तो मेरा ही दोष है। इनकी समानता जमीन को चौरस बनाने के लिए मिट्टी बिछाने के समान है। अगर एक बार एक टोकरा मिट्टी डाली जाय, तो भी कुछ न कुछ काम की उन्नति ही होती है। आपत्ति के समय पुरुष के गुणों की परख होती है, इसके विषय में इनका एक उपदेश बड़ा ही हृदय-ग्राही है। आप कहते हैं कि "जब शीतकाल आता है, तब हम देखते हैं कि चीड़ और देवदारु सब के पीछे अपने पत्ते त्यागते हैं।" क्यों न हो, वे वृक्षों में श्रेष्ठ जो ठहरे। पूर्ण धर्म के विषय पर पूछने पर आपने बतलाया—"पूर्ण धर्म वह है जब तुम बाहर निकलो तो प्रत्येक से यह समझ कर मिलो कि वह तुम्हारा बड़ा अतिथि है। लोगों से जब काम लो तो यह समझो कि बड़ा यज्ञ कर रहे हो। किसी के साथ ऐसा बरताव मत करो, जो तुम उससे अपने लिए नहीं चाहते। देश में कोई दुःखित होकर तुम्हारी निन्दा न करे और घर में भी कोई तुम्हारे विरोध में न बुड़बुड़ाये" (पृ० ६७)। कितनी सुन्दर शिक्षा है! जिस शिक्षा को ईसाई लोग 'गोल्डन रूल' (सुनहरा नियम) बतलाते हैं और जिसे ईसा से ५०० वर्ष पूर्व उत्पन्न होने वाले कुङ्गमुनि ने अपने देश में प्रचारित किया था, वह शिक्षा महर्षि वेदव्यास के एक श्लोकार्द्ध में दी गयी है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

राज्य के विषय में इनके सुन्दर मत पर ध्यान दीजिये। 'जे कुङ्ग' नामक शिष्य के द्वारा शासन की आवश्यक बातों के विषय में पूछे जाने पर मुनि जी ने कहा—"पेट भर खाने को हो, सेना पर्याप्त हो और प्रजा का शासक में विश्वास हो।" जे कुङ्ग ने फिर पूछा—"यदि इन वस्तुओं में से एक को छोड़ना पड़े, तो पहले किस को त्यागें?" गुरुदेव ने कहा—"सेना को।" जे कुङ्ग ने फिर पूछा—"यदि बची हुई दो वस्तुओं में से एक में कमी करनी हो, तो किस में करें?" गुरुदेव ने कहा—"अन्न में। पूर्वकाल में मौत सब को खाती आयी है, (अर्थात्

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n167/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु-मुख में जाना मनुष्य का नैसर्गिक स्वभाव है) पर यदि राजा में प्रजा का विश्वास नहीं, तो वह राज्य ठहर नहीं सकता।" (पृ० ६०)। कितने राजनैतिक अनुभव से भरा हुआ यह उपदेश है। महाकवि कालिदास की एक छोटी उक्ति में मूल उपदेश का सारांश भरा हुआ है— "राजा प्रकृतिरञ्जनात्" अर्थात् राजा के नाम की सार्थकता प्रजा के रञ्जन में है—उसे प्रसन्न रखने तथा विश्वास उत्पन्न करने में है। किन पुरुषों का सार्थक जीवन है इस प्रश्न के उत्तर में इस महात्मा का जो उत्तर है वह ध्यान रखने लायक है, विशेष का इधर-उधर की व्यर्थ बातों में अपने बहुमूल्य समय को बिताने वाले विद्यार्थियों को। इनका कहना है—"यदि कुछ लोग दिन भर साथ रह कर एक बार भी सत्य, पुण्य तथा धर्म की बातचीत न करें और छोटी छोटी कलह की बातों पर उतर आयें तो वे लोग व्यर्थ हैं।" कितना उपादेय उपदेश है ? आनन्द के इन तीन प्रकारों पर ध्यान दीजिये—(१) शास्त्रोक्त कर्म तथा रागों के विवेकयुक्त अध्ययन में आनन्द, (२) दूसरों की भलाई के वर्णन में आनन्द, (३) अनेक भले तथा विद्वान् मित्रों की सङ्गति में आनन्द। ये तीन आनन्द लाभदायक होते हैं। (१) अपव्यय की रुचि में आनन्द, (२) आलस्य तथा व्यर्थ फिरने में आनन्द, (३) भोज का निमंत्रण देने तथा खाने में आनन्द। ये तीनों आनन्द कष्टदायक होते हैं (पृ० १४५)। इसे पढ़कर अपने आनन्द के रूप पर ध्यान दीजिये कि वह लाभदायक है अथवा कष्टकारक है।

इस प्रकार के सुन्दर उपदेशों से इनकी पुस्तकें भरी पड़ी हैं।

———

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n168/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) ताओ धर्म

चीन के धर्म का दूसरा विभाग लओ-त्से ऋषि के द्वारा, जिनका काल पाँच सौ वर्ष पूर्व मसीह माना जाता है, प्रदर्शित हुआ। इस धर्मविभाग का नाम 'ता-ओ' रखा गया, क्योंकि 'ता-ओ' शब्द निर्विकार, निरुपाधिक परम तत्त्व का द्योतक है। यह परम्परागत शिक्षा अद्वैत वेदान्त से बहुत मिलती है। इसका मार्ग वैराग्य है। इसके अधिकारी अनुयायी दीक्षा मिलने के बाद संसार को त्याग कर पहाड़ों में एकान्तवास करते हैं। वे मनुष्यसमाज के विधि निषेध और सांसारिक उन्नति की ओर प्रयत्न अज्ञान समझते हैं और सांसारिक सुख की इच्छा और इसके लिए प्रयत्न दुःख का कारण मानते हैं। वे ऐसे उपाय चाहते हैं जिनसे परमानन्द की प्राप्ति हो। इतिहास से मालूम होता है कि इन साधुओं को सांसारिक लोगों ने बहुत कष्ट दिये और उनकी हत्या तक की। सांसारिक धर्म न मानने से ये अधर्मी कहलाते थे। लोग समझते थे कि ये समाज के आधारभूत नियमों, धर्मों तथा गुणों के विरुद्ध हैं और उनका खण्डन करते हैं। साधु के वेष में वे सचमुच समाज की उन्नति और सुव्यवहार के शत्रु हैं। इसीलिए ता-ओ की शिक्षा और परम्परा गुप्त रीति से पहाड़ों की एकान्त गुफाओं में चलती थी। फिर जब लोगों की दृष्टि में कुछ विवेक होता था तब गुफा से निकलकर साधुलोग शिक्षा देते थे। ता-ओ के मूल-शास्त्र की पुस्तक अति विचित्र है। इसमें शब्दों का प्रयोग नहीं है, बल्कि प्रतीकों या चिह्नों द्वारा संसार के सब तत्त्वों का स्वरूप और उनका परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। इन चिह्नों या प्रतीकों का अभिप्राय थोड़े शब्दों में बतलाया जायगा। ता-ओ धर्म के इस ग्रन्थ का नाम

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n169/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यी-किंग' है और उसका निर्माता प्राचीन सम्राट् 'फो-हि' कहा जाता है।

आधुनिक विद्वानों के मत से प्राचीन समय में सब मनुष्य जंगली पशुओं के सदृश थे। उनमें सभ्यता का लेश भी नहीं था, न ज्ञान का। इसलिए किसी पुस्तक की रचना का समय बहुत प्राचीन होना वे नहीं मानते। उनका कहना है कि प्राचीन परम्परागत विद्या के विषय की सब बातें झूठी हैं। ऐसे लोग चीन के प्राचीन इतिहास के चक्कर में पड़ जाते हैं, क्योंकि चीन में यह एक विषय था कि किसी ग्रन्थ के रचने या छपने के समय ग्रहों, नक्षत्रों की स्थिति का लिखना आवश्यक है। इससे ज्योतिष जाननेवाले लोग किसी भी ग्रन्थ के निर्माण का ठीक समय हमेशा बतला सकते हैं और इसमें कोई सन्देह या मतभेद नहीं हो सकता। 'यी-किंग', ता-ओ के मूलग्रन्थ की रचना का समय इस विधि से ईसवी सन् के पहले ३४६८ वर्ष माना जाता है, जो कि आज से ५४०८ वर्ष पूर्व हुआ। इस ग्रन्थ के निर्माता सम्राट् फो-हि एक ऋषि और महायोगी थे। पुराणों के पण्डित बतला सकते हैं कि उनमें 'हुसि' या 'हुसरि' नाम से फो-हि की चर्चा कहीं आती है या नहीं। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि कलियुग के पहले संसार भिन्न-भिन्न देशों में बँटा न था, जैसे आजकल। उस समय सम्भवतः एक ही सनातन धर्म सब देशों में प्रचलित था। पुराने समय में भारत और चीन भिन्न देश नहीं थे, कहा जाता है कि जयद्रथ चीन का राजा था।

'यी-किंग' में जो चीन का एक प्रसिद्ध परम्परागत ग्रन्थ है, फो-हि का चरित्र मिलता है, जिसमें लिखा है कि 'फो-हि वही है, जिसने शब्द द्वारा मुख्य और गौण की परस्पर स्थिति स्थापित की, आदि-अन्त का क्रम रखा, जिससे अधिकार के अनुसार हर एक जीव के लिए धर्म स्पष्ट हो गये।' कहा जाता है कि फो-हि ने अपनी बहन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n170/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यु-ह्वा के साथ ही शासन किया। नाग के रूप में उनकी मूर्ति बनायी जाती है, जिसमें शिर मनुष्य का है और दोनों सर्प-शरीर एक साथ गिंडुलि में होते हैं। यह दोनों परमतत्त्वों के मिश्रित रूप का एक प्रतीक समझे जाते हैं। "यी-किंग" के विचित्र चिह्नों द्वारा पुरुष-प्रकृति की सर्वव्यापकता और परस्पर स्थिति हरएक कार्य में स्पष्ट होने के कारण ऐसी कोई विद्या नहीं है, जिसका विषय यी-किंग के प्रतीकों द्वारा स्पष्ट नहीं होता। इससे ज्ञान-विज्ञान के विषयों में अनेक प्रयोग होते हैं। यी-किंग का मुख्य अभिप्राय परम तत्त्व का बोध दिखाने में है, परन्तु इसका विशेष प्रयोग आजकल ज्योतिष में है, क्योंकि इन प्रतीकों से सूर्य, चन्द्र, ग्रहों और नक्षत्रों की गति समझी जा सकती है। उनमें भूत और भविष्य का पूरा ज्ञान भी मिल सकता है। सङ्गीत में उन चिह्नों द्वारा हरएक स्वर और श्रुति का अभिप्राय और प्रभाव समझा जा सकता है। इससे ज्ञात होता है कि किस किस राग का किस किस अवस्था और समय पर प्रयोग होना चाहिए, जो कि शब्दब्रह्म के अनुकूल होकर राज्य में शान्त और उन्नत अवस्था को लानेवाला है। यी-किंग का चिकित्सा और औषधों के निश्चय करने में भी प्रयोग होता है। ऐसा होना अनिवार्य भी है, क्योंकि यी-किंग द्वारा संसार के सूक्ष्म-स्थूल रूपों के रचने का क्रम और उनके आधारभूत तत्त्व, सृष्टि और प्रलय के क्रम आदि का ज्ञान मिल सकता है। 'यी-किंग' के मूल में पद अक्षरों का कोई प्रयोग नहीं होता, बल्कि अति सरल और विचित्र चिह्नों का। मूल समझाने के लिए भाष्य में चीन की प्राचीन भाषा का प्रयोग होता है।

'यी-किंग' में परमतत्त्व का प्रतीक एक सीधी रेखा होती है '———'। जब यह तत्त्व सगुण होता है तब पुल्लिंग, उष्णता, अस्तित्व इत्यादि विशेषताओं से जाना जाता है। यह परम तत्त्व 'यांग'

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n171/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद से कहा जाता है। यह शब्द संस्कृत 'लिङ्ग' शब्द का एक विकृत रूप मालूम होता है। इसलिए शिवतत्त्व और 'यांग' तत्व अभिन्न दिखलाये जाते हैं। यदि 'यांग' तत्त्व के चिह्न में शून्यता आती है, तो रेखा बीच में टूटी होती है जैसे '— —'। यह संसार की रचना के दूसरे तत्त्व का प्रतीक होता है। इस तत्व का गुण स्त्रीलिङ्ग, शीतलता, अभाव इत्यादि है। इस तत्त्व का नाम 'यीन' है, जो कि संस्कृत 'योनि' का विकृत रूप होना सम्भव है। इनकी परिभाषा से योनि और माया का अभेद स्पष्ट है, इन दोनों तत्वों के योग से सब संसार निकला है। इसलिए किसी पदार्थ में इन दोनों की परस्पर स्थिति जानने से उस पदार्थ का पूरा ज्ञान होता है, क्योंकि उन दो तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

'यीन' और 'यांग' की सबसे सरल परस्पर स्थिति चार प्रकार की हो सकती है। इन स्थितियों के विशेष प्रतीक मान लिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं— १ ⚌ समष्टि अस्तित्व (ज्योति, उष्णता, सूर्य इत्यादि), २ ⚍ व्यष्टि -अभाव (नक्षत्र), ३ ⚎ व्यष्टि अस्तित्व (ग्रह), ४ ⚏ समष्टि अभाव (चन्द्र, शीतलता इत्यादि)। इन चारों से ८ तीन भागवाले चिन्ह निकलते हैं जो कि संसार के मूल तत्त्व हैं। उनके नाम भी विचित्र और रहस्यपूर्ण हैं ☰ ख्येन (मोक्ष) ☱ तुएइ (दल-दल) ☲ ली (अग्नि, ☴ सुएन (वायु), ☳ चेन (वज्रध्वनि), ☵ खां (जल), ☶ केन (पर्वत), ☷ खुएन (पृथिवी) इन तीन भागवाले चिन्हों का एक का दूसरे से सम्मेलन होने पर ६ भागवाले ६४ तत्त्व मिल जाते हैं, जिनके आधार पर हरएक पदार्थ का स्वभाव समझा जा सकता है।

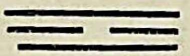
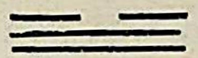
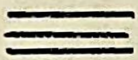
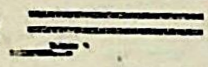
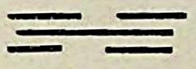
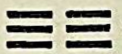
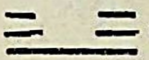
इन तीन भागवाले चिन्हों को दिशाओं के सम्बन्ध में

realpatidar.com

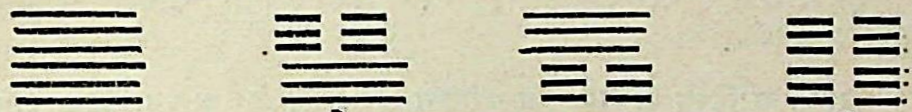
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n172/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा रखा गया है—  पूर्व  द.—पू.  दक्षिण  द.–पश्चि.  पश्चिम  उ.–प.  उत्तर  उ. पू. ।

इन ६ भागवाले चार युगों के प्रतीक ऐसे हैं—



कृत त्रेता द्वापर कलि

हरएक पदार्थ या स्थिति का स्वभाव तीन गुणों के तारतम्य और परस्पर स्थिति से मिश्रित रूप होना समझा जाता है। जब हरएक पदार्थ का स्वभाव ज्ञात होता है, तब उसका प्रभाव और प्रयोग भी जाना जा सकता है। इसलिए 'यी-किंग' के चिन्हों द्वारा ज्योतिष, वैद्यक, गणित, सङ्गीत, धर्म, आराधना, न्याय, अर्थ, काम, मोक्ष, सब संसार की हलचल समझी जाती है। हरएक घटना भविष्य-कथन हो सकती है। किंवा हरएक घटना का कारण स्पष्ट हो जाता है। 'ता-ओ' को समझनेवाले पण्डितों और साधुओं की शिक्षा से चीन की विचारधारा निकली और उसकी सभ्यता बढ़ी। उनके लेख चीन के ही नहीं बल्कि सब संसार के श्रेष्ठ ग्रन्थों में हैं। वर्तमान समय में बौद्धों और मुसलमानों का प्रभाव होने पर भी चीनी ज्ञानियों के मन 'यी-किंग' के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। 'यी-किंग' का प्रकाश निश्चल रहता है और आज भी वह सत्य की ओर चीन का मार्ग-प्रदर्शन करता है।

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n173/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त मत

(१४) सन्तों का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

सन्त साहित्य के गाढ़ अनुशीलन से सन्तों के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का पूरा परिचय आलोचक को सद्यः मिल जाता है। सन्त तथा विद्वान् में हम महान अन्तर मानते हैं। विद्वान् अथवा तत्त्वज्ञ वह व्यक्ति है जिसकी अनुभूतियाँ दूसरों की अनुभूतियों पर अवलम्बित होती हैं जो पर-पक्ष पर स्व-प्रत्यक्ष की इमारत खड़ी करता है और उसके ऊपर नहीं उठ सकता। उक्तियों और तथ्यों के आधार पर इस प्रकार गृहीत स्वप्रत्यक्ष को वह समझने का प्रयास अवश्य करता है। परन्तु उससे वह आगे नहीं बढ़ता। परन्तु सन्त का इस विषय में विद्वान् से पर्याप्त पार्थक्य है। सन्त अपने अनुभूति के आधार पर तथ्य का निर्णय करने में समर्थ होता है। वह सच्चे अर्थ में ज्ञानी होता है। ज्ञान का वास्तव अर्थ पुस्तकस्थ विद्याओं का शास्त्रीय परिचय नहीं है। ग्रन्थों से उपलब्ध-होनेवाला ज्ञान सर्वथा परोक्ष ज्ञान है और वह वस्तु-तत्व की समीक्षा के लिये उतना समर्थ नहीं होता जितना अपरोक्ष ज्ञान। तर्क के द्वारा उपलब्ध ज्ञान परानुभूति ही होता है। और यह ज्ञान अपनी अनुभूति बने बिना कथमपि उपादेय नहीं होता। ज्योतिः-स्वरूप शाश्व ब्रह्म की सत्ता का सबसे प्रबल प्रमाण क्या है ? स्वानुभूति, अपना वैयक्तिक अनुभव। इसीलिये भर्तृहरि ने स्वानुभूति को भगवान् के अस्तित्व का 'एकमान' सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है :—

स्वानुभूत्येक मानाय नमः शान्ताय तेजसे।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n174/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस परम पुरुष की सत्ता का प्रबलतम प्रमाण अपना ही अनुभव हो सकता है, दूसरों के अनुभव पर आश्रित तथा निश्चित किया गया तथ्य कदापि पूर्ण प्रामाणिक एवं अकाट्य नहीं हो सकता।

सन्तों का आग्रह स्वानुभूति के लिये है। उपनिषदों की परम्परा में साधन-प्रक्रिया के तीन सोपान हैं जिनसे होकर किसी साधक को अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचना होता है। एक भी सोपान की कमी होने पर साधक का लक्ष्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इन तीनों सोपानों का संकेत महर्षि याज्ञवल्क्य के इस महनीय वाक्य में उपलब्ध होता है :—

'आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि'[1]।

श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ही आत्मानुसंधान के त्रिविध साधन हैं। शास्त्र के वचनों अथवा गुरु के उपदेशों को प्रथमतः सुनना चाहिये (श्रवण)। सुनकर उन पर तर्क के द्वारा विचार करना चाहिये। विश्लेषण तथा समीक्षण की यह दशा तब होती है जब पर-प्रत्यक्ष की सत्यता हम प्रमाणों से जाँचते हैं। और उनके सत्य सिद्ध होने से उनमें हमारा दृढ़ विश्वास होता है (मनन)। परन्तु इतने से ही कार्य की सिद्धि नहीं होती। विद्वान् प्रायः यहीं ठहर जाता है और मनन में ही मन लगाकर उसे ही जीवन का लक्ष्य बना लेता है। परन्तु तृतीय और अन्तिम साधन, निदिध्यासन के अभाव में वह लक्ष्य तक यथार्थतः नहीं पहुँच सकता। निदिध्यासन केवल बौद्धिक चिन्तन का अभिधान नहीं है, इसमें योग का भी पर्याप्त सहयोग होता है। योग की प्रक्रिया द्वारा प्रबुद्ध मन ही श्रवण द्वारा साधारणतः ज्ञात और मनन द्वारा निश्चित तथ्यों के चिन्तन में कृतकार्य होता है और उसके साधक के जीवन में उतारने में समर्थ होता है। इन तीनों

१. बृहदारण्यक उपनिषद्

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n175/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनों की पुष्टि ही किसी साधक को 'सन्त' बनाने में सफल होती है। यह ठीक है कि अनेक सन्तों के जीवन-निर्माण में आरम्भ के दोनों सोपान साधारणतया लक्षित नहीं होते। ऐसे संतों को हम निदिध्यासन के अभ्यास में ही विशेषतः जागरूक पाते हैं। परन्तु उपर्युक्त प्रथम दोनों सोपानों की सत्ता का हम अपलाप कथमपि नहीं कर सकते।

हम यहाँ उन ईसाई धर्मावलम्बी मार्मियों (क्रिश्चियन मिस्टिक्स) के जीवन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं जो अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये सतत जागरूक तथा क्रियाशील होने पर भी अनेक बौद्धिक संशयस्थलों को कठिन परिश्रम से पार करते हैं। और मनन की अस्थिरता के कारण शुष्क तर्क के अन्धतामिस्र को दूर हटाने में गुरु की अनुकम्पा को दृढ़ साधन बनाते हैं। उनके इस संशयालु ज्ञान की तमिस्रा ईसाई ग्रन्थों में ('Dark night of the Soul') (जीव की श्यामा रजनी) के नाम से बहुशः विश्रुत है। भारतीय सन्तों के जीवन में भी यह दशा हमें देखने को मिलती है। परन्तु वास्तविक साधक इस रजनी को अपने गुरु की कृपा या अपनी प्रतिभा से सद्यः पारकर अपने आपको ज्ञानलोक में प्रतिष्ठित कर लेता है, जहाँ वह 'शान्त ज्योति' का दर्शन कर अपने को कृतकार्य बनाता है और जहाँ से उसकी कथमपि प्रच्युति नहीं होती। सन्तों की स्वानुभूति का यही पर्यवसान है।

२

सन्त की विशिष्टता के विषय में अपने एक कथन को उद्धृत करना उचित समझता हूँ—'तर्क बुद्धि (रीजन, इण्टेलेक्ट) तथा प्रतिभा (इराट्यूशन) का पारस्परिक भेद नितान्त स्पष्ट है। विद्वान् में तर्क-बुद्धि का प्राबल्य रहता है, सन्त में प्रतिभा का विलास। विद्वान् तर्क के प्रकाश में जिन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n176/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्वों का अनुसंन्धान करता है, सन्त प्रतिभा के आलोक में उनका साक्षात्कार करता है। विद्वानों का उपदेश अनेक अवसरों पर इसलिये प्रभावशाली नहीं होता कि वह पर-प्रत्यक्ष के ऊपर विशेष रूप से आधारित रहता है। इसके विपरीत सन्तों का उपदेश स्वप्रत्यक्ष के ऊपर आश्रित होने के कारण अधिक प्रभविष्णु होता है। सन्त साहित्य में यह पार्थक्य एक रोचक दृष्टान्त के द्वारा समझाया गया है। सन्तों की अनुभूत वाणी है कि हरिण को देखकर भूँकनेवाला कुत्ता एक ही होता है। दूसरे कुत्ते तो उस भूँकनेवाले कुत्ते की आवाज में अपनी आवाज मिलाकर केवल जोर से चिल्लाने लगते हैं। यह उपमा कुछ भोंड़ी सी अवश्य है, परन्तु है, एकदम ठीक, बिलकुल यथार्थ। तत्व को देखने वाले एक ही दो होते हैं परन्तु उनके विवरण और व्याख्यान को पढ़-सुनकर हजारों लोग उन्हीं वाक्यों का बिना समझेबूझे प्रयोग करने लगते हैं, उन निगूढ़ तत्वों का और भी जोरों से प्रचार करने लगते हैं।[1]

सन्तों का व्यक्तित्व पूर्वोक्त शब्दों में स्पष्टतापूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। इस विषय में हम पश्चिमी दार्शनिकों की व्याख्या की ओर संकेत मात्र कर रहे हैं। प्रख्यात यूरोपीय तत्त्वज्ञ बर्गसाँ ने बुद्धि (इन्टेलिजेन्स) तथा प्रतिभा (इन्ट्यूशन) का भेद बताते हुए कहा है कि तर्कजन्य ज्ञान पक्ष-विपक्ष के द्वैत का अतिक्रमण नहीं कर सकता। तार्किक ज्ञान की प्रक्रिया में हम मण्डन (थेसिस) तथा खण्डन (ऐण्टीथेसिस) के माध्यम द्वारा ही सिद्धांत (सिन्थेसिस) पर पहुँचते हैं। फलतः इस प्रकार बुद्धि के स्तर पर हमें विकल्पों का सामना ही करना पड़ता है। परन्तु प्रतिभा के द्वारा हम उस अवस्था पर पहुँच जाते हैं जहाँ तर्क-वितर्क के लिये स्थान नहीं होता और मानों

१. रानाडे का दर्शन, प्रयाग, १९५८, पृ० २०१

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n177/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत प्रकाश के द्वारा सकल मानस तथा मानस वृत्तियाँ एक क्षण में आलोकित और प्रकाशित हो उठती हैं। इसमें प्रथम वृत्ति का अधिकारी होता है शास्त्रज्ञ और दूसरी वृत्ति का साधक होता है सन्त। भारत के मनीषी तत्त्वज्ञ प्रोफेसर रानाडे ने भी इन दोनों का पार्थक्य बड़े ढंग से दिखलाया है "तर्कसाध्य परोक्षानुभूति तथा प्रतिभाजन्य अपरोक्षानुभूति में वही अन्तर होता है जो किसी अनुभव के विवरण तथा उस अनुभव के उपयोग के बीच में है, अथवा जो ज्ञान और सत्ता के बीच में विद्यमान होता है[1]।" फलतः इन दोनों वृत्तियों का तथा तज्जन्य अधिकारियों के पार्थक्य का यह संक्षिप्त विवरण ध्यान देने योग्य है।

[२]

स्वानुभूति और सदाचरण सन्त जीवन के मुख्य पीठाधार हैं। तार्किक बुद्धि के द्वारा शास्त्रज्ञ किसी तथ्य का केवल ऊहापोह करता है, किन्तु उस ज्ञान को अपने जीवन में उतारना वह नहीं जानता। सन्त उस ज्ञान को अपने जीवन का दर्पण बनाता है। और अपना समग्र आचरण उसी आधार पर खड़ा करता है। सन्तों की बानी में सदाचरण का नाम है 'रहनी' (रहने या जीवन बिताने का प्रकार) इसे सन्त टेकमन राम इस प्रकार निरूपित करते हैं :—

भजन करे से बेटा हमारा, ज्ञान पढ़े सो नाती।
रहनी रहै से गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥

१—Any mediate, intellectual or expressible knowledge would fall short of immediate; intuitive, first hand experience. There is the same gulf between the expression of an experience and enjoyment of it, as there is between, knowledge and being—Constructive Survey of the Upanishadic Philosophy p. 326.

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n178/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भजन करनेवाला बेटा है, ज्ञान पढ़नेवाला मेरा नाती। रहनी रहनेवाला मेरा गुरु है। मैं रहनी का साथी हूँ' इस सन्त की दृष्टि में ज्ञान से बढ़कर है भजन और भजन से बढ़कर रहनी (सदाचरण)। सदाचारी व्यक्ति गुरुस्थानीय होता है, क्योंकि सन्त रहनी का संगी सखा होता है। सन्तों की दृष्टि में 'कथनी' से बड़ा दर्जा है 'करनी' का सन्त। शुष्क ज्ञान को जीवन के लिये अनुपादेय मानता है। वह राम-भक्ति के साथ ज्ञान और विवेक के मंजुल सामरस्य का पक्षपाती होता है। ज्ञान और भक्ति का समन्वय सोने में सुगन्ध के समान होता है और इस समन्वय से युक्त साधक उस कमल के समान द्युतिमान् होता है जो निर्मल जल में विकसित है। और साथ ही साथ नाना सुन्दर रंगों से रंजित है। किनाराम के शब्दों में

सोभित ज्ञान विवेक जुत रामभक्ति के संग।
'राम किना' जिमि कमल जनु फूल्यों कमल सुरंग।[1]

सन्त मत में इसी कारण गुरु की शिक्षा के लिये बड़ा आग्रह है। गुरु की अनुकम्पा के बिना आध्यात्मिक तथ्यों की ग्रंथियाँ खुलती ही नहीं। अध्यात्म का मार्ग छुरे की धार के समान दुर्गम तथा कठिन है—'तरवारि की धार पै धावनो है'—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति[2]।

अतएव उस मार्ग पर चलने वाला ही उसकी कठिनाइयों को भलीभाँति जान सकता है और अन्य पथिकों को मार्ग-दर्शन करा सकता है। प्रोक्तान्यनेनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ,[3] अर्थात् ज्ञानी गुरु के द्वारा उपदिष्ट पुरुष ही सुन्दर ज्ञान को प्राप्त कर सकता है, अन्य नहीं।

---

१. रामगीता।
२. कठोपनिषद्
३. वही

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n179/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत में गुरु-तत्त्व की व्याख्या में 'अकर्णधार वणिक्' की बड़ी सुन्दर तथा उपयुक्त उपमा दी गई है। गुरु के चरण से पराङ्मुख व्यक्ति उसी प्रकार भग्न-मनोरथ होता है जिस प्रकार समुद्र में कर्णधार के बिना यात्रा करने वाले व्यापारी को विफल मनोरथ होना पड़ता है—

व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणम्।
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ[१]॥

इसी परम्परा का अनुसरण कर सन्तों ने जीवन के विकास में गुरु-तत्त्व का अतिशय महत्त्व माना है। पलटूदास ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में गुरु से शिक्षा लेने तथा तदनुसार जीवन-यापन की बात कही है—

धुबिया फिर मर जायेगा, चादर लीजै धोय।
चादर लीजै धोय, मल है बहुत समानी॥
चल सतगुरु के घाट भरा जहँ निर्मल पानी॥

कबीरदास ने भी गुरु की महिमा के विषय में बड़े ही महत्त्व की बातें बताई हैं उनका कहना है कि मानव शरीर विषैली लता है और गुरु अमृत का खजाना। इस शरीर को नित्य तथा सुखमय बनाने की क्षमता गुरु में ही विद्यमान रहती है। अपना सर देकर भी यदि गुरु मिल जाय, तो यह सौदा सस्ता समझो—

यह तन विष की बेलरी; गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

गुरु उपाय तथा उपेय दोनों ही होता है। गुरु वही है जो स्वयं अपरोक्ष ज्ञान का लाभ कर तथा परम स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर अनुग्रह-

१. वेद स्तुति, भाग० १०।८७।३३

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n180/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति के संचार द्वारा दूसरों को स्वरूप-प्राप्ति के पथ पर चलने में सहायता पहुँचाता है। इसलिये वस्तुतः भगवान् ही गुरु हैं। वे जीव के आत्मस्वरूप और परमस्वरूप के ज्ञाता हैं। यह तो अन्तिम दशा है। प्रथम अवस्था में मनुष्यादि की जिस देह का आश्रय कर उस गुरु-शक्ति का प्रकाश होता है, उन्हें भी गुरु-रूप में ग्रहण किया जाता है। इसलिये लक्ष्य-प्राप्ति का उपाय होने के कारण गुरु को उपाय कहा जाता है। इस उपाय के द्वारा जिस स्वरूप को प्राप्त किया जाता है वह भी गुरु है—

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'[1]।

इसलिये गुरु को उपेय भी कहा गया है। गुरु के सम्बन्ध में सन्तों के नितान्त आग्रह का यही रहस्य है। कबीरदास ने गोविन्द से गुरु के पद को जो महनीयता बताई है उसका यही कारण है—दोनों में परमार्थतः कोई भेद नहीं है।

सन्तों के जीवन से हमें संतुलित जीवन-यापन की विधि सीखनी है। सन्त का जीवन एकांगी नहीं होता। वह अपने जीवन में स्वार्थ तथा परमार्थ का, लोक-व्यवहार एवं सिद्धान्त का अनुपम मिलन दिखाता है। वह समाज पर बोझ नहीं बनता, बल्कि अपनी शिक्षा से, खास कर अपने उदाहरण से, लोगों के सामने व्यावहारिक दर्शन का आदर्श उपस्थित करता है। सन्त-भगवान को कहीं बाहर खोजने नहीं जाता। उसकी दृष्टि में—

फूल में है ज्यों बास, काठ में आग छिपानी।
दूध में है घिउ रहै, नीर घट माँहि लुकानी॥

के समान घट-घट में प्रियतम की छवि की झाँकी मिलती है! अत-

---

१. योग सूत्र

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n181/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एव वह संसार के प्राणियों के साथ मैत्री का भाव रखते हुए उसी प्यारे का नूर हर जगह देखता है।

सन्तों के इस व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाना आज हमारे लिये परम कल्याणकर होगा। प्रेम और भजन, नाम का स्मरण तथा जाप, भगवान् के दिव्य रूप की झाँकी, जगत् के प्राणियों के बीच में पाना, प्रभु को दूर न मानकर अपने हृदय के कोने में खोजना, बाहरी आडम्बरों का तिरस्कार कर हृदय में प्रेम की ज्योति जगाना ये सन्त जीवन के कतिपय महत्त्वपूर्ण संकेत हैं जिन्हें ग्रहण करने की आज नितान्त आवश्यकता है।

सन्त जगत् के जीवन के प्रत्येक क्षण में उस करुणामय की करुणा का प्रसार देखता है तथा प्रत्येक कण में भगवान् के रूप की मधुर झाँकी पाता है। रवीन्द्रनाथ की यह मार्मिक गीति सन्त के वर्तमान जीवन की दशा का सुन्दर परिचय देती है—

आजि गन्ध-विधुर समीरणे, कार सन्धाने फिरि बने-बने।
आजि क्षुब्धनीलाम्बर-माझे, ए कि चञ्चल क्रन्दन बाजे॥
सुदूर दिगन्तेर सकरुण संगीत, लागे मोर चिन्ताय काजे।
आमि खुँजि कारे अन्तरे मने, गन्ध-विधुर समीरणे॥

सन्त का यह सरस परिचय पाकर हमें चाहिये कि हम सन्तों के मूल्यवान् जीवन से शिक्षा-लाभ करें तथा उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करें।

सतामाध्यात्मिकीं दृष्टिमनुरुध्य विवेचितः।
निबन्धोऽयं भृशं भूयात् विबुधानां मुदेऽनिशम्॥

---

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n182/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५) महाराष्ट्र के चार संत-संप्रदाय

भारतवर्ष में संत-महात्माओं की संख्या जिस प्रकार अत्यंत अधिक रही है, उसी प्रकार उनके द्वारा स्थापित संप्रदायों की भी संख्या बहुत ही अधिक है। समग्र भारत के संप्रदायों के संक्षिप्त वर्णन के लिए कितने ही बड़े-बड़े ग्रंथों की जरूरत पड़ेगी। वह भी किसी एक विद्वान् के मान की बात नहीं। इस प्रकरण में केवल महाराष्ट्र देश में ही समुद्भूत संतों के द्वारा संस्थापित, सुप्रसिद्ध चार सम्प्रदायों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। अपेक्षाकृत नवीन संप्रदाय का पहले, तदनंतर क्रमशः प्राचीन संप्रदायों का विवरण उपस्थित किया जावेगा।

१—रामदासी

इन चारों सम्प्रदायों में अपेक्षाकृत सबसे अर्वाचीन यही रामदासी संप्रदाय है। फिर भी यह तीन सौ वर्ष से कम पुराना नहीं है। इसकी स्थापना छत्रपति शिवाजी के गुरु, समर्थ स्वामी रामदास जी ने की थी। स्वामी जी का जन्म १६०८ ई० में हुआ था और वैकुंठ-लाभ १६८२ ई० में। इस प्रकार १७वीं शताब्दी के लगभग मध्यकाल में इस संप्रदाय की स्थापना हुई। स्वामी रामदास के जीवन की मोटी-मोटी घटनाएँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि उन्हें दुहराने की जरूरत नहीं। इतना तो सब लोग जानते हैं कि स्वामी जी की ही शिक्षा तथा उपदेश का यह फल था कि छत्रपति शिवाजी के मन में सनातनधर्म के ऊपर अवलंबित हिंदू राष्ट्र की संस्थापना का विचार उत्पन्न हुआ, और उन्होंने उस विचार को कार्य-रूप में भी बड़ी योग्यता से परिणत कर दिखाया। संसार के दुःखद प्रपंच से घबड़ाकर निवृत्ति में ही सुख के मार्ग को बतलाने वाले बहुत से महात्मा मिलेंगे, परंतु पात्रापात्र का विशद विचार कर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n183/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के यथायोग्य सम्मेलन पर जोर देने वाले संत-जन कम ही दीखते हैं। स्वामी रामदास जी इस दूसरे प्रकार के महात्माओं में अग्रणी थे। अतः इस रामदासी संप्रदाय का मुख्य अंग समाज की ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों तरह की उन्नति करना है। स्वयं स्वामी जी ने हरिकथा-निरूपण, राजकारण तथा सावधानपना या उद्योगशीलता को अपने संप्रदाय का मुख्य लक्षण बतलाया है। प्रयत्न, प्रत्यय और प्रबोध — इन्हीं तीन शब्दों में रामदास के जीवन तथा ग्रंथों का सार है।

रामदासी तथा वारकरी संप्रदायों में इसी कारण भेद दिखाई पड़ता है। वारकरी संप्रदाय तो संपूर्ण रूप से निवृत्तिपरक है, परंतु रामदासी संप्रदाय में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों का यथानुरूप मिश्रण किया गया है। यही इसकी विशिष्टता है।

'मानपंचक' में स्वामी जी ने कहा है—

रामदासीं ब्रह्मज्ञान सारासारविचारणा।
धर्मसंस्थापने साठीं कर्मकांड उपासना॥

सदा जागरूक रहना और यत्न करते रहना—इन दोनों पर स्वामी जी का विशेष पक्षपात था। इन दोनों के आश्रय से केवल ऐहिक सुख की ही प्राप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत पारलौकिक सुख की भी प्राप्ति सहज में हो सकती है। यहाँ राज्य की प्राप्ति हो सकती है, तो वहाँ स्वराज्य की। अतः इन्हें उन्होंने बड़े महत्त्व का बतला कर सदा जागरूकता की सुंदर शिक्षा दी है।

राक्षसों के बंदीगृह से ऋषियों और देवताओं के उद्धार करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र इस संप्रदाय के उपास्य देवता हैं, तथा दास-मारुति के स्थान पर भीममारुति की उपासना यहाँ प्रचलित है। रामदास को महात्मा लोग हनुमान् जी का अवतार मानते हैं। सं० १५६७–७१ शक में हनुमान जी की भिन्न-भिन्न स्थानों पर ११ मूर्तियों की स्थापना स्वामी जी ने की। काशी में भी रामदास द्वारा स्थापित हनुमान जी हैं।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n184/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके अनुयायी गीता में प्रतिपादित कर्मयोग के सच्चे मार्ग पर शुद्ध मन से चलें, जिससे उनका दोनों लोक बन जाय। इसमें गृहस्थ भी हैं और विरक्त भी। विरक्तों के लिए ब्रह्मचारी रह कर भिक्षा पर अपनी जीविका चला कर निष्काम बुद्धि से समाज का धारण-पोषण करना और साथ ही आत्म-ज्ञान का संपादन करना आदर्श बतलाया गया है।

'दासबोध' तथा स्वामी जी के अन्य ग्रंथ इस सम्प्रदाय के भाषा-ग्रंथों में परम माननीय हैं। सं० १५७० शक से स्वामी जी ने जो राम-नवमी का उत्सव आरंभ किया वह आज तक बड़े समारोह के साथ किया जाता है। हजारों की भीड़ सिंहगढ़ आदि स्वामी जी से संबद्ध पवित्र स्थानों पर जुटती है, और कई दिनों तक लगातार 'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम' मंत्र का गगन-भेदी कीर्तन होता रहता है। इसकी सांप्रदायिक पद्धति अलग है, तथा रामनवमी के उत्सव मनाने की भी विधि रामदास जी ने ही लिख रक्खी है। स्वामी जी ने राममंत्र के ४१ श्लोक लिखे हैं जो प्रख्यात हैं। उनमें से केवल दो श्लोकों को यहाँ उद्धृत कर और 'मनोबोध' का परिचय देकर हम 'रामदासी' के संक्षिप्त वर्णन को समाप्त करते हैं—

तुला हि तनू मानवी प्राप्त झाली।
बहू जन्म पुण्यें फला लागिं आली॥
तिला तूं कसा गोंविसी विषयीं रे।
हरे राम हा मन्त्र सोपा जपा रे॥
कफें कंठ हा रुद्ध होईल जेव्हां।
अकस्मात तो प्राण जाईल तेव्हां॥
तुला कोण तेथे सखे सोयरे रे।
हरे राम हा मंत्र सोपा जपा रे॥

रामदास स्वामी ने मन को संबोधन कर संसार की माया को छोड़

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n185/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने और भगवान् की ओर लगने के जो विमल तथा स्फूर्तिदायक उपदेश दिए हैं वे 'मनोबोधाचे श्लोक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। रामदासी लोगों में ये पद्य भी खूब प्रसिद्ध हैं। ये सुंदर श्लोक मन पर तुरंत असर करनेवाले हैं। प्रातःकाल उठ कर राम का चिंतन और रामनाम का भजन करने तथा सदाचार न छोड़ने की कैसी सुंदर शिक्षा मन को दी गई है—

प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।
पुढें वैखरी राम आधी वदावा॥
सदाचार हा थोर सोडूं नये तो।
जनीं तोचि तो मानवीं धन्य होतो॥

मन! तू सङ्कल्प-विकल्प छोड़ कर एकांत में रमाकांत के भजन में सदा लगा रह—

मना! अल्प सङ्कल्प तोही नसावा।
सदा सत्यसङ्कल्प चित्तीं वसावा॥
जनीं जल्प विकल्प तोही त्यजावा।
रमाकांत येकांत कालीं भजावा॥

२—सत्पंथ

यह विचित्र पंथ महाराष्ट्र के धार्मिक सम्प्रदायों में अन्यतम है। विचित्रता यह है कि इसे चलाया एक मुसलमानी फकीर ने, पर इसे मानते हैं हिंदू और इसे वैदिक धर्म के विधि-आचार जैसे मौंजी-बंधन, शिखा-सूत्र, चार वर्ण और चार आश्रम आदि सब मान्य हैं। खानदेश के फैजपुर में (जहाँ कभी कांग्रेस हुई थी) सत्पंथियों का एक प्रसिद्ध धर्म-मंदिर है। उसी मठ के अधिकारी ने इस सम्प्रदाय का संक्षिप्त वर्णन लिखा है जो 'महाराष्ट्रीय 'ज्ञानकोश' के २१वें भाग में प्रकाशित हुआ है उसी के आधार पर यह प्रामाणिक वर्णन दिया जाता है।

सन् १४४९ ई० में इसे इमाम शाह नामक मुसलमानी फकीर ने

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n186/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित किया। ये ईरान के निवासी थे और घूमते-घामते गुजरात में आए थे। अहमदाबाद से नौ मील दक्षिण गीरमथा गाँव के पास ये रहते थे। पहुँचे हुए सिद्ध थे। इनके चमत्कार को देखकर अनेक लोग इनके भक्त बन गये। बाबा के पाँच पट्ट शिष्य हुए जिनमें एक मुसलमान था और चार हिंदू। मुसलमान शिष्य का नाम हाजर बेग, तथा हिंदू शिष्यों का भाभाराम, नागाकाका, साराकाका था। पाँचवीं शिष्या थी। यह चिचिबाई भाभाराम की बहिन थी। इस पंथ के अनुयायियों की संख्या काठियावाड़, गुजरात में खूब अधिक है। महाराष्ट्र में खानदेश के गाँवों में ही-विशेष करके सत्पंथी गृहस्थ पाये जाते हैं।

'पिराणा' नामक स्थान में इमाम शाह की गद्दी है, जहाँ पर प्रत्येक मास की शुक्ल द्वितीया, गोकुलाष्टमी, रामनवमी, भ्रुवाष्टमी तथा भाद्र के शुद्ध एकादशी को बड़ा मेला लगता है जिसमें हिंदू लोग हजारों की संख्या में भाग लेते हैं। इस मत में ब्राह्मण भी हैं, परंतु अधिक संख्या बनिया, कुनबी तथा नोनिया आदि जातियों की है जो इमामशाही कहलाते हैं। इस शाखा में मुसलमान शिष्य बिलकुल नहीं हैं। गद्दी पर ब्रह्मचारी के ही बैठने की चाल है और वह लेवा (घर बनाने वाले) पाटीदार जात का होता है। फ़ैजपुर में और खानदेश के अन्य गाँवों में भी इनकी खासी संख्या है।

ये लोग भागवत, रामायण, गीता आदि धर्म-ग्रंथों को तो मानते ही हैं, साथ ही इमाम शाह के लिखे गुरूपदेश को भी मानते हैं, जिसमें हिंदू-धर्म के ग्रंथों के वचन संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त इस मत के २१ विशिष्ट ग्रंथ हैं जो अधिकांश गुजराती और हिंदी में लिखे गए हैं। कुछ के नाम ये हैं—'जोगवाणी' (गु०), 'बोधरास' (गु०) 'सत्-वचन' (गु० हि०), 'ब्रह्मप्रकाश' (हि०) आदि। इनके देखने से इनके मत का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। इन लोगों का गुरु-मंत्र है—'शिवोऽहम्'। यह बाल-विवाह करते हैं। विधवा-विवाह की भी चलन है। श्राद्ध

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n187/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। साथ ही मंदिरों में प्रेतात्मा की उत्तम लोक की प्राप्ति की इच्छा से 'उच्चासन' नामक विधि भी की जाती है। इस मत का साहित्य अल्प ही है।

३—महानुभाव पंथ

इस पंथ के भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न नाम हैं। महाराष्ट्र में इसे महात्मा 'पंथ तथा मानभाव (जो महानुभाव शब्द का अपभ्रंश है) पंथ कहते हैं। गुजरात में अच्युत पंथ और पंजाब में जयकृष्ण पंथ के नाम से पुकारते हैं। इस नामकरण का कारण पंथ में कृष्णभक्ति की प्रधानता है। इस पंथ के वास्तविक इतिहास का पता अभी लगा है क्योंकि इसके अनुयायी अपने धर्म-ग्रंथों को अत्यंत गुप्त रक्खा करते थे। वे उसे अन्य मतावलंबियों की दृष्टि में भी आने नहीं देते थे। इस पंथ की भिन्न भिन्न शाखाओं ने अपने धर्म-ग्रंथ के लिए एक सांकेतिक लिपि बना रक्खी है जो शाखा-भेद के अनुसार छब्बीस हैं। अतः संयोग-वश इनके ग्रंथ इतर लोगों के हाथ में भी आ जायँ तो आना न आना बराबर रहता था, क्योंकि लिपि के सांकेतिक होने से वे उसका एक अक्षर न बाँच सकते थे और न समझ ही सकते थे। परंतु इस बीसवीं सदी के आरंभ से इनका कुछ रुख बदला है; इतर लोगों ने इनके ग्रंथों को पढ़ा है, और प्रकाशित किया है। स्वयं लोकमान्य तिलक ने १८९६ ई० के 'केसरी' में मानभावों पर अनेक पांडित्य-पूर्ण लेख लिखे थे। परंतु इनकी लिपि के रहस्य को ठीक-ठीक समझाने का काम किया प्रसिद्ध इतिहासज्ञ राजवाड़े ने और इनके ग्रंथों के मर्म बतलाने का काम किया 'महाराष्ट्र-सारस्वत' के लेखक भावे ने और 'महानुभावी मराठी वाङ्मय' के रचयिता श्री यशवंत देशपांडे ने। इन्हीं विद्वानों के शोध के बल पर आज इनके मत, सिद्धांत, ग्रंथ तथा इतिहास का बहुत कुछ प्रामाणिक पता चला है।

महाराष्ट्र देश में मानभावों के प्रति लोगों में बड़ी अश्रद्धा है। सबेरे

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n188/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवेरे मानभाव का मुँह देखना ही क्यों उसका नाम लेना भी अपशकुन माना जाता है। एक प्रचलित कहावत है—'करणी कसावाचो, बोलणीं मानभाघाची', अर्थात् करनी तो कसाई की है और बोली मानभाव की। साधारण बोलचाल में मानभाव और कसाई दोनों को एक ही श्रेणी में रखने में लोग नहीं हिचकते। मानभाव गृहस्थ अपने धर्म को कदापि नहीं प्रकट करता था। वह छिप कर अपना जीवन बिताता था। बड़े-बड़े संतों की भी यही बात थी। एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओं की वानी में भी मानभावों के प्रति अनादर भरा हुआ है। इस प्रकार इनका सर्वत्र तिरस्कार होता था, इनके प्रति सर्वत्र द्वेष फैला हुआ था। आज-कल यह कुछ कम हुआ है, परंतु फिर भी यह है ही। इस तिरस्कार का कारण इनके इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट मालूम पड़ता है। शक की १२वीं सदी में यह मत जनमा। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय मत के उपास्य देवता हैं। देवगिरि के यादव नरेश महादेव और रामराय इनके गुरुओं और आचार्यों को बड़े सम्मान के साथ सभा में बुलाते थे। मुसलमानों के आने से वह समय पलट गया। मानभावों ने भी मुसलमानों के हिंदू-धर्म के प्रति किए गए छल और अत्याचार को देखकर अपने धर्म के रहस्यों को छिपाया। ये लोग मूर्तिपूजा को नहीं मानते। अतः यवनों ने इन्हें मूर्तिपूजक हिंदुओं से अलग समझा और इनके साथ कुछ रियायत की। बस हिंदू लोग इनसे बिगड़ गए और इन्हें दगाबाज समझने लगे। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय से संबद्ध तीर्थ-स्थानों पर ये अपना 'चबूतरा' बनाने लगे। स्त्री शूद्रों के लिए भी संन्यास की व्यवस्था की। भगवा-धारी संन्यासी से भेद बतलाने के लिए इनके संन्यासी काला कपड़ा पहनने लगे। इन्हीं सब 'अहिंदू' आचारों से हिंदू जनता बिगड़ गई और इन्हें कपटी, छली, दुष्ट तथा वंचक समझने लगी। सौभाग्य-वश यह भाव समय की अनुकूलता से पलट रहा है।

इस मत का आजकल प्रचार केवल महाराष्ट्र ही में नहीं है, प्रत्युत

१२

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n189/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजरात, पंजाब, यू० पी० के कुछ भाग, कश्मीर तथा सुदूर काबुल तक है। हिंदुओं में वर्ण-भेद को मिटाकर सब में समानता तथा मैत्री का प्रचार करना ही इस पंथ का उद्देश्य है। इसके संस्थापक हैं चक्रधर जो भड़ोच के राजा थे और जिनका असली नाम था हरपाल देव। पीछे इन्हीं का नाम चक्रधर पड़ा। ११८५ शक में इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली और शिष्य-मंडली इनके विचित्र चमत्कार को देखकर जुटने लगी। इन्होंने ५०० शिष्य किए जो गुजराती थे। पीछे महाराष्ट्र में यह मत फैला। इसकी भिन्न-भिन्न १३ शाखाएँ हैं, जिन्हें 'आम्नाय' कहते हैं। इन शिष्यों में प्रधान नागदेवाचार्य थे, जिनके सतत उद्योग से इसका प्रचुर प्रचार हुआ। इन्हें वेदशास्त्र सब मान्य हैं। संस्थापक भी ब्राह्मण थे तथा तीन सौ वर्षों तक ब्राह्मण ही इसके प्रमुख नेता होते थे। इनके दो वर्ग हैं—उपदेशी और संन्यासी। उपदेशी गृहस्थ हैं, वर्ण-व्यवस्था मानते हैं और उनका विवाह स्वजातीयों में ही हुआ करता है। संन्यासी स्त्री और शूद्र भी हो सकते हैं। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय उपास्य देवता हैं। गीता मान्य धर्मग्रंथ है। इस कारण चक्रधर के समय से लेकर आज तक अनेक मानभावी संतों ने स्वमतानुसार गीता पर टीकाएँ लिखी हैं। ये लोग द्वैतवादी हैं। परमेश्वर को निर्गुण निराकार मानते हैं, जो भक्तों पर कृपावश साकार रूप धारण कर लेता है।

महानुभाव सम्प्रदाय में जितने ग्रंथ उपलब्ध हैं, उतने शायद ही तत्सदृश अन्य मत में हों। सबसे बड़ी विशेषता इनका प्राचीन साहित्य है। 'ज्ञानेश्वरी' (श० १२१२) ही मराठी साहित्य का आद्य-ग्रंथ अब तक माना जाता था, परंतु मानभावों के प्राचीन ग्रंथों की उपलब्धि के कारण यह मत अब बदल गया है क्योंकि ज्ञानेश्वर महाराज से पूर्व के भी अनेक मानभावी गद्य तथा पद्य ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। महींद्र भट्ट का 'लीला-चरित्र' (चक्रधर स्वामी का जीवन-वृत्त, श० ११९५), भास्कर कवि का ओवी बद्ध (शिशुपाल-वध' और 'एकादश स्कंध

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n190/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत', और 'कृष्णचरित्र' (गद्य), केशव व्यास और गोपाल पंडित का 'सिद्धांत-सूत्रपाठ' (गद्य) जो इस मत का प्रधान दर्शन-ग्रंथ माना जाता है और जिसकी व्याख्या में अनेकानेक ग्रंथ बने हैं—आदि बहुत ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' से भी पूर्व के हैं। अतः मानभावों का उपकार मराठी साहित्य पर बहुत अधिक है। इतना ही नहीं, इन्होंने पंजाब जैसे यवन-प्रधान देश में अहिंसा का प्रचार किया; काबुल में हिंदू मंदिर बनाया, जिसका पहला पुजारी नागेंद्र मुनि बीजापुरकर नामक दक्षिणी ब्राह्मण था; खास महाराष्ट्र में भी मद्यमांस के निवारण का प्रयत्न किया। मराठी भाषा के ऊपर भी इनका उपकार कैसे गिनाया जाय ? इन्होंने ग़ज़नी, काबुल तक मराठी भाषा का प्रचार किया। दोस्त मुहम्मद का प्रधान विचारदास, और कश्मीर के महाराज गुलाब सिंह का सेनापति सरदार भगत सुजान राय दोनों मानभावी उपदेशी थे। अतः इन्होंने मराठी को धर्म-भाषा अपने राज्य में बनाया था। आज भी लाहौर में बहुत से व्यापारी मानभावी हैं, जो अपने खर्चे से मानभावी ग्रंथों का प्रकाशन भी कर रहे हैं। इस मत के महंत लोग भी अब अपने धर्म-ग्रन्थों को, जिनकी विपुल संख्या आज भी मराठी भाषा में विद्यमान है, प्रकाशित करने की ओर अग्रसर दीखते हैं। यह मराठी साहित्य के लिए शुभ अवसर है।

४—वारकरी पंथ

यह सम्प्रदाय महाराष्ट्र देश की धार्मिकता की बहुमूल्य विभूति है। यह वहीं जनमा, वहीं पनपा, वहीं इसने शाखाओं का विस्तार किया और आज भी वहीं पूरे देश भर में अपनी शीतल छाया में हजारों भक्त नर-नारियों को विश्राम दे कर सांसारिक ताप से उन्हें मुक्त कर रहा है। इस सम्प्रदाय का इतिहास लिखना क्या है पूरे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध संतों के जीवन, प्रभाव, और कार्य का प्रदर्शन करना है, क्योंकि रामदासियों की संख्या छोड़ देने पर अधिकांश महाराष्ट्रीय संत

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n191/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी पंथ के अनुयायी थे। इन संतों से परिचित होने के पहले इस पंथ के नाम का ठीक-ठीक अर्थ जान लेना नितांत उचित है।

महाराष्ट्र में पंढरपुर नामक एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। वहाँ विट्ठल-नाथ जी की मूर्ति है। 'विट्ठल' शब्द विष्णु शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। अतः विट्ठलनाथ जी कृष्णचंद्र के बाल-रूप हैं। आषाढ़ की शुक्ला एकादशी और कार्तिक की शुक्ला एकादशी को साल में कम से कम दो बार विट्ठल के भक्तजन पंढरपुर की यात्रा किया करते हैं। इसी यात्रा का नाम है—वारी। अतः इस पुण्य-यात्रा के करनेवालों का नाम हुआ—वारकरी। इसी कारण इस पंथ का नाम वारकरी पंथ पड़ा है। महाराष्ट्र में एक बड़े महात्मा पुंडलीक हो गए हैं, जिनकी भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं कृष्णचंद्र बाल-रूप धारण कर उनके सामने प्रकट हुए, और उन्होंने उनके बैठने के लिए एक ईंट रख दी जिस पर वे खड़े हो गए। ईंट पर वह खड़ी मूर्ति श्री विट्ठलनाथ जी की है। बालकृष्ण को तुलसी बड़ी प्यारी है। अतः भक्त लोग गले में तुलसी की माला डाल कर पूर्वोक्त एकादशी को लाखों की संख्या में विट्ठल जी के मधुर दर्शन कर अपने जीवन को सफल करने के लिए जब इकट्ठे होते हैं और जब उनके भक्त कंठ से 'पुंडलीक वरदा हरि विट्ठल' मंत्र की सांद्रध्वनि गगन-मंडल को भेदन करती हुई निकलती है, तब का दृश्य शब्दों में वर्णन करने के योग्य नहीं। उस समय प्रतीत होता है कि धार्मिकता की बाढ़ आ गई हो। भक्तजनों के मनोमयूर नाचने लगते हैं। आनंद की सरिता बहने लगती है। इनमें आषाढ़ी एकादशी (हरिशयनी) को तो सबसे अधिक भीड़ होती है। तीन लाख से भी ऊपर भक्तजन एकत्र होते हैं। इस दृश्य की कल्पना भी वारकरी संतों के व्यापक प्रभाव को आज भी बतलाने में समर्थ हो सकती है।

यह वारकरी सम्प्रदाय पूर्णतया वैदिक धर्मानुकूल है। जिन्हें इसकी उत्पत्ति में अवैदिकता की गन्ध आती है, वे गलती पर हैं। यह बिलकुल

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n192/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत-संप्रदाय है। भगवान् कृष्ण की भक्ति ही मोक्ष का प्रधान साधन है। भक्तिमार्गी होने पर भी यह पंथ माध्वादिमतों के सदृश द्वैतवादी नहीं है, प्रत्युत पक्का अद्वैतवादी है। अद्वैतवाद के साथ भक्ति का मेल करा देना इस मार्ग की अपनी विशेषता है। यह भक्ति ज्ञान के प्रतिकूल नहीं है, प्रत्युत एकनाथ महाराज के कथनानुसार भक्ति मूल है और ज्ञान फल है। जिस प्रकार बिना मूल रहे फल पाने की संभावना नहीं रहती, उसी तरह बिना भक्ति के, ज्ञान के उत्पन्न होने की भी बात असम्भव है। भक्ति तथा ज्ञान दोनों का समन्वय इस मार्ग में है। एकनाथ जी ने अपने 'भागवत' में स्पष्ट कहा है—

भक्ति तें मूल ज्ञान तें फल।
वैराग्य केवल तेथीं चें फूल॥
भक्ति युक्त ज्ञान तेथें नाही पतन।
भक्ति माता तथा करित से जतन॥

भगवान् की प्राप्ति के लिए अन्य साधन बड़े कठिन हैं। यदि कोई सुलभ और सहज साधन हाथ के पास है, तो वह हरिभजन ही है। इसीलिए इन सन्तों ने हरिभजन पर इतना जोर दिया है। इनका निश्चित मत है कि श्री पंढरीनाथ की भजन द्वारा उपासना करने से भक्तों के अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की सिद्धि होती है।

इस पंथ में चार सम्प्रदाय हैं—(१) चैतन्य संप्रदाय—इस मत में दो भेद हैं। एक में 'राम-कृष्ण-हरि' यह षडक्षरी मंत्र है, और दूसरे में प्रसिद्ध द्वादशाक्षरी मंत्र (२) स्वरूप संप्रदाय—इसका 'श्री राम जय राम जय जय राम' यह त्रयोदशाक्षरी मंत्र है। इसके दो छोटे-छोटे उप-संप्रदाय हैं। (३) आनंद संप्रदाय—इसका त्र्यक्षरी मंत्र है 'श्री राम' और द्व्यक्षरी मंत्र केवल 'राम'। इसके अंतर्गत नारद,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n193/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि, रामानंद, कबीर आदि संत माने जाते हैं। (४) प्रकाश संप्रदाय—इसका मंत्र है 'ॐ नमो नारायण'। इस प्रकार मंत्र के भेद से वारकरी पंथ के इतने प्रभेद हैं।

यह पंथ प्रधानतया कृष्णभक्ति-मूलक होने पर भी शिव का विरोधी नहीं है। इसमें हरि और हर दोनों की एकता ही मानी जाती है। यह इसकी बड़ी विशिष्टता है। स्वयं पंढरीनाथ के सिर पर शिव की मूर्ति विराजमान है, तब पंढरीनाथ के भक्त का शिव से विरोध भला कभी हो सकता है? ये लोग जिस प्रकार एकादशी के दिन व्रत रहते हैं, उसी भाँति शिवरात्रि और सोमवार को भी। इन्हीं के कारण महाराष्ट्र देश में दक्षिण देश के समान शिव-विष्णु के मतभेद का नाम निशान भी नहीं है। यद्यपि प्रधानतया विट्ठलनाथ ही उपास्य देवता हैं, पर साथ ही साथ अन्य हिंदू देवताओं की भी पूजा और आराधना इस मत में चलती है। ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम जी इस संप्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं जिनसे सम्बद्ध सब स्थान तीर्थ के समान पवित्र माने जाते हैं। इनके मान्य ग्रंथ 'भागवत' तथा 'गीता' तो हैं ही, साथ ही मराठी ग्रंथों में 'ज्ञानेश्वरी', 'एकनाथी भागवत' तथा तुकाराम के 'अभंग' इनके मान्य धर्मग्रन्थ हैं जिनका पठन-पाठन गुरु-परंपरा से लिया जाता है। महाराष्ट्र में आज भी अनेक कीर्तनकार हैं जो इन ग्रन्थों के सांप्रदायिक अर्थ की व्याख्या बड़ी विद्वत्ता और मार्मिकता के साथ करते हैं और आज भी इन कीर्तनकारों की बानी में जोर है, प्रभाव है, और महात्माओं की वाणी को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य है।

इस मत के सब सन्तों के परिचय देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। इसके लिए तो एक पुस्तक लिखी जा सकती है। यहाँ पर केवल प्रसिद्ध सन्तों के ही कुछ नाम दिए जाते हैं—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n194/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतनाम	काल : शक	समाधिस्थान ¹
निवृत्तिनाथ	११९५–१२१९	त्र्यंबकेश्वर
ज्ञानेश्वर महाराज	११९७–१२१८	आलंदी
सोपान देव	११९९–१२१८	सासवड
मुक्ताबाई ...	१२०१–१२१९	एदलाबाद
विसोबा खेचर ...	१२३१	...
नामदेव ...	११९२–१२७२	पंढरपुर
गोरा कुंभार ...	११८९–१२३९	तेर
सावता माली ...	१२१७	अरणभेंडी
नरहरी सोनार ...	१२३५	पंढरपुर
चोखा मेला ...	१२६०	पंढरपुर
जगमित्र नागा ...	१२५२	परली (वैजनाथ)
कूर्मदास ...	१२५३	लऊल
जनाबाई ...	...	पंढरपुर
चांगदेव ...	१२२७	पुणतांबे
भानुदास ...	१३७०	पैठण
एकनाथ ...	१४७०–१५२१	पैठण
राघव चैतन्य ...	...	ओतूर
केशव चैतन्य ...	१३९३	गुलबर्गा
तुकाराम ...	१५७२	देहू
निलोबा राय ...	...	पिंपलनेर
शंकर स्वामी ...	...	शिरूर
मल्लापा ...	...	आलंदी
मुकुन्द राज ...	...	आंबे
कान्होपात्रा ...	...	पंढरपुर
जोगा परमानंद	...	बार्शी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n195/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब सन्त महात्मा कृष्णभक्ति के प्रसारक हुए। इनमें बड़ा-छोटा कहना अपराध है। फिर भी इनमें से चार महात्माओं ने कृष्ण-भक्ति के देवालय को महाराष्ट्र में बनाया और सजाया। पंथ की उत्पत्ति का पता नहीं, परंतु ज्ञानदेव महाराज ने इस मंदिर का पाया 'ज्ञानेश्वरी' के द्वारा खड़ा किया; नामदेव ने अपने भजनों से इसका विस्तार किया। एकनाथ महाराज ने अपने 'भागवत' की पताका फहराई और तुकाराम महाराज ने अपने अभंगों की रचना कर इसके ऊपर कलश स्थापन किया। तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई ने अपने निम्न-लिखित अभंगों में इसी बात को कितने सरल शब्दों में कहा है—

सन्त कृपा झाली।
इमारत फला आली॥ १॥
ज्ञानदेवें रचिला पाया।
रचियेलें देवालया॥ २॥
नामा तया चा किंकर।
तेथें केला हा विस्तार॥ ३॥
जनार्दन एकनाथ।
ध्वज उभारिला भागवत॥ ४॥
भजन करा सावकाश।
तुका झाला से कलश॥ ५॥

जब इतने बड़े सिद्ध पुरुषों ने अपना चित्त लगा कर इस भक्ति-मंदिर का निर्माण किया है तथा उसे अलंकृत किया है, तब उसकी महिमा कैसे बतलाई जा सकती है? धन्य है वह देश जहाँ ऐसे सिद्ध पुरुष जनमे, और धन्य हैं वे महात्मा-गण जिन्होंने सहज भाषा में भगवान् की प्राप्ति का सुगम और सुलभ मार्ग कर जन-साधारण का कल्पनातीत उपकार किया! अंत में शंकराचार्य के 'पाण्डुरंगाष्टक' से

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n196/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विट्ठलनाथ की स्तुति में एक पद्य तथा 'ज्ञानेश्वरी से' कुछ ओवियाँ उद्धृत कर यह प्रसङ्ग समाप्त किया जाता है—

महायोग पीठे तटे भीमरथ्यां
वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः ।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं
परब्रह्म लिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥

जय जय देव निर्मल । निजजनाखिलमंगल ।
जन्म जरा जलद जाल । प्रभंजन ॥ १ ॥

जय जय देव प्रबल । विदलितामङ्गलकुल ।
निगमागम द्रुमफल । फलप्रद ॥ २ ॥

जय जय देव निश्चल । चलित चित्तपान तुन्दिल ।
जगदुन्मीलनाविरल । केलिप्रिय ॥ ३ ॥

जय जय देव निष्फल । स्फुरवमन्दानन्द बहल ।
नित्यनिरस्ताखिलमल । मूलभूत ॥ ४ ॥

—ज्ञानेश्वरी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n197/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६) हिंदूधर्म—उसका शरीर और आत्मा

१. हिंदूधर्म स्वतन्त्रता-पोषक धर्म है

प्रत्येक सत्यान्वेषीको यह स्पष्टतया विदित है कि हिंदू-धर्म का स्वरूप ईश्वर, आत्मा, सृष्टि एवं मानव-जीवन के ध्येय के सम्बन्ध में किसी वादविशेष को स्वीकार करना, किन्हीं विशिष्ट क्रियाओं का अनुष्ठान तथा बाह्य आचारों का पालन एवं उपासना की विशिष्ट पद्धतियों का अनुसरण अथवा किसी खास पैगंबर अथवा ईश्वरीय दूत को बिना ननु-नच किये प्रमाण मानना नहीं है। इन सब प्रश्नों के विषय में हिंदूधर्म मानवीय बुद्धि एवं हृदय दोनों को पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। ईश्वर को जगत् का कर्ता एवं नियन्ता न मानना, आत्मा को नित्य एवं चेतन तत्त्व स्वीकार न करना तथा मुक्ति को आत्मा की शाश्वत आनन्दमयी स्थिति अङ्गीकार न करना भी हिंदूधर्म की दृष्टि में कोई अक्षम्य अपराध नहीं माना गया है। हिंदूधर्म ने ऐसे लोगों को भी अवतार अथवा ऋषि मानने में आगा-पीछा नहीं किया, जिन्होंने ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया; किन्तु जो वैसे महान् आध्यात्मिक पुरुष थे। हिंदूधर्म का कभी यह तकाजा नहीं रहा कि मानवीय विचार, भावना तथा इच्छा शक्ति पर अनुचित रोक-टोक लगायी जाय।

इसके विपरीत हिंदूधर्म ने सदा इस बात को डंके की चोट कहा है कि मनुष्य स्वरूपतः सभी बन्धनों से मुक्त है और अपने स्वतन्त्र पुरुषार्थ के बल से पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करना ही उसके जीवन का सर्वोच्च आदर्श है। हिंदूधर्म की यह मान्यता है कि यद्यपि स्वतन्त्रता

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n198/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, फिर भी इस जगत् में बाह्य एवं आन्तरिक—शारीरिक एवं मानसिक—परिस्थितियाँ दुर्भाग्यवश उसकी इस स्वतन्त्रता को कम कर देती हैं; अतः प्रत्येक मनुष्य का ध्येय यह होना चाहिये कि जितनी स्वतन्त्रता उसे प्राप्त है, उसका वह पूर्ण स्वतन्त्रता—सब प्रकार के बन्धनों एवं उपाधियों से मुक्ति—पाने के लिये उपयोग करे। इसीलिये हिंदूधर्म मानवीय आत्मा के निर्बाध विकास पर किसी प्रकार का निग्रहपूर्ण नियन्त्रण नहीं लगा सकता; बल्कि वह प्रत्येक पुरुष, स्त्री एवं बच्चे की बुद्धि को अन्धकार से मुक्त करने की चेष्टा करता है, जिससे वह आदर्श स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये अपनी अधिकृत स्वतन्त्रता का समुचित उपयोग कर सके। इसलिये हिंदूधर्म किसी को किन्हीं विशिष्ट मतवादों, उपासना के प्रकारों अथवा बाह्य आचारों को ग्रहण करने के लिये बाध्य नहीं करता। इसके फलस्वरूप हिंदूधर्म की सीमा के अंदर हमें असंख्य सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं, जिनके परात्पर-तत्त्व एवं परमोपास्य के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं तथा जिनमें साधना के भिन्न-भिन्न प्रकार तथा भिन्न-भिन्न क्रिया-कलाप, आचार एवं रीति-रिवाज पाये जाते हैं। परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि हिंदूधर्म इतने सम्प्रदायों का एक निर्जीव समुदायमात्र है, उसमें एकता अथवा स्वतन्त्र जीवन है ही नहीं? नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है। हिंदूधर्म का एक शरीर और एक ही आत्मा है। वह एक अमर प्राणी है, जिसके शरीर में ये सब भेद संघटित एवं समन्वित रहते हैं और जिसकी आत्मा उन सबको अनुप्राणित एवं आलोकित करती रहती है। अवयव अवयवी से सम्बद्ध रह कर विकसित एवं नवीन होते रहते हैं। अवयवी उन्हें सम्बद्ध रखता है और वे उसका महत्त्व बढ़ाते रहते हैं।

२. हिंदूधर्म का शरीर

हिंदूधर्म के शरीर की ओर दृष्टि डालने पर हमें कुछ ऐसे विशेष

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n199/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, जो हिंदुओं के सभी सम्प्रदायों में समान रूप से पाये जाते हैं और जो उन्हें एक सूत्र में बाँधे रखते हैं। हिंदूधर्म की आत्मा ने इन बाहरी सामान्य लक्षणों में तथा उनके भीतर से अपने को प्रकट कर रखा है।

(क) भारत की राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति आदर भाव

पहली मुख्य विशेषता है—हिंदुओं के सभी सम्प्रदायों का भारत की सदा-विकासोन्मुख राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति आदर का भाव। सभी हिंदुओं का वेदों में, जिन पर उनका समान अधिकार है, अमर विश्वास है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने बुद्धि, नीति, कला एवं अध्यात्म के क्षेत्र में जो सबसे बड़ी करामातें कर दिखायी हैं, वेद उनके वाङ्मय प्रतीक हैं। उनका जीवन सादा, हृदय पवित्र तथा शरीर और मन निष्पाप थे तथा 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' एवं पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये उन्होंने सच्ची खोज की थी। इन्हीं सब कारणों से वे मनुष्य की बौद्धिक चेतना के समक्ष विश्वात्मा भगवान् को प्रकट करने के लिये उपयुक्त माध्यम बने हुए थे। वेदों में एक ही दिव्य मानव, एक मसीहे, एक अवतार या एक पैगंबर के ही उपदेश नहीं हैं। उनका दर्शन प्राचीन भारत की अनेक प्रबुद्ध आत्माओं को हुआ था। भारत के सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्कों ने उनकी परस्पर तुलना करके उनकी एकवाक्यता तथा उनके अनुभव की परीक्षा की और उन्हें हिंदू-समाज, हिंदूधर्म एवं हिंदू-संस्कृति की सुदृढ़ भित्ति बनाया। उन्हें प्रमाण मानने का अर्थ है—भारतीय आत्मा के विकास की आदिम एवं पवित्रतम भूमिकाओं में भारत-माता के अंदर जो कुछ उत्तम से उत्तम बातें थीं, उन्हें निःसङ्कोच स्वीकार करना।

परन्तु भारतीय प्रतिभा की इन प्राचीनतम करामातों के प्रति स्वाभाविक आदरभाव ही हिंदुओं की एकता का एकमात्र कारण नहीं

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n200/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ, तन्त्र, पुराण एवं दर्शनों के प्रति, जो देश के परवर्ती प्रबुद्धतम मस्तिष्कों की कृतियाँ हैं, हिंदुओं के सभी सम्प्रदायों का महान् आदर है। भारतीय जीवन और संस्कृति के सभी विभागों में विचारों एवं आदर्शों को लेकर जो भी उन्नति हुई है—धार्मिक कला और साहित्य, विज्ञान और दर्शन, धर्मशास्त्र एवं कर्म-काण्ड तथा पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में भारतीय आत्मा का जो क्रमिक विकास हुआ है, ये सब ग्रन्थ उसी के प्रतीक हैं। हिंदूजाति अतीत के गौरव को तथा अपने प्रति उसकी देन को कभी अस्वीकार नहीं करती। दूसरी ओर उसने प्राचीन शास्त्रों के वाचिक अर्थ के प्रति अथवा प्राचीन आचारों के बाह्यरूप के प्रति अनुचित पक्षपात कभी नहीं दिखलाया, किन्तु अपने को परिवर्तित स्थिति के अनुकूल बना कर सदा ही सनातन धर्म का सचाई के साथ अनुगमन करने की चेष्टा की है। हिंदू लोग अतीत के गौरव को सिर झुकाते हुए भी वर्तमान काल में विचार एवं क्रिया के स्वातन्त्र्य की कदापि उपेक्षा नहीं करते तथा अपनी धारणा के अनुसार समुज्ज्वल भविष्य की ओर आगे बढ़ने से भी नहीं चूकते। हिंदुओं की शास्त्रों में श्रद्धा का स्वरूप क्या है ? अत्यन्त प्राचीनकाल से लेकर भारतीय इतिहास के अत्यन्त अर्वाचीन सृजनोन्मुख काल तक भारत ने ऊँचे से ऊँचे तथा उत्तम से उत्तम जो कुछ भी काम कर दिखाया है, उसके प्रति ठोस आदर का भाव एवं उसे बिना ननु-नच किये प्रमाण मानना।

(ख) राष्ट्र के संत-महात्माओं एवं वीरों के प्रति श्रद्धा

महान् हिंदू-समाज के सभी वर्गों में एकता के उपर्युक्त बलवान् सूत्र के अतिरिक्त उनमें भारत के राष्ट्रीय संत-महात्माओं एवं वीरों के प्रति—उन यशस्वी ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने भारतीय

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n201/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति की किसी भी भूमिका में उसके धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा बौद्धिक जीवन पर किसी भी प्रकार का स्थायी प्रभाव डाला है—ठोस व्यक्तिगत आदर भाव भी है। वसिष्ठ और विश्वामित्र, मनु और याज्ञवल्क्य, नारद और कपिल, पराशर और व्यास आदि प्राचीन भारतीय महर्षियों ने; बुद्ध और शङ्कर, पारसनाथ और गोरखनाथ, चैतन्य और नानक, रामानुज और रामानन्द, कबीर और तुलसीदास प्रभृति महान् संतों एवं युगप्रवर्तकों ने; भगवान् कृष्ण, जनक और हरिश्चन्द्र, भीष्म और अर्जुन, ध्रुव और प्रह्लाद आदि विख्यात राष्ट्रीय वीरों एवं राजर्षियों ने तथा भगवती सीता और सावित्री, जगजननी सती और उमा, मैत्रेयी और गार्गी प्रभृति भारत की आदर्श महिलाओं ने अपने को हिंदू कहलाने वाले सभी पुरुषों एवं स्त्रियों के हृदय पर अटल नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। सिद्धान्तों एवं जीवनचर्या में बहुविधि अन्तर होने पर भी सामान्यतः हिंदूमात्र प्रेरणा के इन शाश्वत सर्वसुलभ स्रोतों से प्रेरणाएँ ग्रहण करते हैं और अपने को इन्हीं के कुटुम्बी रूप में अनुभव करते हैं। इस प्रकार के सभी आदर्श पुरुषों एवं देवियों की स्मृति—जो दिन प्रतिदिन, मास प्रतिमास और वर्ष प्रतिवर्ष विभिन्न प्रकार के उत्सवों एवं धार्मिक अनुष्ठानों तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले पौराणिक आख्यानों एवं ऐतिहासिक घटनाओं की कथाओं, यात्राओं, अभिनयों एवं अन्य उल्लासपूर्ण खेल तमाशों के द्वारा जाग्रत ही नहीं अपितु अधिक जाज्वल्यमान एवं ताजी रखी जाती है,—सभी युगों में तथा देश के सभी भागों में, हिंदू-समाज एवं धर्म के सभी अवयवों में सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक एकता बनाये रखती है तथा उसे और भी सुदृढ बनाती है। इतना ही नहीं, वह उनमें इस भाव को भी जाग्रत करती है कि सृष्टि के आरम्भ से ही उसमें अमर जीवन की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित हो रही है। हिंदू जाति उन यशस्वी व्यक्तियों को,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n202/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने सनातन तथ्यों को अपने जीवन में उतारा है, उन तथ्यों के सम्बन्ध में कोरे वादों एवं कल्पनाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व देती है।

(ग) राष्ट्रीय महत्त्व के स्थानों का आदर

हिंदुओं के सभी सम्प्रदायों में एकता बनाये रखनेवाला तीसरा सूत्र भारत के राष्ट्रीय महत्त्व के स्थानों के प्रति पवित्रता की बुद्धि है। ये स्थान, जो इस महान् देश के सभी भागों में—नगरों एवं वनों में, नदियों तथा सरोवरों में, पर्वतों एवं उपत्यकाओं में, बिखरे पड़े हैं, तीर्थ माने जाते हैं। प्रत्येक हिंदू, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा जाति का क्यों न हो, अपने एवं अन्तःकरण की शुद्धि के लिये अपनी स्थिति के अनुसार इनमें से अधिक-से-अधिक तीर्थों की यात्रा करने में हिंदू लोग शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध अथवा जैन तीर्थों में कोई भेदबुद्धि नहीं करते। वे सभी भारत माता के प्रत्येक बच्चे की दृष्टि में पवित्र हैं।

ये तीर्थ क्या हैं? अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारकापुरी, उज्जयिनी आदि किसी-न-किसी समय भारत के कुछ महान् प्रतापशाली राज्यों की प्रसिद्ध राजधानियाँ थीं और राजनीतिक महत्त्व को खो देने के बाद भी इतनी शताब्दियों से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के महान् केन्द्रों के रूप में अपने गौरव को बनाये हुए हैं और भारतीय जीवन की विभिन्न दिशाओं पर स्थायी ढंग का जोरदार प्रभाव डाले हुए हैं। दूसरे प्रकार के तीर्थ भारत की मुख्य तीन नदियाँ हैं, जो भिन्न भिन्न प्रान्तों में बँटी हुई हैं एवं उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित किये हुए हैं तथा जो सभी वर्गों के लोगों के लिये सुख-समृद्धि, पवित्रता एवं बल का कारण बनी हुई हैं। गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी—इन सात पवित्र नदियों का प्रत्येक हिंदू को प्रतिदिन अपने स्नान अथवा पीने के जल में आवाहन करना सिखाया जाता है। देश के किसी भी नगण्य कोने में स्थित किसी भी छोटे से गाँव में वह क्यों न रहता हो,

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n203/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे यह बात याद रखनी होती है कि मैं महान् और पवित्र भारत देश का निवासी हूँ और जिस जल में स्नान करता हूँ या जिसे मैं पीता हूँ अथवा भगवान् को चढ़ाता हूँ या जिससे मैं अपने पितरों का तर्पण करता हूँ, वह मातृभूमि की सम्पूर्ण नदियों का सम्मिलित जल है। इसी प्रकार हिमालय, विन्ध्याचल, नीलगिरि इत्यादि महान् पर्वत, जो उसे अपनी महान् जन्मभूमि के सौन्दर्य, भव्यता एवं गौरव का स्मरण दिलाते हैं; वृन्दावन, दण्डकारण्य, नैमिषारण्य आदि महान् वन, जिनमें प्राचीन तपोवन एवं वनस्थित विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय वीरों के साहसपूर्ण कार्यों एवं राष्ट्रीय देव-देवियों की आनन्ददायिनी क्रीड़ाओं की स्मृतियाँ निहित हैं; द्वैपायन, पुष्कर, मानस, पम्पा, नारायण आदि महान् सरोवर, जो अनेकों राष्ट्रीय संतों एवं धर्माचार्यों की स्मृति से पूत हैं—प्रत्येक हिंदू इन सबका तीर्थों के रूप में स्मरण करता है, जहाँ का सारा वातावरण आध्यात्मिकता से सराबोर रहता है।

जो-जो स्थान विशेष भारत के पूज्य संत-महात्माओं की तपस्या अथवा आध्यात्मिक साधना से पवित्र हो चुके हैं अथवा महान् राष्ट्रीय वीरों अथवा ऋषिकल्प विद्वानों की उदार कृतियों से गौरव को प्राप्त कर चुके हैं अथवा जो राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक अथवा धार्मिक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाली महती घटनाओं के कारण चिरस्मरणीय हो गये हैं अथवा जिन्होंने अपने प्रभावोत्पादक प्राकृतिक सौन्दर्य एवं भव्यता से लोगों का ध्यान आकर्षित किया है, वे सामान्यतः सभी हिंदुओं के लिये तीर्थ रूप हैं, चाहे उनके धार्मिक सिद्धान्त अथवा सामाजिक रीति-रिवाज अथवा आचरण सम्बन्धी नियम कैसे भी क्यों न हों। इस प्रकार अपने सारे प्राकृतिक एवं अर्जित गौरव तथा अपने अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को लिये हुए समग्र भारतवर्ष का प्रत्येक हिंदू की दृष्टि में एक आध्यात्मिक अर्थ है। प्रत्येक हिंदू बच्चा करीब-करीब अनजान में ही भारतवर्ष को आदर पूर्वक

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n204/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सुन्दर एवं महान् सजीव व्यक्ति—अपनी सन्तानों के प्रति वात्सल्य एवं करुणा से पूर्ण तथा उनकी सब प्रकार के अनिष्टों से रक्षा करने की शक्ति एवं साधनों से सम्पन्न भगवती जगदम्बा के रूप में स्मरण करना सीख जाता है। भारत के समस्त सम्प्रदायों एवं जातियों को हिंदूधर्म की सर्वसंग्राहक भुजाओं के भीतर एक सूत्र में पिरोने तथा उनके जीवन एवं संस्कृति को एक विशेष रूप देने में यह भाव कितना प्रबल सहायक है—इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

३. हिंदूधर्म और भारतवर्ष

इस प्रकार भारतमाता के प्रति इस सजीव बुद्धि को हिंदूधर्म का शाश्वत एवं नित्य नूतन शरीर कहा जा सकता है। हिंदूधर्म का व्यापक रूप जो सभी सम्प्रदायों के हिंदुओं की बुद्धि में उतरा हुआ है और जिसका उनके धार्मिक सिद्धान्तों, सामाजिक प्रथाओं एवं दार्शनिक मतवादों से कोई सम्बन्ध नहीं है, उसका स्वरूप है—भारत की नैतिक, बौद्धिक, ललित कला सम्बन्धी, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सम्पत्ति में जो कुछ भी अच्छा और महान् है, उदात्त और सुन्दर है तथा महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है, उसे पवित्र मानना एवं आध्यात्मिक रूप देना। जो कोई भी भारतमाता को अपने जीवन की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्वीकार करता है, वह हिंदू कहलाने का न्यायतः अधिकारी है। हिंदूधर्म अपने कलेवर के अंदर इस देश की तथा बाहर की सभी सभ्य एवं जंगली जातियों तथा सभी धार्मिक सम्प्रदायों एवं सामाजिक संघटनों को उनके धार्मिक सिद्धान्तों, भावनाओं एवं आचारों की तथा उनके सामाजिक विचारों, रीतियों और रिवाजों की विशेषताओं को मिटाये बिना ही हजम कर जाने की शक्ति रखता है और उसने अतीत काल में ऐसा किया भी है। शर्त यही है कि वे भारत के गौरव पर गर्व करना सीख जायँ, उनकी दृष्टि वस्तुतः भारतीय

१३

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n205/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय और वे भारत की आत्मा से अनुप्राणित हों, जो नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक साधना के विभिन्न रूपों द्वारा अति प्राचीन काल से अपने को चरितार्थ कर रही है।

हिंदुओं का अस्तित्व ही भारत की एकता के भाव—भारत एक सजीव आध्यात्मिक सत्ता है, इस भाव के साथ सम्बद्ध है। हिंदू एक दूसरे के साथ एक ही माता के बच्चों के रूप में सम्बद्ध हैं, जो उनके लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को उदात्त एवं पूर्ण बनाने के लिये उन्हें भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक—सभी प्रकार का भोजन देती है। भारत माता की पूजा एवं सम्मान तो अपने-अपने ढंग से हिंदूधर्म के अन्तर्गत सारे धार्मिक सम्प्रदाय करते हैं और अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिये वे उसी से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक हिंदू का आध्यात्मिक ध्येय है—अपनी व्यष्टि आत्मा का भारत की आत्मा के साथ ऐक्यबोध करना; क्योंकि उसकी दृष्टि में भारत की आत्मा विश्वात्मा की अत्यन्त तेजस्वी अभिव्यक्ति है। हिंदुओं की दृष्टि में भारत निरा भौतिक देश—भौतिक जगत् का एक क्षुद्रांश ही नहीं है, अपितु विश्वात्मा का एक विशिष्ट शरीर है और इस रूप में वह आध्यात्मिकता का सनातन स्रोत है। इसी देश में भगवान् प्रत्येक युग-पर्यंत में भ्रान्त एवं मूढ़ जगत् को दिव्य आलोक देने तथा उसे शान्ति, सामञ्जस्य, एकता एवं आनन्द का सच्चा मार्ग दिखलाने के लिये विशेषरूप से प्रकट होते हैं।

४. हिन्दू धर्म की आत्मा

अब हिंदूधर्म की आत्मा के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहूँगा। यह स्पष्ट है कि हिंदूधर्म की आत्मा का मनुष्य की अपूर्ण भाषा में पूर्णतया निर्देश नहीं किया जा सकता। बौद्धिक ज्ञान, सामाजिक प्रथा, धार्मिक सिद्धान्त आदि में महान् अन्तर रहते हुए भी हम एक ही आत्मा को

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n206/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी सम्प्रदायों के हिंदुओं की दृष्टि तथा व्यापार को अनुप्राणित एवं आलोकित करते हुए अनुभव कर सकते हैं; परन्तु इन सभी भेदों में तथा उनके भीतर से अपने को अभिव्यक्त करनेवाली इस अमर आत्मा की तर्कशास्त्रानुमोदित परिभाषा नहीं की जा सकती। अन्य साम्प्रदायिक मजहबों की भाँति हिंदूधर्म भी यदि विशिष्ट पैगम्बरों के नपे तुले उपदेशों से आविर्भूत होता, यदि विशिष्ट आचार्य परम्परा के द्वारा उपदिष्ट निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर ही इसकी स्थापना हुई होती तो इसकी आत्मा का उन उपदेशों अथवा सिद्धान्तों की भाषा में निर्देश किया जा सकता था। परन्तु हिंदूधर्म में ऐसी कोई मान्यताएँ नहीं हैं, जिन्हें उसका प्राण कहा जा सके। उसकी आत्मा किन्हीं ईश्वर के भेजे हुए दिव्य मानव के द्वारा सदा के लिये निर्धारित किन्हीं सिद्धान्तों, किन्हीं नियमों एवं कानूनों, किन्हीं विचारों, भावनाओं तथा क्रिया-कलापों के अंदर बद्ध नहीं है। हिन्दूधर्म की आत्मा स्वयं विकसित हो रही है। युग-युग में मनुष्यों की बाहरी परिस्थिति में तथा उनकी शारीरिक एवं मानसिक योग्यता में जो कुछ परिवर्तन होता है, उसके अनुकूल हिन्दूधर्म की आत्मा अपनी एकता तथा विशेषता को बिना खोये हुए विचारों, भावनाओं एवं क्रियाकलापों की समयोचित धाराओं के रूप में अपने को अभिव्यक्त करती आ रही है। यदि हम उसका किन्हीं ऐसे दार्शनिक अथवा धार्मिक सम्प्रदायों, नैतिक नियमों अथवा सामाजिक प्रथाओं की भाषा में निर्देश करना चाहें, जो उससे निकले हैं और जो उसके द्वारा अनुप्राणित एवं आलोकित हैं, तो हमारी वह परिभाषा निश्चय ही एकदेशीय, अपूर्ण एवं बाह्य होगी। आत्मा की अपरोक्ष अनुभूति हो सकती है, परन्तु उसका किसी माध्यम के द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता। हाँ, उसकी अभिव्यक्ति के सार्वभौम प्रकारों का विमर्श करने से हम उसकी मानसिक कल्पना अवश्य कर सकते हैं।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n207/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) जीवन एवं जगत् के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि

हिंदूधर्म के आत्मा की जो सबसे प्रधान एवं विशिष्ट अभिव्यक्ति मालूम होती है, वह है जीवन एवं जगत् के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि। हिंदुओं का जीवन मुख्यतया आध्यात्मिक जीवन है। हिंदुओं की दृष्टि में मनुष्य विवेकबुद्धि, नैतिक भावना अथवा आध्यात्मिक भावना से युक्त प्राणी नहीं है; वह तो सूक्ष्मविशिष्ट स्थूलदेहधारी चेतन आत्मा है। आध्यात्मिक स्वरूप ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप माना जाता है; आधिभौतिक स्वरूप, मनोमय स्वरूप, बौद्धिक स्वरूप तथा नैतिक स्वरूप भी उसके अधीन माने जाते हैं। वे उसकी अभिव्यक्ति के क्षेत्र, इस वैचित्र्यमय जगत् में उसकी स्वानुभूति एवं चरितार्थता के उपकरण हैं, उसके अन्तर्निहित परम आदर्श के अनुवर्ती हैं। बन्धन और अपूर्णता, राग और द्वेष, शोक और चिन्ता, जन्म और मृत्यु सूक्ष्मविशिष्ट स्थूलशरीर के पीछे लगे हुए हैं। परन्तु आत्मा, जो इस शरीर का स्वामी है और जो इसके अंदर तथा इसके द्वारा स्वरूप-लाभ करता है, शाश्वत एवं अमर है; वह स्वरूपतः शुद्ध, सुन्दर एवं आनन्दमय तथा सब प्रकार के बन्धनों एवं सीमाओं से परे है। आत्मा इस शरीर को अपना स्वरूप मान बैठा है, इसी से वह दुःख पाता है। इस सूक्ष्मविशिष्ट स्थूलशरीर की माँगों को यदि हम जीवन में प्रधानता देने लग जायँ तो दुःख अवश्यम्भावी है। आत्मा का ध्येय होना चाहिये—इन माँगों को संयत करना तथा उदात्त बनाना, जीवन की सब माँगों को आध्यात्मिक आदर्श के अनुकूल बनाना तथा क्रमशः इस सम्पूर्ण शरीर को चिन्मय बनाना। शरीर, मन एवं इन्द्रियों का उनके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्रों में आत्मा के द्वारा शासन होना चाहिये, ताकि आध्यात्मिक जीवन में अन्तर्हित आदर्श की सिद्धि इसी जगत् में हो सके।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n208/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये हिंदू-संस्कृति के समस्त विभागों का धर्म के द्वारा शासन एवं समन्वय होता है। धर्म का वास्तविक अर्थ है—इस शरीरमें आत्मा के नित्य शुद्ध, सुन्दर, आनन्दमय एवं चेतनस्वरूप का क्रमशः अनुभव करना। कला और साहित्य, विज्ञान और दर्शन, राजनीति और अर्थशास्त्र, पारिवारिक एवं सामाजिक संघटन, कानून और रिवाज, सम्पत्ति तथा शारीरिक सुविधाओं के उत्पादन एवं विभाजन की विधियाँ—हिंदू इन सबको सामान्यतः मानवजाति की आध्यात्मिक साधना की विभिन्न शाखाएँ मानता है और हिंदुओं के जीवन में इन सबका सार्वभौम आध्यात्मिक आदर्श के द्वारा नियन्त्रण होता है। एक सच्चे हिंदू-परिवार में पति-पत्नी का, माता-पिता और सन्तान का तथा भाइयों और बहिनों का परस्पर सम्बन्ध एक आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है और उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से ही एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना सिखाया जाता है। सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में भी समाज एवं राज्य के अङ्गों का परस्पर सम्बन्ध आध्यात्मिक होता है और पूर्णता की प्राप्ति के लिये ही प्रत्येक अङ्ग को अपने सामाजिक एवं राजनीतिक कर्तव्यों का पालन करना होता है। अभिमानशून्य हृदय से समाज एवं राष्ट्र के हित-साधन में योग देने से, समाजरूपी महान् शरीर की सेवा में लौकिक स्वार्थों की बलि देने से ही मनुष्य आध्यात्मिक पूर्णता की योग्यता प्राप्त करता है—ऐसा माना जाता है।

जड़ प्रकृति की अपेक्षा चेतन आत्मा की, भौतिक उन्नति की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति की प्रधानता में हिंदुओं का जो यह सार्वभौम विश्वास है, वही हिंदू-समाज की वर्णाश्रम-व्यवस्था की आधार-शिला है। हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों एवं संन्यासियों के शीर्ष-स्थानीय होने का यही अर्थ है कि सभी वर्गों के हिंदू भौतिक उत्कर्ष की अपेक्षा आध्यात्मिक श्रेष्ठता को स्वेच्छा से ऊँचा मानते हैं। देश की राजनीतिक, नैतिक, सैनिक एवं आर्थिक सत्ताएँ स्वेच्छा से स्वीकार की

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n209/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई अकिञ्चनता तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष की गौरवमयी महिमा के आगे नतमस्तक होकर उसकी सेवा में लग जाती हैं।

हिंदुओं की बुद्धि विभिन्न श्रेणियों के चराचर प्राणियों से युक्त इस सम्पूर्ण विश्व को आध्यात्मिक दृष्टि से देखती है। यह जगत् चिन्मय है, यह भगवान् का विराट् देह है। जगत् की सारी वस्तुएँ और घटनाएँ भगवान् की ही अभिव्यक्तियाँ मानी जाती हैं। भगवान् के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में दार्शनिकों एवं संतों में मतभेद हो सकता है। परन्तु जनसाधारण का हार्दिक विश्वास तो यह है कि जगत् का स्वरूप केवल वही नहीं है जो इन्द्रियों के अनुभव में आता है, किन्तु उसके पीछे एक चिन्मय आधार है, प्रतीयमान जगत् के प्रत्येक पदार्थ का एक आध्यात्मिक अर्थ है और जगत् में काम करनेवाली सम्पूर्ण शक्तियाँ एक आध्यात्मिक उद्देश्य के द्वारा नियन्त्रित हैं और एक चिन्मय इच्छा शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। सभी हिंदू जगत् को अजर-अमर माता के रूप में नमन करते हैं, जो सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करके उनका प्रेम एवं आनन्द के साथ पोषण करती है। यह प्रतीयमान विश्व, जो देखने में असंख्य प्रकार की वस्तुओं एवं घटनाओं से बना हुआ है, हिंदुओं की दृष्टि में एक सजीव व्यक्ति है, जो असंख्य रूपों में अभिव्यक्त एक ही आत्मा, एक ही उद्देश्य, एक ही नियम से अनुप्राणित एवं ओतप्रोत है। हिन्दू अपने हृदय में विश्व की महत्ता एवं सौन्दर्य का अनुभव करते हैं तथा उसे माता के रूप में पूजते हैं। विश्व के चिन्मय स्वरूप की पूर्ण अनुभूति ही उनके चिन्मय स्वरूप की पूर्णता है। जीवन एवं जगत् के प्रति यह आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू धर्म के आत्मा की अभिव्यक्ति है।

(ख) जगत् के नैतिक शासन में विश्वास

हिंदूधर्म के आत्मा की दूसरी महान् अभिव्यक्ति हिंदुओं का यह विश्वास है कि जगत् के आभ्यन्तर शासन में नैतिक विधान की

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n210/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानता है। हिंदूमात्र इस नैसर्गिक विश्वास से अनुप्राणित हैं कि एक न्यायपूर्ण विधान जगत् के जीवों में सुख-दुःख, सम्पत्ति और दरिद्रता, बल और निर्बलता, विवेक और मूढ़ता, उच्चाकांक्षाओं और नीच प्रवृत्तियों, उदात्त भावनाओं एवं नीच मनोविकारों तथा अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का विभाजन करता है। जीव-जगत् में भौतिक कार्य-कारणभाव नैतिक कार्य-कारणभाव के सर्वथा अधीन एवं उसी के द्वारा नियन्त्रित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने शुभाशुभ कर्मों का अनिवार्य फल भोगता है। अतः अपने कर्त्तव्य का मार्ग निश्चित करने में हिंदू इसी बात का विचार करते हैं कि वह शुभ है अथवा अशुभ, उसका नैतिक परिणाम शुभ होगा या अशुभ, वह शास्त्रोक्त नैतिक नियमों के अनुकूल है या नहीं; वे केवल अथवा मुख्यतया इस बात का विचार नहीं करते कि भौतिक दृष्टि से तथा भौतिक कार्य-कारणभाव के विचार से उस कर्म से तात्कालिक लाभ होगा या हानि। उनके कर्मों का नियन्त्रण अधिकतर नैतिक विचार से होता है, लौकिक लाभ की दृष्टि से नहीं। नैतिक कार्य-कारण-भाव या कर्म के विधान में विश्वास हिंदू धर्म का एक मुख्य सिद्धान्त है। इस विश्वास का अर्थ यह है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, अकेला वही अपने सुख-दुःख के लिये, अपनी मनोवृत्तियों के लिये तथा अपने जीवन में आनेवाले अनुकूल अवसरों तथा विघ्न-बाधाओं के लिये जिम्मेवार है। यह विश्वास उसे यह सिखलाता है कि किसी दूसरे के प्रति जिसके पास अधिक सम्पत्ति हो तथा जो अधिक आराम भोगता हो, अथवा जिसे अधिक पद-प्रतिष्ठा प्राप्त हो, ईर्ष्या, द्वेष या वैर का भाव मत रखो; क्योंकि यह उसके पिछले कर्मों का फल है। वह उसे अपनी स्थिति को सुधारने के लिये दूसरों के साथ कटुतापूर्ण प्रतिस्पर्द्धा करने से रोकता है; क्योंकि वह जानता है कि जो कुछ अनुकूलताएँ उसे प्राप्त हैं, यदि वह उनका

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n211/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुचित उपयोग करे और अपने चरित्र को उन्नत बनाये तो उसे नैतिक विधान के अनुसार ठीक समय पर अपने शुभ कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। जगत् के नैतिक शासन में विश्वास के साथ-साथ तथा उसी से पूरा-पूरा मेल खाता हुआ हिंदुओं का दूसरा विश्वास पूर्वजन्म के सिद्धान्त में है। मनुष्य का जीवन उसके वर्तमान भौतिक शरीर के जन्म से नहीं प्रारम्भ होता और न उस शरीरकी मृत्युके साथ उसका अन्त होता है। कर्म का विधान ही प्रत्येक जीवनका नियन्त्रण करता है। वर्तमान जीवनमें उसे जो योनि, जैसी योग्यता और जो अनुकूलताएँ प्राप्त हैं, वे सब उसके प्राक्तन कर्मों के नैतिक फल हैं। उसके जो कर्म वर्तमान जीवन में फलीभूत नहीं होते, वे भावी जन्मों में फलीभूत होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास एवं आत्मा की पूर्णता के लिये बार-बार अवसर दिये जाते हैं। यह विश्वास प्रत्येक हिंदू को पूर्णता एवं आनन्द की आशा से भर देता है और उसे वर्तमान जीवन की विपत्तियों को सहन करने की शक्ति प्रदान करता है।

(ग) मुक्ति का सिद्धान्त

हिंदूधर्म की आत्मा एक दूसरे उच्च सिद्धान्त के रूप में अपने को अभिव्यक्त करती है। वह यह है कि मानवीय आत्मा की चरम आकांक्षा इतनी ऊँची है कि वह इस परिवर्तनशील जगत् के सीमित भोगों से पूर्ण नहीं हो सकती तथा उसकी स्थायी पूर्ति कर्मबन्धन से, प्रतीयमान जगत् के सुख-दुखों से तथा सब प्रकार की सीमाओं एवं उपाधियों से सर्वथा छूटने में ही है। हिंदुओं के विश्वास के अनुसार सब प्रकार की सीमाओं को लाँघ जाना, जगत् के नैतिक शासन से और उसके फलस्वरूप जन्म-मृत्यु एवं आपेक्षिक सुख-दुःखों के चक्र से भी छूटकर ईश्वरीय पूर्णता—निरतिशय आनन्द की नित्यस्थिति प्राप्त करना मानवीय आत्मा का नैसर्गिक अधिकार है। अपनी संसारयात्रा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n212/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अन्त करने के लिये तथा अपने सांसारिक जीवन के परम उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये यह आवश्यक है कि मानवीय आत्मा अपने को अज्ञान और अहङ्कार से, इच्छाओं एवं वासनाओं से, सांसारिक प्रतिष्ठा एवं समृद्धि की आसक्ति से, भौतिक दृष्टि एवं दूसरों के साथ प्रतिस्पर्द्धा भाव से मुक्त करे तथा निरतिशय ज्ञान, निःस्वार्थ प्रेम, अविचल शांति, कल्मषहीन पवित्रता एवं सौम्यता तथा समस्त भूतों के साथ अभेदबुद्धि सम्पादन करे और इस प्रकार भगवान् के साथ अभेद स्थापित करे। प्रत्येक हिंदू की सर्वोच्च आकांक्षा यही होती है।

(घ) भगवान् का सर्वग्राही स्वरूप

अन्ततोगत्वा मैं हिंदू धर्म का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप बतला देना चाहता हूँ, जिसके कारण धर्मोन्माद या धर्मान्धता हिंदुओं की बुद्धि में गहरी जड़ नहीं जमा सकती। ईश्वर एवं मुक्ति के सम्बन्ध में हिंदुओं की ऐसी मान्यता है कि जिसमें सभी मतों का समावेश हो जाता है। हिंदू धर्म अधिकारपूर्वक यह कभी नहीं कहता कि ईश्वर का स्वरूप बस, यही है—इससे भिन्न नहीं; वह इस बात की घोषणा नहीं कहता कि अमुक संत अथवा पैगंबर की अन्तर्दृष्टि अथवा प्रज्ञा ने परात्पर वस्तु के स्वरूप का पूर्ण रूप से आकलन किया है। वह यह भी नहीं करता कि परमोपास्यरूप से साकार भगवान् की सत्ता में विश्वास करना मानवीय आत्मा की आध्यात्मिक पूर्णता के लिये अनिवार्य है।

अवश्य ही ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में तीन मुख्य सिद्धान्त हैं, जो हिंदू संस्कृति के प्रभाव में जन्मे एवं पले हुए प्रत्येक पुरुष एवं स्त्री के हृदय में—चाहे वह विद्वान् हो या अनपढ़—काम करते हैं। पहली मान्यता है निर्विशेष ब्रह्मपरक। इस रूप में वे ही सब कुछ—एकमात्र तत्त्व माने जाते हैं। एक परमात्मा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n213/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अतिरिक्त दूसरा परमात्मा नहीं है। केवल इतनी ही बात नहीं, अपितु एक परमात्मा के अतिरिक्त और किसी की सत्ता ही नहीं है। सारी सोपाधिक सत्ताएँ उस एक निरुपाधिक स्वतःसिद्ध सत्ता के आभास मात्र हैं। भीतर-बाहर—सर्वत्र जो कुछ प्रतीत होता है, उसमें एकमात्र उन्हींको देखना—यही सच्चा ज्ञान है। वे निर्गुण हैं, क्योंकि गुणों के साथ सम्बन्धों का होना अनिवार्य है और जहाँ सम्बन्ध हैं, वहाँ उनसे सम्बद्ध अन्य वस्तुएँ भी होनी ही चाहिये। जो एक एवं अद्वितीय है, वह निर्गुण, नित्य, अपरिच्छिन्न एवं निर्विशेष तो होगा ही। सभी प्रातिभासिक सत्ताएँ स्वरूपतः उनसे अभिन्न हैं।

दूसरी मान्यता है परमेश्वर के विषय में। इस रूप में वे समस्त जीवों एवं इन्द्रियगोचर पदार्थों के तथा अनन्त भेदों से युक्त अखिल विश्व के अधीश्वर हैं। इस सापेक्ष रूप में वे जगत् की सम्पूर्ण परिच्छिन्न एवं अनित्य वस्तुओं के उत्पादक, नियन्ता एवं संहारक हैं। वे अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं सौम्यता तथा अनन्त प्रकार के उत्तम गुणों से सदा संपन्न हैं, जिनके कारण सभी सत्पुरुष गाढ़ भक्ति एवं श्रद्धा से उनकी बन्दना करते हैं। परन्तु उनका कोई निश्चित नाम अथवा रूप नहीं है। वे समस्त नाम-रूपात्मक हैं। चूँकि नाम और रूप की सहायता के बिना मनुष्य के लिये चिन्तन सम्भव नहीं है, अतः उनका चिन्तन एवं उपासना करने के लिये मनुष्य किसी भी नाम अथवा रूप का उपयोग कर सकता है। किसी भी नाम या रूप को, जो मनुष्य के चित्त में जगदीश्वर भगवान् के सर्वैश्वर्यपूर्ण स्वरूप की स्फूर्ति कर सकता हो, हिंदू भगवन्नाम अथवा भगवद् रूप मान लेता है। प्रत्येक हिंदू का विश्वास है कि ऐसे सभी रूप अतीन्द्रिय भगवान् के इन्द्रिय गोचररूप हैं। भगवान् के विषय में कौन सी मान्यता कहाँ तक पूर्ण है, यह स्वाभाविक ही इस बात पर निर्भर

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n214/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है कि उपासक का बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास कहाँ तक हुआ है ।

तीसरे, सभी हिंदुओं का यह नैसर्गिक विश्वास है कि एक ही परमेश्वर इस जगत् में अनेक देवताओं के रूप में अपने को अभिव्यक्त किये रहते हैं । इनमें से प्रत्येक देवता के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि साक्षात् परमेश्वर ही एक विशिष्ट शरीर धारण करके उस रूप में प्रकट हैं और उसी शरीर में उनके ऐश्वर्य, ज्ञान, सौम्यता, श्री सौन्दर्य एवं तेज की विशिष्ट कलाएँ प्रकट रहती हैं । इन देवताओं के विभिन्न नाम और विभिन्न रूप हो सकते हैं और उनके द्वारा विभिन्न शक्तियों एवं गुणों का प्रकाश हो सकता है । परन्तु स्वरूपतः वे एक दूसरे से अभिन्न हैं; क्योंकि उन सब में एक ही परमात्मा का निवास है तथा एक ही परमात्मा उनमें तथा उनके द्वारा भिन्न-भिन्न लीलाएँ करते हैं । हिंदुओं की दृष्टि में भगवान् के ये सभी रूप विज्ञानमय एवं चिन्मय जगत् में परिच्छिन्न जीव एवं इन्द्रियगोचर पदार्थ सत्य हैं । अतः कोई व्यक्ति अथवा समुदाय अथवा जाति चाहे किन्हीं भी देवताओं की उपासना करे, अथवा जगदीश्वर की किसी भी नाम रूप से आराधना की जाय, हिंदू इस प्रकार की उपासना अथवा इस प्रकार के किसी उपासक के प्रति द्वेष का भाव नहीं रख सकते । इसलिये धर्मोन्माद, जो बहुधा नीचातिनीच पाशविक विकारों की अपेक्षा अधिक गिरानेवाला एवं भयावह होता है, हिंदुओं के चित्त में कभी जड़ नहीं पकड़ सकता ।

इस प्रकार हिंदू धर्म की आत्मा अपने-आपको सार्वभौम धार्मिक दृष्टि के रूप में तथा ईश्वर सम्बन्धी सभी विवेकपूर्ण मान्यताओं तथा सब प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं के समादर के रूप में अभिव्यक्त करती है । अतः हिंदू धर्म ही विश्व धर्म का सच्चा नमूना है ।

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n215/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन खण्ड

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता ॥

—न्यायभाष्य ।

—❀❀—

[योग शास्त्र]

(१) ऐतरेय आरण्यक में प्राणविद्या

उपक्रम

भारतीय दर्शन में प्राणविद्या का विशेष महत्त्व है । इस विद्या का जितना चिन्तन तथा अध्ययन हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने किया था, उतना शायद ही किसी अन्य देश के विद्वानों ने किया होगा । सच तो यह है कि प्राणोपासना की विद्या हमारी अपनी सम्पत्ति है । प्राण के वास्तविक महत्त्व को समझना, इस शरीर तथा बाह्य जगत् में उसके सच्चे कार्य तथा व्यापक प्रभाव को परखना, तथा किसी देवता का आरोप कर उसकी उपासना करना—ये सब सिद्धान्त इस भारत-भूमि पर ही हमारे पूर्वजों की सात्त्विक बुद्धि तथा उर्वर मस्तिष्क के कारण ही प्राचीन काल में उत्पन्न हुए तथा अब भी हममें किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । यह विद्या कब से चली ? यह कहना बिलकुल

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n216/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्भव है, परन्तु जब हमारे साहित्य तथा धर्म का प्रथम प्रभात हुआ, तभी से इस विद्या का उदय हुआ होगा, यह हम बिना रोक-टोक कह सकते हैं, क्योंकि हमारी वैदिक संहिताओं में, विशेषतः ऋक् तथा अथर्ववेद की संहिताओं में, इस विद्या का समुल्लेख सबसे पहले किया गया मिलता है। विद्वानों को यह बात अपरिचित नहीं कि उपनिषदों में प्राणविद्या भरी पड़ी है, परन्तु उपनिषदों में नहीं; प्रत्युत आरण्यक तथा संहिता में इस विद्या का यथेष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। बहुत से विद्वानों को यह सिद्धान्त नवीन-सा प्रतीत होगा, परन्तु यह बात है बिलकुल ठीक। इस महत्त्वपूर्ण प्राणविद्या के प्रथम निर्देश तथा संकेत उपनिषदों से पूर्व वैदिक संहिताओं तथा आरण्यकों में भी मिलते हैं, इसका निश्चय इन कतिपय पृष्ठों के पढ़ने वाले को अवश्य हो जायगा।

ऋग्वेद में प्राण-स्वरूप-वर्णन

ऐतरेय आरण्यक के प्राणविद्याविषयक अध्यायों में (२।१-३) ऋग्वेद के लगभग आठ या दस मन्त्रों को प्रमाण के लिये उद्धृत किया गया है। प्राण समस्त विश्व को व्याप्त किये हुए हैं, इस विषय में यह मन्त्र 'तदुक्तमृषिणा' कह कर दिया गया है[1]—

अपश्यं गोपामनिपद्यमान-
मा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान
आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः[2] ॥

इस मन्त्र के द्रष्टा दीर्घतमा ऋषि कह रहे हैं कि मैंने प्राण को देखा है—साक्षात्कार किया है। यह प्राण सब इन्द्रियों का गोपा

---

१. ऐतरेय आरण्यक, आनन्दाश्रम संस्करण, पृ० १०६।
२. ऋ० वे० १।१६४।३१; १०।१७७।३

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n217/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रक्षक) है। यह कभी नष्ट नहीं होने वाला है। यह भिन्न-भिन्न मार्गों अर्थात् नाड़ियों के द्वारा आता और जाता है। मुख तथा नासिका के द्वारा क्षण-क्षण में इस शरीर में आता है तथा फिर बाहर चला जाता है। यह प्राण शरीर में—अध्यात्म रूप में—वायु के रूप में है, परन्तु आधिदैवरूप में सूर्य है। अन्य श्रुति कहती है—

आदित्यो वै बाह्यप्राण उदयत्येष
ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णीते।
—(प्रश्नोपनिषद् ३।७)

यह प्राण आदित्य रूप से मुख्य तथा अवान्तर दिशाओं को व्याप्त कर वर्तमान है और सब भुवनों के मध्य में बारम्बार आकर निवास करता है। इस मन्त्र से यही सारांश निकलता है—सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्[1]। इस समस्त विश्व के देव, मनुष्य तथा पशु आदि समग्र प्राणी प्राणवायु के द्वारा व्याप्त हैं।

प्राण अमृतरूप है। जब तक उसका इस देह में वास है, यह शरीर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। इस सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये ऋग्वेद का यह मन्त्र दिया गया है—

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो-
ऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता
न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम्॥
(१।१६४।३८)

यह प्राण इस शरीर में स्वधा — अन्न के द्वारा ही स्थित है। यहाँ मलमूत्रादि के निकालने के लिये अधोभाग में जाया करता है तथा श्वास के लिये मुख आदि ऊर्ध्वभाग में संचरण किया करता है अर्थात्

१. ऐत० आर० पृ० १०८।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n218/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपान तथा प्राण के रूप में शरीर में सर्वदा सञ्चार किया करता है। प्राण अमर्त्य है—अर्थात् मृत्युरहित है, परन्तु यह मरण धर्मवाले शरीर के साथ सदा एक स्थान पर निवास करता है। ये शरीर और प्राण विविध-व्यापार सम्पन्न हैं तथा आपस में विरुद्ध हैं, क्योंकि मृत हो जाने पर शरीर पृथ्वी पर गिर जाता है, परन्तु प्राण ऊपर लोकान्तर में चला जाता है। इन दोनों में से देह को मनुष्य अन्नपान के द्वारा बढ़ा सकता है, परन्तु प्राण को अन्न और पान से कोई भी नहीं बढ़ा सकता। प्राण की महत्ता को ऋग्वेद की संहिता में ही स्वीकार किया गया है। यही हमें प्राणविद्या का वह मूल दृष्टिगोचर होता है जिसका विकास आरण्यकों से होता हुआ उपनिषदों में उपलब्ध होता है।

प्राण की श्रेष्ठता

सब इन्द्रियों में कौन श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर उपनिषदों में एक अतीव हृदयग्राहिणी आख्यायिका के द्वारा दिया गया है। इस विषय क वर्णन छान्दोग्य (५।१), कौषीतकि (२।१४) तथा प्रश्नोपनिषद् (२ १–१३ में आया हुआ है। छान्दोग्य (५।१।६–१५) का वर्णन पूर्ण ही नहीं, प्रत्युत सबसे प्राचीन भी माना जाता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। आरण्यक में भी यह कथानक ज्यों-का-त्यों मिलता है। ऐतरेय आरण्यक के दूसरे आरण्यक के पहले अध्याय के चतुर्थ खण्ड में यह इन्द्रिय-प्राण-संवाद बड़ी ही सुन्दर रीति से दिया गया मिलता है।

चक्षु, श्रवण आदि इन्द्रियों में आपस में यह स्पर्धा चली कि उक्थ कौन है ? सब झगड़ने लगे कि मैं ही उक्थ हूँ, मैं ही उक्थ हूँ। अन्त में उन्होंने कहा कि हम लोग इस शरीर से निकल चलें; जिसके निकल जाने पर यह शरीर नष्ट हो जाय तथा गिर पड़े, वही सबसे श्रेष्ठ माना जाय। पहले वागिन्द्रिय निकल गयी। परन्तु यह शरीर बिना बोले खाते-पीते टिका रहा। अनन्तर चक्षु निकल गया; यह देह बिना देखे

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n219/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाते-पीते टिकी रही। श्रवण निकल गया, यह शरीर बिना सुने खाते-पीते टिका रहा। मन के निकल जाने पर भी यह शरीर मूँदे हुए की तरह खाते-पीते बना रहा; परन्तु प्राण के बाहर निकलते ही यह शरीर गिर पड़ा। इस पर भी प्राण की श्रेष्ठता के विषय में इन्द्रियों को निश्चय नहीं हुआ। अब भी वे आपस में झगड़ा करती ही रहीं। अब यह स्थिर हुआ कि जिसके प्रवेश करने पर यह शरीर उठ खड़ा हो, वही उक्थ है—वही हम में श्रेष्ठ है। वागिन्द्रिय पहले घुसी, परन्तु यह शरीर सोया ही रहा। चक्षु, श्रवण, मन बारी-बरी प्रवेश करते गये, परन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ। यह शरीर पहले की भाँति हो सोया-सा रहा—पृथ्वी पर से उठ नहीं सका। अन्त में प्राण ने प्रवेश किया, उसके प्रवेश करते ही यह शरीर उठ खड़ा हुआ। अतः प्रतिज्ञा के अनुसार प्राण ही उक्थ माना गया। वही सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ माना गया। (ऐत० आर० पृ० १००—१०१)

प्राण की उपासना

प्राण की सब इन्द्रियों में श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के अनन्तर उसकी उपासना के प्रकार का विस्तृत वर्णन इस अरण्यक में किया गया है। हमारे शास्त्रों में इस पिण्डाण्ड तथा ब्रह्माण्ड की एकता पर सर्वत्र जोर दिया गया मिलता है। बाहर जो यह विशाल ब्रह्माण्ड नानाकारों से हमारे सामने उपस्थित है, उसका एक छोटा प्रतिनिधि यह हमारा लघु शरीर है। अतः भीतर तथा बाहर सब जगह भिन्न-भिन्न आकार से एक ही तत्त्व इस मानव-शरीर तथा विश्वरूप में समभाव से व्याप्त दृष्टिगोचर हो रहा है। बाह्य जगत् में जो विश्व का पोषक आदित्य है इस शरीर में सब इन्द्रियों की स्थिति का कारण वही प्राण है। श्रुति में प्राण तथा आदित्य की एकता सर्वत्र प्रतिपादित की गई है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है—'आदित्यो वै बाह्यप्राण उदयत्येष चाक्षुषं प्राणं-

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n220/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुगृह्णीते' (प्रश्न० १।७) आरण्यकों में भी इसी एकता का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया गया है। अतः जिस प्रकार आदित्य हमारी उपासना का विषय है, उसी प्रकार इस शरीर में प्राण भी हमारी उपासना का विषय है। हमारा यह सतत ध्येय होना चाहिये कि हम इस प्राण की उपासना सदा किया करें।

प्राण की महिमा

सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।

(ऐत० आर० २।१।६)

अर्थात् प्राण इस विश्व का धारक है। 'प्राण की ही शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बड़े प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत हैं।' यदि प्राण न होता, तो इस विश्व का जो यह महान् संस्थान हमारे नेत्रों के सामने सतत आश्चर्य पैदा किया करता है, वह कहीं भी नहीं रहता।

प्राण सर्वत्र व्याप्त है। 'सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्' (प्राण से यह सारा जगत् आवृत है।) वह विश्व का धारक है, अतः वह उसका रक्षक है। मन्त्र में इसीलिये प्राण को 'गोपा' कहा गया है। प्राण ही आयु का कारण है। कौषीतकि उपनिषद् में प्राण के यह आयुष्कारक होने की बात स्पष्ट ही कही गयी है—

यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः। (१।२)

जब तक इस शरीर में प्राण रहता है तभी तक आयु है। अतः श्रुति मन्त्रों में प्राण के लिये 'गोपा' शब्द का व्यवहार उचित ही है।

प्राण के द्वारा अन्तरिक्ष तथा वायु की सृष्टि हुई है। प्राण पिता है तथा अन्तरिक्ष और वायु उसकी सन्तान हैं। जिस प्रकार कृतज्ञ पुत्र

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n221/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सत्कर्मों से पिता की सेवा किया करता है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष और वायुरूप पुत्र भी प्राण की सेवा में लगे रहते हैं। अन्तरिक्ष का अनुसरण करके ही प्राणिमात्र का सञ्चरण होता है और अन्तरिक्ष की सहायता से ही आदमी दूर स्थान पर कहे गये शब्दों को सुन लिया करता है। इस प्रकार अन्तरिक्ष प्राण की परिचर्या करता है। वायु भी शोभनगन्ध ले आकर प्राण को तृप्त कर देता है तथा इस प्रकार अपने पिता प्राण की सेवा किया करता है। ऐतरेय आरण्यक में प्राण के स्रष्टा तथा पिता होने की बात इस प्रकार कही गयी है—

प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च। अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति; अन्तरिक्षमनुश्रृण्वन्ति। वायुरस्मै पुण्यं गन्धमावहति। एवमेतौ प्राणं पितरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्च।

प्राण की ध्यानविधि

ध्यान करने के लिये प्राण के भिन्न-भिन्न गुणों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया है। तत्तद्रूप से प्राण का ध्यान करना चाहिये। उन-उन रूपों से उपासना करने से फल भी तदनुरूप ही उपासक को प्राप्त होंगे।

प्राण ही अहोरात्र के रूप में कालात्मक है। दिन प्राणरूप है तथा रात्रि अपानरूप। सवेरे प्राण सब इन्द्रियों को इस शरीर में अच्छी तरह से फैला देता है। इस 'प्रतनन' को देख कर मनुष्य लोग कहते हैं 'प्राताथि' अर्थात् प्रकर्षरूप से प्राण विस्तृत हुआ। इसी कारण दिन के आरम्भकाल को जिस में प्राण का प्रसरण दृष्टि-गोचर होता है 'प्रातः' (सवेरा) कहलाता है। दिन के अन्त होने पर इन्द्रियों में संकोच दीख पड़ता है। उस समय कहते हैं 'समागात्'। इसी कारण उस काल को 'सायं' कहते हैं। विकास के कारण दिन प्राण रूप है और

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n222/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकोच के हेतु रात्रि अपान है। प्राण का ध्यान इस प्रकार अहोरात्र के रूप में करना चाहिये।

प्राण ही देवतात्मक है। वाग् में अग्नि देवता का निवास है; चक्षु सूर्य है; मन चन्द्रमा है; श्रोत्र दिशाएँ हैं। प्राण में इन सब देवताओं की भावना करनी चाहिये। 'हिरण्यदन् वैद' नामक एक ऋषि ने प्राण के इस रूप को जाना था तथा प्राण की देवता-रूप से उपासना की थी। इस उपासना का विपुल फल उन्हें प्राप्त हुआ (ऐत० आर० पृ० १०३।१०४)।

प्राण ही ऋषि रूप है। ऋग्वेद के मन्त्रों के द्रष्टा अनेक ऋषि कहे गये हैं। इन सब ऋषियों की भावना प्राण में करनी चाहिये, क्योंकि प्राण ही इन मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के आकार में विद्यमान है। प्राण ही शयन के समय में वाग्, चक्षु आदि इन्द्रियों के निगरण करने के कारण 'गृत्स' कहलाता है और रति के समय में वीर्य के विसर्गजन्य मद उत्पन्न करने के कारण अपान ही 'मद' हुआ। अतः प्राण और अपान के संयोग को ही गृत्समद कहते हैं, प्राण ही विश्वामित्र है क्योंकि इस प्राण देवता का यह समस्त विश्व भोग्य होने के कारण से मित्र है (विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रः)। प्राण को देख कर वागाद्यभिमानी देवताओं ने कहा, 'यही हम में वाम'—वननीय, भजनीय, सेवनीय है, क्योंकि यह हम में श्रेष्ठ है। इसी हेतु देवों में 'वाम' होने से प्राण ही वामदेव है। प्राण ही अत्रि है, क्योंकि इस प्राण ने ही समस्त विश्व को पाप से बचाया है (सर्वं पाप्मनोऽत्रायत इति अत्रिः)। प्राण ही भरद्वाज है। गतिसम्पन्न होने से मनुष्य के देह को 'वाज' कहते हैं। प्राण इस शरीर में प्रवेश कर उसकी रक्षा सतत किया करता है। अतः वह प्राण 'बिभ्रद्वाज' है। इसी कारण वह भरद्वाज है। देवताओं ने प्राण को देख कर कहा था कि तुम 'वसिष्ठ' हो, क्योंकि इस शरीर में इन्द्रियों के निवास करने का कारण प्राण ही है। प्राण ही सब

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n223/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बढ़ कर वास या निवास का हेतु है। अतः वह वसिष्ठ हुआ। इन निर्वचनों से यही सिद्ध होता कि प्राण ही ऋषि-रूप है। अतः प्राण में इन ऋषियों की भावना करनी चाहिये तथा तद्रूप उपासना करनी चाहिये। अन्य ऋषियों की भी भावना इसी प्रकार बतलायी गयी है।

इस आरण्यक में यहाँ तक प्राण के विषय में कहा गया है कि—

सर्वा ऋचः, सर्वे वेदाः, सर्वे घोषा एकैव व्याहृतः प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात्।

(ऐत० २।२।१०, पृ० १२१)।

जितनी ऋचाएँ हैं, जितने वेद हैं, जितने घोष हैं, वे सब प्राण रूप हैं। प्राण को ही इन रूपों में समझना चाहिये तथा उसकी उपासना करनी चाहिये। प्राण के इन भिन्न-भिन्न रूपों तथा गुणों को जान कर तत्तद्रूप से उसकी उपासना करनी चाहिये।

(२) उपनिषदों में योगचर्या

उपनिषदों में योग का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। आरण्यकों में निहित बीजों का उद्गम यहाँ स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उपनिषदों में सर्वत्र योग का निर्देश है, परन्तु ऐसे भी उपनिषद् हैं जिनका प्रधान विषय ही योगचर्या है। ऐसे उपनिषद संख्या में २१ हैं जिनमें बीस तो पहिले से प्रसिद्ध हैं, परन्तु अन्तिम योगराजोपनिषद अभी अड्यार लाइब्रेरी से प्रकाशित हुआ है। इन्हीं उपनिषदों का वर्णन यहाँ क्रमशः किया जा रहा है:—

१—अद्वयतारकोपनिषद्—इसमें लक्ष्यत्रय के अनुसन्धान द्वारा तारकयोग का साधन कहा गया है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n224/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अमृतनादोपनिषद्—इसमें षडङ्गयोग का वर्णन है। ये षडङ्ग प्रसिद्ध षडङ्ग से जरा भिन्न हैं। यहाँ के षडङ्ग ये हैं—

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥

'प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि—यह षडङ्गयोग कहाता है।' तर्क का लक्षण यह है—आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते। 'आगम से अविरुद्ध अनुमान तर्क कहाता है।'

आसनों का उल्लेख समाधिसिद्ध्युपाय में यों किया है—

पद्मकं स्वस्तिकं वापि भद्रासनमथापि वा।
बद्ध्वा योगासनं सम्यगुत्तराभिमुखः स्थितः॥

'उत्तराभिमुख होकर पद्मक या स्वतिक या भद्र या बद्ध योगासन।'

३—अमृतबिन्दूपनिषद्—मन ही बन्धन का कारण है। बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥' विषयासक्त मन बन्ध का और निर्विषय मन मुक्ति का कारण है।'

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्यात्मनोऽभावं तदा तत्परमं पदम्॥

'विषयासक्ति से मुक्त और हृदय में निरुद्ध मन जब अपने अभाव को प्राप्त होता है तब परमपद प्राप्त होता है।'

तावदेव निरोद्धव्यं यावद् हृदिगतं क्षयम्।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषो न्यायस्य विस्तरः॥

'तभी तक हृदय में मनका निरोध करना चाहिये जब तक उसका क्षय न हो जाय। इसी को ज्ञान कहते हैं और ध्यान कहते हैं, बाकी सब न्याय का विस्तार है।'

इसके अनन्तर ज्ञान का स्वरूप तथा ध्यान का प्रकार कहा गया है।

४—क्षुरिकोपनिषद्—इसमें प्रसिद्ध षडङ्ग—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—संक्षेप से कहे गये हैं। 'आसन-

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n225/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मवस्थितः' कह कर छोड़ दिया है ; किसी आसन-विशेष का नाम नहीं लिया है।

५—तेजोबिन्दूपनिषद्—यह जरा बड़ा उपनिषद् है। इस में छः पञ्चदशाङ्गयोग कहा गया है। पञ्चदश अङ्ग ये हैं—

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।
आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः॥
प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा।
आत्मध्यानं समाधिश्चप्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात्॥

'यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देह-साम्य, दृक्स्थिति, प्राणसंयमन, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि—ये अङ्ग क्रम से बताये हैं।'

यम आदि का स्वरूप भी भिन्न ही प्रकार से कहा गया है। उदाहरणार्थ यम का लक्षण देते हैं—

सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥

'यह सब ब्रह्म है, इस ज्ञान से इन्द्रियों का संयम करना ही यम कहाता है। इसी का बारम्बार अभ्यास करना चाहिये।'

द्वितीय अध्याय में अखण्डैकरसत्व तथा चिन्मात्रत्व भावना द्वारा सबका एकरूप प्रतिपादित किया है। तृतीयाध्याय में ब्रह्मानुभव का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति आदि का वर्णन है। बाकी के तीन अध्यायों में वेदान्तप्रतिपाद्य तत् पदार्थ और 'त्वं' पदार्थ के अभेद का निरूपण है।

६—त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्—पहले सृष्टिक्रम दिखाया गया है। योग दो प्रकार का है—कर्मयोग तथा ज्ञानयोग।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n226/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु ।
बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ॥

'विहित कर्मों में इस बुद्धि का होना कि यह कर्तव्य कर्म है, मन का ऐसा नित्य बन्धन कर्मयोग है ।'

यत्तु चित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम् ।
ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥

'और श्रेयोऽर्थ में चित्त का सदा बद्ध रहना ज्ञानयोग है, ऐसा समझना चाहिये । यह ज्ञानयोग सब सिद्धियों का देने वाला और मङ्गलकारक है ।'

इसके अनन्तर निर्विशेष ब्रह्मज्ञानोपाय अष्टाङ्गयोग कहा है । अष्टाङ्ग वे ही प्रसिद्ध अष्टाङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

यम—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ दया, ६ आर्जव, ७ क्षमा, ८ धृति, ९ मिताहार, १० शौच ।

नियम—१ तप, २ सन्तोष, ३ आस्तिक्य, ४ दान, ५ हरि का आराधन, ६ वेदान्तश्रवण, ७ ह्री, ८ मति ९ जप, १० व्रत ।

आसन—१ स्वस्तिक, २ गोमुख, ३ वीर, ४ योग, ५ पद्म, ६ बद्ध-पद्म, ७ कुक्कुट, ८ उत्तान कूर्मक, ९ धनु, १० सिंह, ११ भद्र, १२ मुक्त, १३ मयूर, १४ सिद्ध, १५ मत्स्य, १६ पश्चिमोत्तान, १७ सुख ।

प्राणायाम—प्राणायाम बतलाने के पहले अग्निस्थान, नाभिस्थान, नाडीचक्र, कुण्डलिनी, नाडीकन्द, नाडीचर वायु आदि का विशद वर्णन दिया गया है । केवल कुम्भक, सहित तथा नाडीशोधक प्राणायाम प्राणायाम फल, प्राण धारण से रोगनाश आदि इसके अनन्तर कहा गया है ।

प्रत्याहार—

यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम् ।
स्थानात् स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते ॥

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n227/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यदि अठारहों मर्मस्थानों में से प्रत्येक स्थान में (मन से परमात्मा को) धारण कर सके तो उसको प्रत्याहार कहते हैं।'

इसके अनन्तर १८ मर्मस्थानों के नाम इस प्रकार दिये हुए हैं—पादाङ्गुष्ठ, गुल्फ, जङ्घामध्य, ऊरुमध्य और मूल, पायु, हृदय, शिश्न, देहमध्य, नाभि, गलकूर्पर, तालुमूल, प्राणमूल, नेत्रमण्डल, भ्रूमध्य, ललाट, ऊर्ध्वमूल, जानुद्वय और करमूल।

धारणा—

पञ्चभूतमये देहे भूतेष्वेतेषु पञ्चसु।
मनसो धारणं यत्तद् युक्तस्य च यमादिभिः।
धारणा सा च संसारसागरोत्ताकारणम्॥

'इस पाञ्चभौतिक देह के पाँचों भूतों में, यमादि से युक्त मन का धारण करना ही धारणा है, वह संसारसागर से तारने वाली है।'

ध्यान—

चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मनः।
स्वरूपव्याप्तरूपस्य ध्यानं कैवल्यसिद्धिदम्॥

स्वरूपव्याप्त रूप परम परमात्मा वासुदेव का चिन्तन ही ध्यान है। वह कैवल्यसिद्धि का देने वाला है।' ध्यान दो प्रकार का है—सगुण तथा निर्गुण।

समाधि—

अहमेव परब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः॥

'मैं ही परब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ऐसी सम्यक् स्थिति को समाधि जानो, उसमें और कोई भी वृत्ति नहीं रहती।'

सुषुप्तिवद् यश्चरति स्वभावपरिनिश्चलः।
निर्वाणपदमाश्रित्य योगी कैवल्यमश्नुते॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n228/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सोया हुआ-सा जो चलता है, स्वभाव से ही जो सदा सर्वत्र निश्चल है, ऐसा योगी निर्वाणपद का आश्रय करके कैवल्य प्राप्त करता है।'

७—दर्शनोपनिषद्—सांकृति नामक शिष्य अपने गुरु दत्तात्रेय से पूछते हैं और वह अष्टांगयोग कहते हैं। अष्टाङ्गयोग पूर्वोक्त ही है। यम और नियम ऊपर कहे हुए दस-दस हैं। यहाँ उनके प्रत्येक के लक्षण दिये हुए हैं। आसन ९ दिये गये हैं—१ स्वस्तिक, २ गोमुख, ३ पद्म, ४ वीर, ५ सिंह, ६ भद्र, ७ मुक्त, ८ मयूर, ९ सुख या सम। इसके अनन्तर देह का वर्णन है। नाड़ी, वायु, नाड़ी के देवता, नाड़ियों में संवत्सरात्मप्राणसूर्य सञ्चार अन्तस्तीर्थ आदि का बहुत उत्तम वर्णन है। प्राणायामादि सब अङ्गों का भी बहुत अच्छा प्रतिपादन है। यह योगोपनिषदों में एक उत्तम उपनिषद् है।

८—ध्यानबिन्दूपनिषद्—ब्रह्म ध्यानयोग (प्रणवध्यान, सविक्षेप ब्रह्मध्यान त्रिमूर्तिध्यान द्वारा) पहले प्रतिपादित है। षडङ्गयोग इसके अनन्तर कहा गया है। आसन चार ही कहे गये हैं—सिंह, पद्म, भद्र तथा सिद्ध। अन्त में नादानुसन्धान द्वारा आत्मदर्शन बतलाया गया है।

९—नादबिन्दूपनिषद्—इसमें प्रणवोपासना तथा नादानुसन्धान कहा गया है।

१०—पाशुपतब्रह्मोपनिषद्—इसमें ज्ञानयोग प्रतिपादित है। परमात्मा की हंसत्वेन भावना, अन्तर्याग, ज्ञानयज्ञ रूप अश्वमेध इत्यादि अनेक विषय हैं।

११—ब्रह्मविद्योनिपनिषद्—प्रणव की चारों मात्राओं का वर्णन देकर सुषुम्ना के विषय में यों कहा है—

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखाभा दृश्यते परा।
सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथा परम्॥
द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीर्भित्त्वा च मूर्धनि।
वरदा सर्वभूतनां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n229/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मृणाल-तन्तु के समान सूक्ष्म और ज्वाला-सी उज्ज्वल और सूर्य-सदृश प्रकाशमान वह परा नाड़ी सूर्य को भेदकर परम को प्राप्त होती है और मूर्धा में बहत्तर हजार नाड़ियों को भेदकर सबको व्याप्त कर रहती है।'

नाद के द्वारा मोक्षप्राप्ति, जीवस्वरूप निरूपण, हंसविद्या, हंसयोगी के द्वारा अनुसन्धेय आत्मस्वरूप इत्यादि अनेक विषय हैं।

१२-मण्डलब्राह्मणोपनिषद्—पहले-पहले अष्टाङ्गयोग कहा है। चार यम कहे गये हैं—शीतोष्णाहार-निद्राविजयः, सर्वदा शान्ति, निश्चलत्वम्, विषयेन्द्रियनिग्रहश्चैते यमाः। तदनन्तर नव नियम हैं—गुरुभक्तिः, सत्यमार्गानुरक्तिः, सुखागतवस्त्वनुभवश्च तद्वस्त्वनुभवेन तुष्टिः, निःसङ्गता, एकान्तवासः, मनोनिवृत्तिः, फलानभिलाषः, वैराग्य भावश्च नियमाः। और सब अङ्ग प्रसिद्ध रीति से ही कहे गये हैं। यह उपनिषद् अधिकांश तारकयोग तथा अमनस्क योग में ही लगाया गया है।

तद्योगं विद्धि विविधं पूर्वोत्तरविधानतः।
पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं तदुत्तरम्॥

'वह योग पूर्वोत्तर विधान से दो प्रकार का है, पूर्व में करने का तारकयोग और बाद का अमनस्क योग है, तारक द्विविध है, मूर्ति तारक और अमूर्ति तारक। जो इन्द्रियान्त है वह मूर्ति तारक है, जो भ्रूयुगातीत है वह अमूर्ति तारक है। दोनों का ही मनोयोग से अभ्यास करना चाहिये।...उत्तर योग अमनस्क योग है।

तालुमूलोर्ध्वभागे महज्ज्योतिर्विद्यते, तद्दर्शनादणिमादिसिद्धिः।
'तालुमूलके ऊर्ध्वभाग में महज्ज्योति है। उसके दर्शन से अणिमादि सिद्धिप्राप्ति होती हैं।'

१३-महावाक्योपनिषद्—इन छोटे से उपनिषद् में हंस विद्या कही गयी है। पर यहाँ कुछ विशेष है।

विद्या हि काण्डान्तरादित्यो ज्योतिर्मण्डलं ग्राह्यं नापरम्। असावा-

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n230/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहितं हंसः सोऽहम् । प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानन्दः परमात्माविर्भवति ।

'काण्डान्तर में जो ज्योतिर्मण्डलस्वरूप आदित्य हैं वही विद्या है, अन्य कोई नहीं । 'असौ आदित्यो ब्रह्म' यही आदित्य ब्रह्म है जिसका 'हंसः सोऽहम्' इस अजपा मन्त्र से निर्देश किया जाता है । प्राणापान की अनुलोम और प्रतिलोम गति से वह विद्या जानी जाती हैं, दीर्घकाल के अभ्यास से वह विद्या लाभकर जब त्रिवृत् आत्मा ब्रह्म का ध्यान किया जाता है तब सच्चिदानन्द परमात्मा आविर्भूत होते हैं ।'

१४—योगकुण्डल्युपनिषद्—

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद्द्वावपि विनश्यतः ॥
तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा ।
मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः ॥

'चित्त के दो हेतु हैं, वासना और प्राण । इनमें से किसी एक के नष्ट होने से दोनों का नाश होता है । इनमें से पहले सदा प्राण को ही जय करना चाहिये, तब मिताहार होकर आसन साधे और फिर शक्तिचालन करे ।'

इस सिद्धान्त को कहकर आसन प्राणायामादि द्वारा कुण्डलिनी योग प्रथम अध्याय में कहा गया है । द्वितीय अध्याय में खेचरी, मन्त्र द्वारा तथा प्रसिद्ध अभ्यास द्वारा, कही गयी है । तृतीय अध्याय में ब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, मुक्तिस्वरूप आदि कथित है ।

१५—योगचूडामण्युपनिषद्—चक्र, नाडी, वायु आदि का तत्त्व बतलाते हुए षडङ्गयोग इसमें कहा गया है । तदनन्तर प्रणवाभ्यास प्रतिपादित है । प्रणवाभ्यास करनेवाले को भी प्राणजय करना आवश्यक है, अतः नाडी शोधनादि द्वारा प्राणायाम पुनः कहा गया है ।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n231/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६—योगतत्त्वोपनिषद्—मोक्षप्राप्ति के लिये ज्ञान तथा योग दोनों आवश्यक हैं।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि॥

'योग के बिना ज्ञान ध्रुव मोक्ष का देनेवाला भला कैसे हो सकता है? उसी प्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्षकर्म में असमर्थ है।' योग चार हैं—मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग। मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः। इस उपनिषद् में प्रसिद्ध अष्टाङ्गयोग का सविस्तर वर्णन है।

१७—योगशिखोपनिषद्—यह उपनिषद् बड़े महत्त्व का है। विषय तो वही है जो योगतत्त्वोपनिषद् में कहा गया है किन्तु यहाँ बड़े विस्तार से तथा प्रकारान्तर से कहा गया है। कुछ बातें उससे भिन्न भी हैं। यहाँ चारों योग स्वतन्त्ररूपेण कहे गये हैं। यहाँ वे क्रमिक भूमिका माने गये हैं—

मन्त्रोलयो हठो राजयोगान्ता भूमिकाः क्रमात्।
एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते॥

'मन्त्र, लय, हठ और राज—ये चार योग यथाक्रम चार भूमिकाएँ हैं। चारों मिलकर यह एक ही चतुर्विध योग है जिसे महायोग कहते हैं।' इतना ही नहीं, इनके स्वरूप भी कुछ भिन्न प्रकार से कहे गये हैं। उदाहरणार्थ राजयोग लीजिए—रजसो रेतसो योगाद् राजयोग इति स्मृतिः। 'रज और रेत के योग से राजयोग होता है।'

योग का सामान्य स्वरूप—प्राणापानसमायोगो ज्ञेयं योगचतुष्टयम्। 'प्राणापान को समान करना योगचतुष्टय कहा गया है।' यह उपनिषद् योगदृष्ट्या सचमुच बड़े काम का है

१८—वराहोपनिषद्—इसमें पाँच अध्याय हैं। चार अध्यायों में ज्ञान प्रतिपादित है। पञ्चम अध्याय में योग कहा गया है। तीन योग

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n232/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—लय, मन्त्र तथा हठ। हठयोग के आठ अङ्ग हैं। यम, १०, नियम १० और आसन ११ कहे गये हैं। अन्त में योग के कुछ विशेष प्रकार दिये गये हैं, जैसे कालवञ्चनोपायभूतयोग, कायदार्ढ्यबलादि साधन के योग, संपुट योग आदि।

१६—शांडिल्योपनिषद्—इसमें अष्टाङ्गयोग शांडिल्य से अथर्वा कहते हैं। यम १०, नियम १०, आसन ८, प्राणायाम के ३ प्रकार, प्रत्याहार ५, धारणा ५, ध्यान २ कहे गये हैं। द्वितीय-तृतीय अध्याय बहुत छोटे-छोटे हैं। इनमें ब्रह्मस्वरूप कहा गया है। अन्त में दत्तात्रेय का माहात्म्य प्रतिपादित है।

हंसोपनिषद्—हंसविद्या संक्षेप से प्रतिपादित है। अजपाजप, नादानुसन्धान आदि तदुपायत्वेन कहे गये हैं।

२०-योगराजोपनिषद्—चार योग हैं—मन्त्रयोग, लययोग राजयोग तथा हठयोग। इन चारों योगों में आसन, प्राणायाम, ध्यान तथा समाधि सम्मत हैं। लययोग के प्रसङ्ग में नव चक्रों का वर्णन दिया गया है। हठ तथा राजयोग के विषय में और कुछ नहीं कहा गया है।

यह २१ योगोपनिषदों का सारांश है। इन में योग के सभी विषय आ गये हैं। पीछे के ग्रन्थों में इन्हीं उपनिषदों का लिया हुआ माल मिलता है। केवल विषय ही नहीं प्रत्युत वे ही शब्द अनेक स्थलों में मिलते हैं। गोरख आदि सिद्धों के ग्रन्थों में यहाँ के श्लोक वैसे-के वैसे मिलते हैं। जो लोग कहते वे कि योग के अङ्ग आठ से छः इन सिद्धों ने किये हैं, उन्हें इन उपनिषदों को देखना चाहिये। जो लोग इन उपनिषदों को पीछे के काल का मानते हैं; उनकी युक्तियाँ भी अल्पप्राण ही हैं। तथापि हम आगे यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि जिन्हें विद्वज्जन प्राचीनतम मानते हैं, उन में भी योग का विषय अच्छी तरह आया हुआ है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n233/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग शब्द के इस पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होने के बहुत पूर्व से योगाभ्यास भारत के लोगों को अच्छी तरह से ज्ञात था। यद्यपि युज् धातु का प्रयोग मनस् शब्द के साथ तथा ऐसे ही अर्थ में ऋग्वेद में भी मिलता है, तथापि बिल्कुल स्पष्ट रूप से कठोपनिषद् में योग शब्द का प्रयोग हुआ है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ॥
(कठोपनिषद् अ० २ वल्ली। १०-११)

उपनिषदों में योग 'अध्यात्मयोग' कहा गया है। संहिता ब्राह्मणों में योग अनेक क्रियाकलाओं के साथ मिला हुआ मिलता है तथा सिद्धियाँ ही उसकी बहुशः लक्ष्य थीं। बहुत सम्भव है मोक्ष प्राप्ति के लिये जब इसका प्रयोग होने लगा तब इसको अध्यात्मयोग कहने लगे।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

योग शब्द का प्रयोग दर्शन विशेष के लिये होता है या क्रियात्मक-योग के लिये होता है। उपनिषदों में दोनों अर्थों में योग शब्द प्रयुक्त मिलता है। ऊपर के दोनों कठोपनिषद् के मन्त्र ही इसके उदाहरण हैं। योगदर्शन के-से मत प्राचीन उपनिषदों में भी अनेक स्थलों पर मिलते हैं। विज्ञ लोग कठ, मुण्डक, छान्दोग्य आदि उपनिषदों में इसे स्वयं देख सकते हैं। क्रियात्मक योग के भी रूप, प्रकार, भेद आदि प्राचीन उपनिषदों में भी मिलते हैं। श्वेताश्वेतरोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n234/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षडङ्गयोग का वर्णन स्पष्ट ही देख पड़ता है। जो लोग योग का षडङ्गत्व नाथसम्प्रदाय से आया हुआ मानते हैं, उन्हें यह उपनिषद् अपने मत के पलटने में बहुत कुछ सहायता देगा।

श्वेताश्वतर के कुछ वाक्य हम नीचे देते हैं—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥
प्राणान् प्रपीड्येह स· युक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः॥
(२। ८-९)

ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥
(१। १४)

'शरीर को त्रिरुन्नत अर्थात् छाती, गर्दन और सिर उन्नत, और सम करके, मनसहित इन्द्रियों को हृदय में नियत कर ब्रह्म रूप नौका से विद्वान् सब भयानक प्रवाहों को तर जाय। इस शरीर में प्राणों का अच्छी तरह निरोध करके युक्तचेष्ट हो और प्राण के क्षीण होने पर नासिकाद्वारों से श्वास छोड़े और इन दुष्ट घोड़ों की लगाम मन को विद्वान् अप्रमत्त होकर धारण करे। ध्यानरूप मन्थन से अत्यन्त गूढ़-सा जो आत्मा है उसे देखे।' यह षडङ्ग योग का विशद वर्णन है।

आसनों का विस्तृत वर्णन इन उपनिषदों में नहीं मिलता है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में 'समं कायशिरोग्रीवम्' मिलता है वैसा ही यहाँ दिखायी पड़ता है। ध्यानादि के लिये सिद्धासन तथा पद्मासन को

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n235/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ अन्य आसन अनुपयुक्त और अनावश्यक है । गोरक्षनाथ ने गोरक्ष-पद्धति में इसी हेतु ये ही दो आसन बतलाये हैं ।

वैदिक ग्रन्थों में प्राणविद्या का बड़ा ऊँचा स्थान है । उपनिषदों में भी प्राणोपासना अनेक भावनाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से कही गयी है[1] । प्रत्यक्ष सम्बन्ध योग से प्राणों का प्राणायाम के सम्बन्ध में है । प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी उपनिषद् मोक्ष के दो उपाय बताते हैं—मनोजय तथा प्राणजय । मनोजय वासनाओं के क्षीण होने से होता है, किन्तु प्राणजय हो जाने से मनोजय अनायास सिद्ध हो जाता है । यही कारण है कि योग में प्राणजय पर इतना जोर दिया जाता है । प्राणजय प्राणायाम द्वारा होता है । अतएव प्राणायाम का इतना प्राधान्य है । कठोपनिषद् में यों कहा है—

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥

(२ । २ । ३)

'जो प्राण को ऊपर भेजता है और अपान को नीचे फेंकता है उस मध्य में रहनेवाले वामन को विश्वेदेव भजते हैं ।' मुण्डकोपनिषद् में एक वाक्य यों मिलता है—

प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥

(३ । १ । ९)

'प्रजाओं के प्राणसहित सम्पूर्ण चित्त में वह आत्मा व्याप्त है और विशुद्धचित्त में ही विशेष रूप से प्रकट होता है ।' योग के सभी अंगों

१. छान्दोग्य० १।११।५, ४।३।३-४, ५।१।६–१५।७ । १५। १, ५ । १९–२४, कौषीतकि० २ । १, ५, श्वेताश्वतर० १ । ४–५, इत्यादि ।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n236/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन उपनिषदों से यहाँ तक हुआ है। समाधि का वर्णन भी अनेक स्थलों में मिलता है। श्वेताश्वतर में इस प्रकार वर्णन है—

'जिस प्रकार कोई तेजोमय बिम्ब धूल से धूसरित हुआ हो और पीछे स्वच्छ करने पर वही चमकने लगता है उसी प्रकार उस आत्म-तत्त्व को देख कर देही एकावस्था को प्राप्त होकर कृतार्थ और वीतशोक होता है। परन्तु जब देही आत्मतत्त्व से ब्रह्मतत्त्व को पर-प्रकाशक दीप की रीति से देखता है तब वह आत्मदेव को अज, ध्रुव, सर्व-तत्त्व विशुद्ध जान कर सब पाशों से मुक्त हो जाता है।' (२।१४–१५)

ऊपर संक्षेप में दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन उप-निषदों में भी योग के प्रत्येक अंग का विवरण मिलता है। वास्तविक बात तो यह है कि लगभग सभी उपनिषदों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से थोड़ा अथवा बहुत योग का वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार योग की प्राचीनता तथा व्यावहारिकता सन्देह-रहित है।

———

(३) श्रीमद्भागवत में योगचर्या

भागवत का योग पौराणिक योग का एक अंशमात्र है तथा योग-शास्त्र के इतिहास की दृष्टि से उसका स्थान औपनिषद योग तथा पातञ्जल योग के मध्य के काल में आता है। भागवत में भक्ति के साथ-साथ अष्टाङ्गयोग का भी प्रचुर वर्णन है। यह वर्णन दो प्रकार से किया गया मिलता है। कई स्थलों पर योग-साधन की क्रियाओं का अप्रत्यक्ष रूप से संकेतमात्र किया गया है। परन्तु अन्य स्थलों पर योग का प्रत्यक्षरूप से विषद विवेचन किया गया है। योग के अप्रत्यक्ष संकेत प्रायः दो प्रसङ्गों में किये गये मिलते हैं। किसी विशेष व्यक्ति की तपश्चर्या के वर्णन के अवसर पर योग का आश्रय लिये जाने का संकेत

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n237/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है तथा किसी महान् व्यक्ति के इस भौतिक शरीर के छोड़ने का जहाँ वर्णन है वहाँ भी योगमार्ग का आलम्बन कर प्राणत्याग की घटना का संक्षिप्त परन्तु मार्मिक उल्लेख उपलब्ध होता है। इस प्रकार महापुरुषों के तपश्चरण तथा शरीर-त्याग के दोनों अवसरों पर विशेषरूप से योग की ओर संकेत किया गया मिलता है।

पहले योग-विषयक अप्रत्यक्ष निर्देशों की बात कही जायगी। ऐसे प्रसंग भागवत के प्रथम स्कन्ध में कई बार आये हैं[1]। नारदजी ने अपने जीवन-चरित से एक ऐसे प्रसङ्ग का उल्लेख किया है—

(१) जब वह बालक थे तब उन्हें अध्यात्मवेत्ता मुनियों के संसर्ग में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। लड़कपन में ही उनकी माता का देहपात हो गया, तब नारदजी ने उत्तर दिशा में जाकर मुनियों के मुख से सुने गये भगवान् का साक्षात्कार करने का निश्चय किया। तब निर्जन स्थान में उन्हों ने भगवान् के चरणकमलों में अपना मन लगा ध्यान धरा जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर अपना दर्शन दिया। इस प्रसङ्ग में 'मनःप्रणिधान' जैसे पारिभाषिक शब्द का उल्लेख मिलता है[2]।

(२) नारदजी के उपदेश से व्यासजी ने भगवान् की विविध लीलाओं के वर्णन करने का विचार किया। तदनुसार उन्होंने सरस्वती नदी के पश्चिम तट पर स्थित शम्याप्रास नामक आश्रम में आसन मार कर भगवान् में अपना मन लगा भक्तिपूर्वक ध्यान धरा। उनका निर्मल मन इतने अच्छे ढंग से समाहित हुआ कि उन्होंने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया[3]। आसन तथा मनःप्रणिधान का उल्लेख स्पष्ट ही है।

---

१. श्रीमद्भागवत १ । ६ । १६, १७
२. ,, १ । ६ । २०
३. ,, १ । ७ । ३, ४

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n238/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) भीष्म पितामह के देहत्याग के अवसर पर व्यासजी ने ऋषि, मुनियों के अतिरिक्त पाण्डवों के साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को भी उस स्थान पर ला एकत्र किया है। अन्तिम अवसर पर सब लोग भीष्म को देखने को आये, श्रीकृष्ण भी पधारे। भीष्म सच्चे पारखी थे, भावुक भक्त थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की ललित स्तुति की तथा अन्त समय में भगवान् में मन, वचन, दृष्टि की वृत्तियों से अपनी आत्मा को लगा कर अन्तःश्वास लिया तथा शान्त हो गये[1]। इस प्रसङ्ग में भीष्म ने अपने शरीर को योगक्रिया से छोड़ा, यह बात स्पष्ट ही है। अन्तिम बार श्वास को भीतर खींच कर ब्रह्मरन्ध्र से प्राण-त्याग करना योग की महत्त्व-पूर्ण क्रिया समझी जाती है।

(४) देवहूति सांख्यशास्त्रप्रवर्तक कपिल मुनि की पूजनीया माता थीं। बहुत आग्रह करने पर कपिल ने उन्हें योग की शिक्षा दी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपना देहत्याग समाधि के द्वारा किया[2]।

(५) चतुर्थ स्कन्ध में सती के शरीरदाह की कथा वर्णित है। अपने पिता दक्ष प्रजापति के द्वारा किये गये शिवजी के निरादर के कारण सती ने अपने शरीर को जला दिया था। गोसाईंजी 'जोग अगिन तनु जारा' लिखकर योगाग्नि में सती के भस्म होने की बात लिखकर चुप हैं, परन्तु व्यासजी ने एक श्लोक में उसकी समग्र योगक्रिया का यथार्थ वर्णन किया है[3]। इस पद्य की शुकदेवकृत सिद्धान्त-प्रदीप तथा विजयराघवकृत भागवत चन्द्रिका-व्याख्या में बड़ी मार्मिक व्याख्या की गयी है। सती ने पहले आसनजय किया—आसन मारकर इस प्रकार बैठ गयीं कि प्राण-सञ्चारजनित अङ्ग-सञ्चालन बिल्कुल बन्द हो

---

१. श्रीमद्भागवत १ । ९ । ४३
२. श्रीमद्भागवत ३ । ३३ । २७
३. ” ४ । ४ । २५, २६

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n239/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। तब प्राण और अपान का निरोध कर एकवृत्ति बना नाभिचक्र (मणिपूर) में रक्खा। अनन्तर नाभिचक्र से उदानवायु को उठाकर हृदय (अनाहत) में ले आयीं; निश्चय बुद्धि के साथ वहाँ से भी वायु को कण्ठमार्ग (विशुद्धिचक्र) से भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) में ले आयीं। उदान को वहीं टिकाकर सती ने अपने अङ्गों में वायु तथा अग्नि की धारणा धारण की। परिणाम स्पष्ट ही हुआ। शरीर एकदम जल उठा। इस वर्णन में शरीर के विभिन्न चक्रों तथा तद्द्वारा वायु को ऊपर ले जाने की क्रिया का उल्लेख नितान्त स्पष्ट है।

(६) नारदजी ने ध्रुव को आसन मार प्राणायाम के द्वारा प्राण, इन्द्रिय तथा मन के मल को दूर कर समाहित मन से भगवान् के ध्यान करने का उपदेश दिया था[1]। ध्रुव ने उसी मार्ग का अवलम्बन किया तथा अल्प समय में ही वह भगवान् का साक्षात्कार करने में समर्थ हुआ[2]। ध्रुव को नारद ने अष्टाङ्गयोग का ही उपदेश दिया था, इसका पूरा पता 'कृत्वोचितानि' पद्य की भागवत चन्द्रिका के देखने से लग सकता है। 'उचितानि कृत्वा' में यम-नियम का, 'कल्पितासनः' में आसन का, 'मलं व्युदस्य' में प्राणायाम तथा प्रत्याहार का, 'ध्यायेत्' में ध्यान के धारणापूर्वक होने के कारण तथा ध्यान का विधान किया गया है अर्थात् पूरे अष्टाङ्गयोग का उपदेश है।

(७) दधीचि ऋषि से देवताओं ने वज्र बनाने के लिये उनकी हड्डियाँ माँगी, तब लोकोपकार की उन्नत भावना से प्रेरित होकर ऋषि ने उनकी प्रार्थना को अङ्गीकार किया तथा इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि का नियमन कर परम योग का आश्रय लिया। उस समय उन्हें खबर ही न लगी कि उनका शरीरपात कब हो गया[3]।

---

१ श्रीमद्भागवत ४।८।४४
२ „ ४।८।७७
३ „ ६।१०।१२

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n240/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) वृत्र ने भी अपनी मृत्यु के समय भगवान् के चरण कमलों में मन लगाकर समाधि के द्वारा अपने प्राण छोड़े[1]।

(९) अदिति ने 'पयोव्रत' नामक महत्त्वपूर्ण व्रत भगवान् की प्रसन्नता के लिये किया। भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने अदिति के उदर से जन्म धारण करना स्वीकार कर लिया। महर्षि कश्यप का इस अद्भुत घटना का ज्ञान समाधियोग से बिना किसी के जनाये ही हो गया[2]।

(१०) श्रीकृष्ण के जीवनचरित में अनेक प्रसङ्ग भागवत के दशम स्कंध में वर्णित हैं जिनमें योग का आश्रय लेकर उन्होंने अत्यंत आश्चर्यजनक अलौकिक घटनाओं को घटित किया है। श्रीकृष्ण तो भगवान् के पूर्णावतार ठहरे—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'। अतः अलौकिक घटनाओं को उत्पन्न करना उनकी शक्ति के एक कण का कार्य है, परन्तु इन सब अद्भुत कार्यों की उत्पत्ति श्रीकृष्ण ने अपने योगबल से की थी, इसका उल्लेख बारम्बार मिलता है। वह अनेक बार 'योगी' तथा योगियों में श्रेष्ठ 'योगश्वरेश्वरः' बतलाये गये हैं। ब्रह्मा ने ग्वालों तथा गौओं को जब पर्वत की कन्दरा में चुराकर रख छोड़ा था, तब श्रीकृष्ण ने अपने शरीर को ही उतने ही गोपों तथा गौओं में परिवर्तित कर जो चमत्कार किया था[3] वह योग की 'कायव्यूह' सिद्धि का उज्ज्वल दृष्टान्त है। श्रीकृष्ण ने प्रबल दावाग्नि से गोपों की जो रक्षा की थी, उसमें उनका 'योगवीर्य' ही प्रधान कारण था[4]। रासलीला के समय में वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण ने जो अलौकिक लीलाएँ दिखायीं उनमें उनका योगमाया का आश्रय लेना

१ श्रीमद्भागवत ६ । ११ । २१
२ ,, ८ । १७ । २२
३ ,, १० । १३ । १९
४ ,, १० । १९ । १४

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n241/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एक कारण था[1]। जब यादवों के भार से भी व्यथित इस भूमण्डल को श्रीकृष्ण ने भार-विहीन कर तथा जीवनदान देकर अपने लोक में जाने का विचार किया, उस समय भी श्रीकृष्ण ध्यान लगाकर अपने परम रमणीय शरीर को आग्नेयी योगधारणा से बिना जलाये ज्यों-के-त्यों अपने शरीर के साथ अपने लोक में चले गये[2]। 'साधारण योगी अग्नि-धारणा से अपने शरीर को भस्म कर देता है। श्रीकृष्ण ने भी वह धारणा की अवश्य, परन्तु अपने शरीर को बिना भस्म किये सशरीर ही अपने धाम में चले गये[3]। इस प्रकार श्रीकृष्ण के जीवन चरित को आदि से अन्त तक व्यासजी ने योगसिद्धियों से परिपूर्ण प्रदर्शित किया है।

प्रत्यक्ष वर्णन

भागवत के तीन स्कन्धों में योग का विशेष विवरण दिया गया है—दूसरे स्कन्ध के अध्याय १ तथा २ में; तीसरे स्कन्ध के २५ वें तथा २८ वें अध्यायों में कपिलजी का अपनी माता देवहूति के प्रति योग का

---

१ श्रीमद्भागवत १० । २६ । १

२ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥
लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ।
योगधारणायाग्नेय्या दग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । ३१ । ५-६)

३ उक्त श्लोक की व्याख्या में मान्य टीकाकारों में भी मतभेद दिखायी पड़ता है। श्रीधर स्वामी के 'अदग्ध्वा' पदच्छेद को मानकर वीर राघव, विजयध्वज, जीव गोस्वामी आदि सब टीकाकारों ने एक समान ही अर्थ किया है, परन्तु निम्बार्कमतानुयायी श्रीशुकदेव ने अपने सिद्धान्त-प्रदीप में 'दग्ध्वा' पदच्छेद कर 'स्ववियोगाग्निना सन्तापयित्वा' अर्थ कर विद्युत् के अदृश्य होने की तरह भगवत्तनु के अन्तर्धान होने की बात लिखी है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n242/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश, और फिर एकादश स्कन्ध के अध्याय १३ में सनकादिकों को हंसरूपधारी भगवान् के द्वारा योग का वर्णन, अ० १४ में ध्यानयोग का विशद वर्णन, अ० १५ में अणिमा आदि अठारह सिद्धियों का वर्णन, अ० १९ में यमनियमादि का वर्णन, अ० २८–२९ में यथाक्रम ज्ञानयोग और भक्तियोग के साथ अष्टाङ्गयोग।

योग के आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इनमें यम तथा नियम का संक्षिप्त वर्णन ग्यारहवें स्कन्ध के अध्याय १९ में यत्किंचित् मिलता है। पातञ्जल सूत्रों में तो यम तथा नियम केवल पाँच प्रकार के ही बतलाये गये हैं, परन्तु भागवत में उनमें से प्रत्येक के बारह भेद माने गये हैं।

यम के द्वादश भेद[1]—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) असङ्ग, (५) ह्री, (६) असंचय, (७) आस्तिक्य, (८) ब्रह्मचर्य, (९) मौन, (१०) स्थैर्य, (११) क्षमा, (१२) अभय।

नियम के द्वादश भेद[2]—(१) शौच—बाह्य, (२) आभ्यन्तर, (३) जप, (४) तप, (५) होम, (६) श्रद्धा, (७) आतिथ्य, (८) भगवदर्चन, (९) तीर्थाटन, (१०) परार्थचेष्टा, (११) सन्तोष, (१२) आचार्यसेवन।

इन यमों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (भागवत का छठा 'असंचय') पातञ्जल दर्शन में भी हैं, शेष सात नये हैं। नियमों में उसी भाँति शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान (भागवत का आठवाँ 'भगवदर्चन') पातञ्जल-दर्शन में भी हैं, शेष नये हैं।

आसन—यह योग का तीसरा अंग है। शुद्ध, पवित्र तथा एकांत

१ श्रीमद्भागवत ११ । १९ । ३३
२ ,, ११ । १९ । ३४

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n243/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकान्त स्थान में आसन लगाना चाहिये। जहाँ कहीं हल्ला नहीं हो, निर्जनता के कारण शान्ति विराजती हो, वैसा ही स्थान आसन लगाने के लिये चुनना चाहिये। आसन 'चैलाजिनकुशोत्तर' होना चाहिये, इसका 'कल्पितासन' शब्द के द्वारा भागवत में स्थान-स्थान पर संकेत है। योग में अनेक आसन बतलाये गये हैं। स्वस्तिकासन से बैठे तथा उस समय अपने शरीर को बिल्कुल सीधा बना रक्खे—

गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत् कल्पितासने॥

(श्रीमद्भा० २ । १ । १६)

'घर से निकला हुआ वह धीर पुरुष पुण्यतीर्थों के जल में स्नान करे और शुद्ध एकान्त स्थान में विधिपूर्वक बिछाये हुए आसन पर आसीन हो।'

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम्।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत्॥

(३ । २८ । ८)

'शुचि देश में आसन लगा कर आसन को जीते, पीछे स्वस्तिकासन लगा कर सीधा शरीर करके अभ्यास करे।'

इस श्लोक में श्रीधरस्वामी के अनुसार 'स्वस्तिक' पाठ माना जाता है। अन्य टीकाकारों ने 'स्वस्ति समासीनः' पाठ माना है तथा पद्मासन अथवा सिद्धासन से सुखपूर्वक बैठे, ऐसा अर्थ किया है। अतः भागवत में किसी एक आसन के प्रति आदर दिखाया गया नहीं मालूम पड़ता। स्थान-स्थान पर टीकाकारों के संकेत से पद्म अथवा सिद्ध आसनों की ओर निर्देश जान पड़ता है।

प्राणायाम—प्राणों का आयाम योग का चौथा अङ्ग है। पूरक, कुम्भक तथा रेचक के द्वारा प्राण के मार्ग को शुद्ध करने का उपदेश दिया गया है—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n244/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणस्य शोधयेन्येन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।

(३ । २८ । ९)

प्राणायाम पुराणों में दो प्रकार का बतलाया गया है—(१) अगर्भ तथा (२) सगर्भ । अगर्भ प्राणायाम वह है जिसमें जप तथा ध्यान के बिना ही, मात्रा के अनुसार, प्राणायाम किया जाय । सगर्भ प्राणायाम में जप तथा ध्यान अवश्य होना चाहिये । इन दोनों में सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ है । अतः पुराणों ने उसीके करने का उपदेश दिया है । शिवपुराण की वायवीय संहिता के उत्तर खण्ड के अध्याय सैंतीस में इन दोनों के भेद तथा उपयोग का अच्छा वर्णन है—

अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः ।
जपं ध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वात् ॥ ३३ ॥

'प्राणायाम अगर्भ और सगर्भ, दो प्रकार का कहा गया है, जप और ध्यान के बिना जो प्राणाम होता है वह अगर्भ है और जप ध्यान के सहित जो है वह सगर्भ है ।'

अगर्भाद् गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम् ॥ ३४ ॥

'अगर्भ से सगर्भ प्राणायाम का गुण सौगुना है । इस लिये योगी सगर्भ प्राणायाम करते हैं ।'

विष्णुपुराण में अगर्भ को अबीज तथा सगर्भ को सबीज प्राणायाम कहा गया है[1] । श्रीमद्भागवत में भी इसी सगर्भ प्राणायाम का विधान बतलाया गया है । प्राणायाम करता जाय, साथ-ही-साथ अ-उ-म् से ग्रथित ब्रह्माक्षर ॐकार की मन में आवृत्ति करता जाय । ॐकार को बिना भुलाये अपने श्वास को जीते[2]—

१. विष्णुपुराण षष्ठ अंश ७ । ४० ।
२. श्रीमद्भागवत ११ । २४ । ३४ ।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n245/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यस्येन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥

(श्रीमद्भाग्० २ । १ । १७)

'इस तीन अक्षर वाले शुद्ध परम ब्रह्माक्षर मन्त्र का मन से जप करे, इस ब्रह्म बीज को बिना भुलाये श्वास को जीत कर मन को एकाग्र करे।'

जो योगी इस प्रकार सगर्भ प्राणायाम के अभ्यास से श्वासजय प्राप्त कर लेता है, उसके मन से आवरक मल—रज तथा तम—का नाश उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार आग में तपाये लोहे से मलिनता दूर हो जाती है—

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥

(३ । २८ । १०)

ऊपर पूरक, कुम्भक तथा रेचक के क्रम से प्राणायाम करने का विधान बतलाया गया है, परन्तु भागवत के एकादश स्कन्ध में 'विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः' (१४ । ३३) 'प्रतिकूलेन वा चित्तम्' (३ । २८ । ६) कह कर इससे उलटे क्रम से प्राणायाम करने की भी विधि शास्त्रीय मानी गयी है। यहाँ 'विपर्ययेणापि' तथा 'प्रतिकूलेन' का अर्थ श्रीधरस्वामी ने दो प्रकार से किया है। एक अर्थ तो यह हुआ—साधारण नियम का उलटा क्रम अर्थात् रेचक, पूरक, कुम्भक। इसका आशय यह है कि पहले ही रेचक करे, बाद को कुम्भक और अन्त में पूरक। कुम्भक दो प्रकार का होता है—अन्तःकुम्भक तथा बहिःकुम्भक। भागवत में इन दोनों का इस प्रकार वर्णन है तथा दोनों में किसी एक के द्वारा चित्त को स्थिर करने का उपदेश दिया है। दूसरा अर्थ यह बतलाया गया है कि बाम नाड़ी से पूरक करे तथा दाहिनी से रेचक करे अथवा इसका उलटा दक्षिण नाड़ी से वायु भर

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n246/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर वाम से रेचक करे। दोनों ही अर्थ योगाभ्यासियों को सम्मत हैं। प्राणायाम को तीनों काल में—प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—करना चाहिये और हर बार दस प्राणायाम करना चाहिये। यदि इस नियम से प्राणायाम किया जाय, तो एक मास के पूर्व ही साधक पवन को वश में कर लेता है—

दशकृत्वस्त्रिपवणं मासादर्वाग् जितानिलः ॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।३५)

प्रत्याहार—इस प्रकार आसन, सङ्ग तथा श्वास को जीत कर साधक अपनी इन्द्रियों को उनके तत्तद्विषयों से खींचे। इस कार्य में सहायता देगा निश्चय बुद्धि वाला मन। मन के द्वारा निश्चय बुद्धि की सहायता से मनुष्य अपनी इन्द्रियों को विषयों से खींच कर उन्हें एक स्थान पर रखने का यत्न करे। यह हुआ प्रत्याहार।

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान् मनसा बुद्धिसारथिः।
(श्रीमद्भा० २।१।१८)

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मयः।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।४२)

धारणा—मन को एक वस्तु में टिकाने का नाम हुआ धारणा। भागवत में दो प्रकार की धारणा बतलायी गयी है। वे ही धारणाएँ अन्य पुराणों में भी नामभेद से बतलायी गयीं हैं। भगवान् के दो रूप हैं—स्थूल तथा सूक्ष्म। इन्हीं को विष्णुपुराण में (१) मूर्त अथवा 'विश्व' तथा (२) अमूर्त अथवा 'सत्' रूप बतलाया गया है[1]। भगवान् के इन्हीं दोनों रूपों का धारणा तथा ध्यान करने चाहिये। अतः भागवतविहित धारणा के दो भेद हुए—

१. विष्णुपुराण अं० ६ अ० ७।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n247/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) वैराजधारणा तथा (९) अन्तर्यामिधारणा।

सबसे पहले भगवान् के स्थूल रूप में ही धारणा तथा ध्यान लगावे अर्थात् पहले भगवान् के विराट् रूप की धारणा करे। भागवत के दूसरे स्कन्ध के पहले ही अध्याय में भगवान् के विराट् रूप का सुंदर तथा सांग वर्णन किया गया है। स्थूल होने के कारण मूर्त रूप में मन आसानी से लगाया जा सकता है। इस धारणा का नाम हुआ **वैराज धारणा**। जब यह धारणा साधक के हाथ में आ जाय, तब अमूर्त रूप की धारणा करनी चाहिये। इस दूसरी धारणा—**अंतर्यामि धारणा** का अतीव सुन्दर वर्णन भागवत के अनेक स्थलों पर किया गया है, यथा दूसरे स्कन्ध का दूसरा अध्याय, तीसरे स्कन्ध का अट्ठाईसवाँ अध्याय तथा ग्यारहवें स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय। इन वर्णनों का आशय[२] है कि अपने शरीर के भीतर ऊर्ध्वनाल वाले अधोमुख हृत्-पुण्डरीक को ऊर्ध्वमुख, विकसित, अष्टदल वाला तथा कर्णिकायुक्त ध्यान धरे। कर्णिका में क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के मण्डल को रक्खे। इस अग्नि के भीतर आनन्दकन्द श्रीवृन्दावनचंद्र वनमालधारी की मन-मोहिनी मूरति का ध्यान धरे। भगवान् के इस सुहावने रूप का जैसा वर्णन भागवत में मिलता है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

ध्यान—किसी वस्तु विशेष में अनुस्यूत रूप से मन धारणा धारण करे। प्रत्यय की एकतानता हो, तो उसे ध्यान कहते हैं—'तत्रैकतानता ध्यानम्'। भागवत में ध्यान के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। सारांश यही है कि जब हृत्कर्णिका में भगवान् के समग्र शरीर की धारणा निश्चल तथा ठीक हो जाय, तब प्रत्येक अङ्ग का ध्यान करना चाहिये। अङ्गों का क्रम 'पादादि यावत् हसितं गदाभृतः' (चरणों से लेकर हँसते हुए मुख तक) है। इनका वर्णन तीसरे स्कन्ध के अट्ठाईसवें

२. श्रीमद्भागवत ११।१४।३६, ३७

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n248/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय में देखने ही योग्य है। भगवान् के पैर के ध्यान से आरम्भ कर ऊपर बढ़ता जाय और अन्त में मुख की मन्द मुसुकान के ऊपर अपना ध्यान जमा दे—

सञ्चिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्॥
(३।२८।२१)

'उत्तम प्रकार से भगवान् के उस चरण-कमल का ध्यान करे जो चरण-कमल वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल के चिह्नों से युक्त है तथा जिसने अपने ऊँचे उठे हुए लाल-लाल नखों की ज्योत्स्ना से सत्पुरुषों के हृदय के अन्धकार को दूर किया है।'

× × ×

समाधि—ध्यान के बाद ही समाधि का स्थान है। उस समय भक्ति से द्रवीभूत हृदय, आनन्द से रोमांचित होकर, उत्कण्ठा से आँसुओं की धारा में नहानेवाला भगवान् का भक्त अपने चित्त को ध्येय पदार्थ से उसी भाँति अलग कर देता है जिस प्रकार मछली के मारे जाने पर मछुआ बडिश (काँटे) को अलग कर देता है—'चित्त-बडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते'। इस समय निर्विषय मन अर्चि की तरह गुण-प्रवाह से रहित होकर भगवान् में लय प्राप्त कर लेता है—ब्रह्माकार में परिणत हो जाता है (भाग० ३। २८। ३४–३८)।

'इस प्रकार भगवान् श्रीहरि में जिसका पूर्ण प्रेम-भाव हो गया है, जिसका हृदय भक्ति से द्रवीभूत हो गया है, प्रेमानन्द से जो पुलकित हो उठा है, जो बारंबार उत्कण्ठा से उत्पन्न हुई अश्रुधारा में नहाता रहता है, वह उस चित्तरूप बडिश (मछली पकड़ने के काँटे) को भी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n249/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे धीरे-धीरे छोड़ देता है। संसार का आश्रय जिसने छोड़ दिया, जो निर्विषय और पूर्ण विरक्त हो गया, वह मन बत्ती जल जाने पर दीप-शिखा के महज्ज्योति में मिलने के समान निर्वाणपद को प्राप्त होता है। त्रिगुण का प्रवाह जिससे हट गया ऐसा वह पुरुष अपने सिवा और कोई व्यवधान नहीं देखता हुआ अखण्ड आत्म-स्वरूप को प्राप्त होता है। वह पुरुष मन की इस चरम-निवृत्ति से सुख दुःख के बाहर उस महिमा में लीन हुआ रहता है और आत्म-स्थिति की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ ऐसा पुरुष यद्यपि अपने आपको कर्ता नहीं मानता तथापि सुख दुःख का जो मूल कारण है वह अपने अन्दर देखता है।'

(भाग० ३ । २८ । ३४)

इस योग की यह बड़ी विशेषता मालूम पड़ती है कि यह अष्टाङ्ग-योग भक्ति के साथ नितान्त सम्बद्ध है। वास्तविक योगी केवल शुष्क साधक नहीं है, प्रत्युत भगवान् की उत्तम भक्ति से आप्लाव्यमान हृदय-वाला परम भागवत है। बिना भक्ति के लोगविहित समाधि की निष्पत्ति कथमपि नहीं हो सकती। व्यास जी ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा कि योग का उद्देश्य 'कायाकल्प' नहीं है—शरीर को केवल दृढ़ बनाना नहीं है, प्रत्युत उसका प्रधान ध्येय श्रीभगवान् में चित्त लगाना है, भगवत्परायण होना है—

केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम्।
विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥
नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः।
अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥
योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत् कल्पतामियात्।
तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । २८)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n250/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत का योग के विषय में यही परिनिष्ठित सिद्धान्त प्रतीत होता है कि योगियों के लिये जगदाधार भगवान् में भक्ति के द्वारा जगाने के अतिरिक्त ब्रह्म प्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्म सिद्धये ॥
(श्रीमद्भा० ३। २५। १६)

'अखिल आत्म-स्वरूप भगवान् में लगी हुई भक्ति के समान शिवः पन्थाः' कल्याणकारी मार्ग, योगियों के लिये ब्रह्म-प्राप्ति में और कोई नहीं है।'

———

(४) योग की सार्वभौमता

योगविद्या भारतीय मनीषियों की आध्यात्मिक चिन्तना का सारभूत तत्त्व है। उन्होंने अपनी अन्तः-प्रेरणा तथा बाह्य अनुभूति के बल पर योगविद्या के सिद्धान्तों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर रखा है। योग हमारे यहाँ केवल व्यावहारिक रूप में ही प्रतिष्ठित नहीं है, प्रत्युत यह विद्या है, शास्त्र है और दर्शन है। हमारे आध्यात्मचिन्तकों ने गम्भीर अध्ययन के सहारे इसके रहस्यों का पूर्ण उद्घाटन किया है। उससे हमारा परिचय भी है, परन्तु इसका प्रसार अन्यत्र भी कम नहीं है। ऐसा शायद ही कोई धर्म होगा, जिसके संस्थापक तथा उच्च अनुयायियों ने इस विद्या का अभ्यास व्यावहारिक ढङ्ग से न किया हो। इस प्रकार योग सार्वभौम अभ्यास है। तथ्य तो यह है कि योग के अभ्यास के बिना मानस की न तो ग्रन्थियाँ खुलती हैं और न वह उस स्तर पर पहुँचता है, जहाँ अध्यात्म का मनन तथा चिंतन सहज हो जाता

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n251/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसीलिए प्रत्येक धर्म के आचार्य ने योग का अभ्यास किया तथा उसके बल पर ही वे अपने वातावरण से ऊपर उठकर ऐसे धर्म तथा दर्शन के संस्थापन में कृतकार्य हुए, जिसका प्रभाव उनके जीवन के बाद भी संसार में बना रहा तथा आज की किसी न किसी प्रकार से वह उस धर्म के अनुयायियों को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करता है। मुसलमानी तथा इसाई धर्म इस व्यापक नियम के अपवाद नहीं हैं।

मुहम्मद साहब भी योग के अच्छे अभ्यासी थे। वे पहले तो बहुत ही व्यापारकुशल व्यक्ति थे। परन्तु पीछे वे अध्यात्म के अच्छे चिन्तक सिद्ध हुए। इसके लिए उनकी साधना भी विशेष थी। दाराशिकोह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिसाल-ए-हकनुमा' में इस बात का जिक्र किया है कि "मुवम्मद साहब अपनी ऊँटनी पर चढ़कर जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे, तब उस पर बैठे-बैठे वे ध्यान का अभ्यास किया करते थे। खजूर के पास पहुँचकर वे अपनी ऊँटनी को खड़ा कर देते थे, परन्तु उनका शरीर इतना भारी हो जाता था कि वह उनका बोझ नहीं सह सकती थी और वह धम्म से बैठ जाती थी।" हमारे ग्रन्थों में 'गरिमा' नामक सिद्धि का उदाहरण माना जा सकता है। ध्यान करते-करते शरीर इतना भारी हो जाता है कि दोनों पैर शरीर को सँभाल नहीं सकते। इसका नाम है गरिमा सिद्धि। मुहम्मद साहब के जीवन के विषय में इसी प्रकार की अन्य घटनाएँ उल्लिखित हैं, जो उनके योगाभ्यास की प्रमाणभूत मानी जा सकती हैं।

सूफियों की साधना में भी ध्यान का विशेष महत्त्व है। जब शिष्य गुरु के पास उपदेश के लिए जाता था, तब गुरु उसे कह देता था कि 'जाओ, अपनी माशूका को खोज निकालो।' चेला देश-विदेश में इसी खोज में निकल पड़ता था और सबसे सुन्दरी को, जो उसे मिलती थी, अपनी प्रियपात्री बनाता था। जब वह गुरु के पास आता था, तब

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n252/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु उसे एकान्त स्थान में बैठाकर उसके ध्यान करने का उपदेश देता था। बस क्या था ? वह आसन पर डटकर अपनी प्रियपात्री के ध्यान में निमग्न हो जाता था। प्रियपात्री के साथ उसका साक्षात्कार भी एक ही बार होता था। उसके बाद न तो उसे भेंट होने की सम्भावना रहती और न कोई आवश्यकता ही होती थी। ध्यान की पूर्णता तथा परिपक्वता होने पर उसे अपनी इष्टसिद्धि हो जाती थी। इस प्रकार सूफीमत में ध्यान तथा धारणा का पूरा उपयोग होता था।

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह स्वयं बड़े योगी तथा सिद्ध पुरुष थे। उनकी सिद्धि के विषय में अनेक कहानियाँ 'न्यू टेस्टामेण्ट' (नया करार) में उनके विभिन्न जीवनचरितों में उल्लिखित की गयी हैं। यह तो प्रसिद्ध है तथा आजकल ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है कि उन्होंने अपनी साधना के समय को भारत के सिद्धों के सत्सङ्ग में उनके उपदेशानुसार बिताया था। ईसाई मत तथा बुद्ध मत में अतिशय साम्य का रहस्य इसी घटना के ऊपर आश्रित बतलाया जाता है। ईसा को योग से घनिष्ठ परिचय था। ईसाई धर्म में दो प्रधान भेद हैं—रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट, जिनमें प्रोटेस्टेण्ट लोग अधिकतर बुद्धिवादी हैं। अतएव उनमें हृदयपक्ष का प्रबल अभाव है और भक्तिभावना की वह दिव्य धारा, जो मानवों के हृदयों को विशुद्ध तथा सरस बनाती है, उनमें कम प्रवाहित होती है। रोमन कैथोलिक धर्म में हृदयपक्ष तथा भक्तियोग का प्राबल्य तथा प्राधान्य है, इसीलिए इसकी उपासना में योग का विशेष स्थान है। १६वीं शती में इस धर्म में एक प्रभावशाली सुधारक तथा प्रचारक का उदय हुआ, जिसने अपनी तपस्या तथा साधना के द्वारा इस धर्म को उन्नति की ओर अधिक बढ़ाया। उनका नाम है इगनेशियस लायला और उनके द्वारा स्थापित सुधारक समुदाय का नाम है 'आर्डर आफ जेशुइट'। मध्ययुग में इस समुदाय के कारण रोमन कैथोलिक मत का खूब ही प्रचार हुआ और वह नवीन

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n253/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साह, अदम्य स्फूर्ति तथा बड़े जोश के साथ आगे बढ़ा। इस मत के पादरी अपने आपको 'ईसा का पुत्र' (देवपुत्र, 'सन आफ जीसस') के नाम से पुकारते हैं। लायला के स्पेनिश भाषा में दिये गये उपदेशों के आधार पर उनकी योगसाधना का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

लायला का जन्म स्पेन के उच्च वंश में १४९१ ईस्वी में हुआ था। अध्ययन विशेष नहीं था, पर देशसेवा की भावना विशेष थी। सेना में सैनिक बनकर लड़ाइयाँ लड़ीं। बुरी तरह घायल हुए। धर्म की सुप्त भावना जगी और तात्कालिक ईसाई मत में सुधार की भावना के लिए वे जागरूक बन गये। घोर तपस्या तथा साधना की। नवीन सुधारक मत को जन्म दिया, जिसने ईसाई मत की उन्नति में एक नवीन क्रांति उत्पन्न कर दी। उनके योगविषयक उपदेश बड़े मार्के के हैं। ईसाई मत के साधक को ईसामसीह के चरित की घटनाओं को वास्तव तथा ऐतिहासिक समझ कर उनकी भावना स्वयं करनी चाहिए। भावना तथा ध्यान करने के लिए उनके जीवन को कई भागों में बाँट देना चाहिए। जन्म से लेकर क्रास (सूली) पर बलिदान तथा पुनरुज्जीवन तक की घटनाओं का एकांत में इतना अधिक ध्यान करना चाहिए कि साधक के शरीर पर ईसा के रक्तरंजित घावों के चिह्न तक निकल आयें। साधना का लक्ष्य है साधक का ईसा के साथ तादात्म्य, एकाकारता एवं अभिन्नता। इसका फल पाशविक वृत्तियों का नियन्त्रण तथा दैवी वृत्तियों का जागरण होता है। लक्ष्य तो यही होता है, जिसकी सिद्धि के लिए एक विशिष्ट साधना का उपयोग किया जाता है।

लायला ने मन की वृत्तियों पर नियन्त्रण के लिए उनके क्रमिक विकाश का वर्णन किया है। उससे क्षुद्र वृत्तियों का निवारण हो जाता

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n254/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा वृत्तियों का परिशोधन और उदात्तीकरण होता है। मन की ७ दशाएँ होती हैं—(१) क्षोभ—जिसमें मन बाहर से आनेवाले प्रभावों से प्रभावित तथा इतस्ततः संचालित होता है। (२) **एकाग्रता**—जिसमें मन विचार में संलग्न होता है। (३) **ध्यान**–(मेथिटेशन)—इस दशा में उस पदार्थ की परीक्षा की जाती है, जिसमें मन संलग्न होता है। (४) **धारणा** (कण्टेम्प्लेशन)—जिसमें मन वस्तु के भीतर प्रवेश करता है तथा उसके भीतर निवासी बन जाता है। (५) **पवित्रीकरण** (सैन्क्टीफिकेशन)—ध्यान की वस्तु के साथ सम्पर्क में आने से मन भी पवित्र तथा विशुद्ध बन जाता है। (६) **एकीकरण** (यूनिफिकेशन)—ध्येय वस्तु के साथ चित्त का एकाकार या संयुक्त हो जाना। (७) **तादात्म्य** (मार्टिफिकेशन)—जिसमें पृथक् होने की भ्रान्ति छूट जाती है तथा चित्त ध्येय वस्तु के साथ एकरूप बन जाता है। इस दशा में ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान का एकीकरण सिद्ध हो जाता है। इसी की उन्नति होने पर साधक अपने को ईसा समझने लगता है तथा उनके द्वारा अनुष्ठित कार्यों के करने का अधिकारी बन जाता है।

व्यावहारिक साधना में **प्रार्थना** के तीन प्रकार या सोपान बतलाये गये हैं। प्रथम प्रकार में साधक को शरीर के पाँचों इन्द्रियों, आत्मा की शक्तियों तथा सात पापों का सफलतापूर्वक ध्यान करना पड़ता है। इसे चलते, बैठे, खड़े या घुटने टेककर या लेटे हुए करने का नियम है। दूसरा सोपान है प्रार्थना के प्रत्येक पृथक् पदों के अर्थ पर ध्यान देना। चाहे बैठकर या घुटने टेककर या आँखें बन्दकर या किसी चुने हुए स्थान को दृढ़ता से देखकर ध्यान करना चाहिए। उस समय न तो विचारों को कहीं बाहर घूमने देना चाहिए न आँखों को कहीं अन्यत्र लगाना चाहिए। तीसरा सोपान है प्राणों का नियमन। नियमित समय से साँस लेना या छोड़ना और दोनों के बीच में प्रार्थना के प्रत्येक शब्द

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n255/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को धीरे-धीरे हृदय में कहना चाहिए। ईसाइयों का प्रार्थना-वाक्य काफी बड़ा होता है, जिसके प्रत्येक शब्दों का अर्थ समझकर हृदय में धीरे-धीरे उच्चारण करना चाहिए अर्थात् प्राणायाम तथा मन्त्र का उच्चारण एक साथ होना चाहिए। प्रार्थना का यही पर्यवसान तथा अन्तिम रूप होता है।

लायला की साधना का यह संक्षिप्त रूप है। इसके मनन करने से हिन्दूधर्म की साधना के साथ इसकी समता स्पष्ट प्रतीत होती है। इसके भीतर योग के विधान का पूर्ण संकेत है। इस प्रकार ईसाई मत के अन्य सम्प्रदायों में भी बड़ी कड़ी साधना होती है। इससे योग के सार्वभौम रूप का स्पष्ट परिचय किसी भी साधक को मिल जाता है।

---

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n256/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्वैत वेदान्त

(५) सिद्ध पुरुषों की अलौकिकता

सिद्ध पुरुषों का जीवन अलौकिक हुआ करता है। साधारण जन का जीवन-चरित्र जिस मार्ग से प्रवाहित हुआ करता है, सिद्धों का जीवन उस मार्ग से प्रवाहित न होकर किसी अन्य पन्थ का आश्रय लिया करता है। यही कारण है कि उसके गूढ़ रहस्यों के समझने की योग्यता साधारण लोगों में होती ही नहीं। हो भी तो कैसे हो, संसार के सामान्य लोग तो 'जायस्व, म्रियस्व' की कोटि में ठहरे—जनम लेना, किसी प्रकार पेट की पूर्ति करने के लिए उद्योग करना और पीछे इस संसार से अपनी लीला समेट लेना—यही तो जनसमूह का सामान्य विशिष्टतारहित जीवन है। उनमें इतनी क्षमता कहाँ कि वे किसी असामान्य व्यक्ति के असामान्य जीवन की ठीक ठीक परीक्षा कर सकें। साधारण बुद्धि से असाधारण चरित्र परखा ही नहीं जा सकता। सिद्धों के जीवन का रहस्य बड़ा ही निगूढ़ होता है—पर बुद्धि उसके भीतर प्रवेशकर उसकी अलौकिकता की भी पर्याप्त समीक्षा कर सकती है।

इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त की ओर हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर अपना अभिप्राय अभिव्यक्त करना चाहते हैं। शङ्कर-दिग्विजय में शङ्कराचार्य के विषय में अनेक घटनाएँ ऐसी भी वर्णित हैं, जो साधारणतः अलौकिक अथवा अद्भुत कही जा सकती हैं। शङ्कर ने अपनी वृद्धा माता के लिए नदी का प्रवाह बदल दिया,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n257/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे वह उनके गाँव के पास ही बहने लगी। कामशास्त्र के रहस्यों को जानने के लिए उन्होंने राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया आदि अनेक घटनाएँ इसी कोटि की हैं। ऐसी घटनाओं के विषय में लेखक की कैसी भावना होनी चाहिए? इतिहास का दम भरनेवाले अनेक आलोचकों का कहना है कि ये सब सम्भावना से परे घटनाएँ हैं, अतः इन सब को शङ्करचरित्र से निचोड़कर बाहर फेंक देना चाहिए। इन घटनाओं से रहित आचार्य का जो चरित्र-कीर्तन होगा, वही वास्तव मानवोचित जीवनवृत्त होगा। इन अविश्वसनीय घटनाओं के रखने का यह बुरा परिणाम होता है कि पूरे जीवनचरित पर ही पाठकों की अनास्था हो जाती है—उस भाग को भी वे अनादर की दृष्टि से देखने लगते हैं जो वास्तवकोटि के बाहर नहीं जाता। दूसरा पक्ष उन आलोचकों का है जो ऐसी घटनाओं के समावेश के पक्षपाती हैं। यह प्रश्न बड़ा व्यापक है। यह केवल आचार्य शङ्कर के जीवनवृत्त से ही सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत धार्मिक संसार के जो महान् तथा महनीय विभूतियाँ हैं, उन सबके विषय में यही प्रश्न सदा जागरूक रहता है। कुछ जीवनचरित-लेखक इन अद्भुत घटनाओं को एकदम निकाल देने के पक्ष में हैं, वे किसी भी धार्मिक नेता के चरित्र को काटछाँटकर उसे जनसाधारण की जीवनी के सतह पर लाने के पक्षपाती हैं। वे किसी भी अलौकिक घटना का निवेशकर अपने ग्रन्थ को इतिहासविरुद्ध बनाना नहीं चाहते। परन्तु अलौकिक घटनाओं का सन्निवेश क्या इतिहासविरुद्ध है?

भक्त लोग महात्माओं के चरित को ऊँचा दिखलाने के पक्षपाती होते हैं। वे ऐसी घटनाओं का भी वर्णन किया करते हैं, जो कभी सम्पन्न नहीं हुईं, जिन्हें उनके चरितनायकों ने कभी नहीं किया। समय के प्रवाह के साथ साथ अनेक अद्भुत घटनाएँ धार्मिक नेताओं के जीवन से संश्लिष्ट होती चली आती हैं, जिन्हें अन्धविश्वासी भक्तों

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n258/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अतिशय भक्तिभावना ही कल्पित कर लेती है। ऐसी घटनाओं को निकाल बाहर करना प्रत्येक जीवनचरित-लेखक का पवित्र कर्तव्य है। परन्तु इन्हें इस कारण हटा देना कभी न्यायसङ्गत नहीं है कि ऐसी घटनाएँ कभी भौतिक जगत् में घटित ही नहीं हो सकतीं। शङ्कराचार्य के परकाय-प्रवेश की घटना को उनकी जीवनी से इस कारण निकाल देना कथमपि उचित नहीं है कि ऐसी घटना अप्राकृतिक है, अस्वाभाविक है, लोक में घटित होनेवाली घटनाओं से नितान्त विलक्षण तथा विचित्र है। ईसामसीह के जीवनचरित के लेखकों के सामने भी यही विषम समस्या थी—'बाइबिल' में उनके विषय में जो अद्भुत बातें वर्णित हैं, उन्हें ग्रहण करना या नहीं। हम उन लोगों की बात नहीं कहते जो ईसा के ऐतिहासिक व्यक्ति होने में ही सन्देह करते हैं। हम उन चरितलेखकों की बात कहते हैं, जो उनकी ऐतिहासिकता में विश्वास करते हैं और इतिहास की कसौटी पर उनके जीवन की घटनाओं को कसते हैं। उन लोगों ने इन अलौकिक घटनाओं का वर्णन करना ऐतिहासिक चरित की सीमा के भीतर माना है।

सच्ची बात यह है कि 'अद्भुत' घटना और 'अप्राकृतिक' घटना एक ही वस्तु नहीं है। प्रकृतिविरुद्ध घटना में हम विश्वास नहीं कर सकते। जो घटना प्रकृति के नियमों का तिरस्कार करती है, वह हमारे विश्वास का भाजन नहीं बन सकती। परन्तु जिसे हम अद्भुत घटना कहने के अभ्यासी हैं, वह अप्राकृतिक घटना नहीं होती। दिन-प्रतिदिन होनेवाली साधारण घटना से जहाँ कहीं-कहीं थोड़ी भी भिन्नता दीख पड़ी, वहाँ हम 'अप्राकृतिक' चिल्ला उठते हैं, परन्तु बात कुछ दूसरी है। विज्ञान के सतत उद्योग और अनुशीलन से प्रकृति के जो नियम उद्घाटित हुए हैं या हो रहे हैं, वे तो साधारण अंशमात्र हैं। प्रकृति का साम्राज्य विशाल है, उसके नियमों की भी इयत्ता नहीं है। जिसे हम आज अप्राकृतिक कहकर तिरस्कार करते हैं, उसे ही कल विज्ञान

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n259/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के नियमों का वशीभूत बतलाता है। आज की अलौकिक घटना कल ही लोकानुगत बन जाती है। जिसका हम स्वप्न में भी खयाल नहीं करते थे, वही घटना नये अनुशीलन, अध्ययन, खोज तथा यन्त्रों की सहायता से आज साधारण अभ्यस्त बन जाती है। ऐसी विषम दशा में आधुनिक विज्ञान के द्वारा अभीतक अमान्य घटनाओं को हम 'अप्राकृतिक' कहकर अनादृत नहीं कर सकते, क्योंकि इस नानात्मक जगत् के जिन नियमों की अभिव्यक्ति अभी तक हो पायी है, वह तो समुद्र में एक बूँद के समान है। उदाहरण के लिए हम मनुष्य को सद्यः पत्थर बन जाने को अप्राकृतिक कहते हैं। अहल्या के पत्थर होने में हमारा इसी कारण विश्वास नहीं है, परन्तु हम लण्डन की प्रधान सड़क पर कुछ वर्ष पूर्व होनेवाली उस घटना को भूल नहीं सकते, जिसमें अपने घर से कोट, पैण्ट पहनकर आफिस में जानेवाला भला-चङ्गा अङ्गरेज सड़क पर गिरा और गिरते ही प्रस्तरमय हो गया! हम साधारणतः नींद लेने को जीवन के लिए आवश्यक समझते हैं, परन्तु ऐसे व्यक्ति विद्यमान हैं, जिन्हें न तो किसी ने भोजन करते देखा और न किसी ने, सदा पार्श्ववर्ती रहने पर भी, पलक गिराते देखा। प्रकृति के विशाल नियमों के अज्ञान के कारण ही हम इन्हें अद्भुत, विचित्र तथा विश्वासानर्ह समझते हैं।

अभी चार-पाँच वर्ष हुए 'विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता' के अध्यक्ष एक अङ्गरेज सज्जन ने पटना की 'अनुशीलन-समिति' के सामने तिब्बत में अनुभूत घटनाओं की सत्यता की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनके अनुभव साधारणतया बड़े विचित्र हैं। उन्होंने सिद्ध लामाओं के प्रयोगों का आँखोंदेखा वर्णन किया है। पचासों मन वजन वाली चट्टान, जो सैकड़ों आदमियों के लगने पर भी टस से मस नहीं होती थी, केवल एक विचित्र काले लोशन के लगाने पर इतनी हल्की हो गयी कि एक आदमी के जोर लगाने पर भी लुढ़कने लगी।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n260/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक लोशन सूखता नहीं, तब तक यह शक्ति बनी रहती है। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को कुछ देर तक दबा रखने की सी शक्ति किसी पदार्थ में रहती है। आकर्षण शक्ति तथा उसे दबाने वाली शक्ति दोनों प्राकृतिक जगत् की सच्ची चीज हैं, परन्तु अज्ञानवश हम पहले में विश्वास करते हैं, दूसरे में नहीं। एक अन्धकारपूर्ण गुफा में जाने पर काँसा के बने घण्टे को किसी धातु के बने डण्डे से बजाते ही चारों ओर प्रकाश—बिजली की बत्तियों के जलने सा प्रकाश—फैल जाने का उल्लेख उक्त साहब ने किया है। ऐसी लताओं का उल्लेख उन्होंने किया है, जो नदी के एक पार से बढ़ते बढ़ते दूसरे पारतक अल्प समय में ही बढ़ जाती हैं और वे इतनी दृढ़ होती हैं कि वे पुल का काम करती हैं। उनके सहारे पहाड़ी नदियों को भली भाँति पार किया जा सकता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में सुग्रीव ने ऐसे ही 'लता-सेतु' का वर्णन किया है। ऐसी बातें प्रकृति के नियमों से कभी संघर्ष नहीं करतीं। अतः ये सर्वथा विश्वासयोग्य है। आचार्य के जीवन की अनेक घटनाएँ इसी कोटि की हैं।

आचार्य शङ्कर एक महापुरुष थे, साधारण प्राणियों की कक्षा से वे बहुत ही ऊपर उठे हुए थे। बत्तीस साल के छोटे जीवन में उन्होंने वे कार्य कर दिखलाये, जो उनसे चौगुनी उम्रवाला भी व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता। उनका माहात्म्य इसी में है। उनकी महापुरुषता की अभिव्यक्ति इन्हीं घटनाओं में है। यदि इन्हें इतिहास की भ्रान्त धारणा के अनुसार काट-छाँटकर साधारण 'जायस्व म्रियस्व' की कोटि में ला दिया जाय, तो क्या यह उनके साथ घोर अन्याय न होगा? इतिहास की सच्ची भावना हमसे यही चाहती है कि हम उन घटनाओं में विश्वास रखें या जीवनवृत्त में अवश्य उल्लिखित करें, जिनकी सचाई के विषय में आधारग्रन्थों का प्रबल प्रमाण उपस्थित हो। महापुरुषों की महनीयता इसी विषय में है। यदि वे भी हमारे साधारण जैसा उत्पन्न

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n261/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए, कतिपय दिनों तक पेट पाला और अन्त में इस संसार से बिदाई ले ली, तो उनके चरित में महत्त्व ही क्या रहा ? ऐतिहासिक दृष्टि से यही मार्ग अनुकरणीय है, यही शैली उपादेय है। इस प्रकार सिद्ध पुरुषों के जीवनचरित को हम अलौकिक भले मानें, परन्तु वे अप्राकृतिक नहीं हैं। पूर्व चाहे पश्चिम, सर्वत्र यही नियम जागरूक है।

---

(६) जगद्गुरु श्रीआद्यशङ्कराचार्य

वैशाख शुक्ल पञ्चमी आचार्य शङ्कर की जयन्ती की तिथि है। उसी तिथि को आचार्य इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। आजकल राजनीति का युग है। राजनीति क्षेत्र की सूली को भी महत्त्व देने में हम अग्रसर रहते हैं, परन्तु धार्मिक क्षेत्र के सरस सहकार के तिरस्कार करने में हम तनिक भी सङ्कोच नहीं करते, यह दुर्भाग्य का विषय है। परन्तु आचार्य की जयन्ती भुलाने की घटना नहीं है। उनका जीवनचरित परमार्थ पथ पर चलनेवालों के लिए बहुमूल्य संबल है तथा ऐहिक जीवन में सफलता पाने के इच्छुकों के लिए भी मार्गदर्शक है। सत्य बात तो यह है कि शङ्कराचार्य की जयन्ती भारतवर्ष के लिए राष्ट्रीय पर्व है। आश्रमधर्म की मर्यादा तथा वैदिकधर्म के संरक्षण के निमित्त हमारे आचार्य शङ्कर ने जितना अनमोल काम किया है, उसके लिए

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n262/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें उनका परम कृतज्ञ होना चाहिए। परन्तु इतनी ही बात नहीं है। आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतमार्ग समग्र संसार का व्यावहारिक धर्म है। वह केवल हिंदुओं के लिए ही श्रद्धा का पात्र नहीं है। विशेषतः आजकल, जब संसार अभूतपूर्व सङ्कट से होकर गुजर रहा है जब अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का सहारा कर रहा है, रोटी के नाम पर करोड़ों अबोध नागरिकों का बलिदान होता है, तब अद्वैत के परस्पर भ्रातृभाव, मैत्री तथा शांतजीवन के उपदेशों को पढ़ने तथा दुहराने की विशेष आवश्यकता है। इसीलिए इस वर्ष आचार्य शङ्कर की जयन्ती मनाने की उपयुक्तता अत्यधिक है।

आज से लगभग तेरह सौ वर्ष पहले शङ्कर का जन्म केरल प्रान्त के कालटीग्राम में नम्बूदरी ब्राह्मण के घर हुआ था पिता का नाम था शिवगुरु तथा माता का सती देवी। उनके जीवन की घटनाएँ उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं। वे इतनी प्रसिद्ध हैं कि यहाँ उनके उद्धरण की आवश्यकता नहीं है। एक ही श्लोक में उनका अलौकिक जीवन इस प्रकार है—"अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्। षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥" आठवें वर्ष उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन समाप्त कर दिया, बारहवें वर्ष वे सब शास्त्रों के पण्डित बन गये, सोलहवें साल उन्होंने भाष्यों की (ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदों पर भाष्यग्रन्थों की) रचना की और ३२ वें वर्ष वे कैलासवासी हो गये। बस इस भारतभूमि पर उन्होंने केवल ३२ वर्ष ही बिताये परन्तु इतने थोड़े वर्षों में उन्होंने वह कार्य कर दिखलाया, जिसे उनसे चौगुनी उम्र पानेवाला भी व्यक्ति नहीं कर पाता। प्रश्न वर्षों का नहीं है, अपितु शक्ति का है, सामर्थ्य का है। वे अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी कारण आचार्य का कार्य इतना व्यापक अथच उपयोगी हुआ है कि तेरह सौ साल बीत जाने पर भी उनकी उपयोगिता में किसी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n263/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की कमी नहीं होने पायी। विवेचक बुद्धि से किये गये कार्यों की उपयोगिता इसी प्रकार होती है।

शङ्कराचार्य पण्डित थे; क्या इस विषय में किसी को तनिक भी सन्देह हो सकता है? जिन्होंने उनके शाङ्करभाष्य के केवल एक अंश (तर्कपादभाष्य) का अध्ययन किया है, वे भलीभाँति जानते हैं कि उनका तर्क पैनी तलवार से भी तेज था। बौद्ध तथा जैन पण्डितों की युक्तियाँ बड़े मार्के की हैं, परन्तु शङ्कर ने उनका खण्डन इतनी मार्मिकता तथा युक्तिमत्ता के साथ किया है कि उनके भाष्य के पढ़ने में इन वेदबाह्यों के तर्कों में हमारी गहरी अनास्था उत्पन्न हो जाती है। वे वेदविरोधियों के मूल अंश को ही पकड़ते हैं और उसका खण्डन होते ही अन्य सिद्धान्त स्वतः भूतल पर लोटने लगते हैं। शङ्कर प्रतिपादन करते हैं बड़ी ही ऊँची आध्यात्मिक बातों का, परन्तु इतनी सुबोध भाषा में कि पाठकों को विषय की कठिनता का तनिक भी बोध नहीं होता। आचार्य के पाण्डित्यपूर्ण खण्डनों का फल तो हमारे सामने प्रत्यक्ष है। जिन बौद्ध पण्डितों की पहले तूती बोलती थी, उन्होंने मौनावलम्बन ही अब अपना परम धर्म समझा। जो धर्म भारत के अधिकांश प्रान्तों में व्यापक प्रभाव जमाये हुए था, उसे मुँह की खानी पड़ी और वह धीरे से यहाँ से हटकर अन्य देशों के आश्रय में जाकर ही जीता बच सका। इतिहास के वेत्ता इसके साक्षी हैं। बौद्ध पण्डितों में अब इतनी शक्ति न थी कि वे शङ्कराचार्य के खण्डनों का उत्तर देकर अपने सिद्धान्तों की यथार्थता सिद्ध कर सकते। शङ्कर ने स्वयं ही वेदांत पर ग्रन्थों का प्रणयन किया, अपितु अपने शिष्यों के द्वारा पांडित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना करायी। अद्वैत वेदान्त के विपुल साहित्य के उत्पादन में शङ्कर का व्यापक प्रभाव आज भी दृष्टिगत होता है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n264/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शङ्कर कवि थे। उन्होंने अनेक सरस स्तोत्रों की रचना की है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही परम तत्व है परन्तु व्यवहार के लिए सगुण ब्रह्म की उपासना नितान्त उपयोगी है। इसीलिए शङ्कर ने अनेक वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ लिखी हैं। ये स्तोत्र संस्कृतभक्ति-साहित्य के सर्वस्व हैं। आचार्य की काव्यप्रतिभा अलौकिक है, उनकी कविता में इतनी मोहकता तथा मादकता है कि उसे सुनते ही श्रोताओं का चित्त अन्य विषय से खिंचकर आनन्द-सरिता में गोते लगाने लगता है। "भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, भज गोविन्दं मूढमते। प्राप्ते सन्निहिते मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे।" इस सुप्रसिद्ध 'भज गोविन्दं' 'स्तोत्र में इतना माधुर्य है कि हम इस दुःखबहुल जगत् से बहुत ऊपर उठकर किसी आनन्दमय दिव्य लोक में जा विराजते हैं। उनकी काव्यकला के प्रदर्शन के लिए 'सौन्दर्यलहरी' ही पर्याप्त है। इसमें पांडित्य तथा वैदग्ध्य का अद्भुत मिलन है। तान्त्रिक ज्ञान के साथ काव्यसुषमा का अभूतपूर्व सम्मिलन है। एक बात ध्यान देने की है। वैष्णवपन्थ के भक्तिवादी आचार्यों—रामानुज वल्लभ, निम्बार्क आदि—के पांडित्य की गहराई में कमी नहीं परन्तु उनकी रचनाओं में वह माधुर्य तथा साहित्यिक चमत्कार नहीं दीख पड़ता, जो आचार्य की रचनाओं में है। शङ्कर का बाह्य रूप ज्ञानवादी ठोस दार्शनिक का है, परन्तु उनका हृदय भक्ति से स्निग्ध है, उपासना की सिद्धि से नितान्त मञ्जुल तथा कोमल बना हुआ है। साधारण आलोचकों की दृष्टि उनके बाहरी रूप पर जाकर ही ठिठक जाती है, उनके हृदय को पहचानने का यत्न नहीं करती। वे गद्य के भी आचार्य हैं। उनके एक वाक्य पर मैं गद्य के बड़े बड़े पोथों को निछावर करने को तैयार हूँ। वह सरस वाक्य है—"नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति" (अर्थात् जो व्यक्ति पैरों से भागने में समर्थ है, उसे घुटनों से रेंगना शोभा नहीं देता)।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n265/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शङ्कर उच्चकोटि के अध्यात्मवेत्ता थे। अद्वैत मार्ग तो वेद की संहिताओं में ही निर्दिष्ट है।" आजकल के विद्वानों की यह भ्रान्त धारणा है कि संहिताओं में कर्मकाण्ड का ही वर्णन है, उपनिषदों में ही ज्ञानकाण्ड प्रादुर्भूत हुआ है, बात ठीक विपरीत है। संहिताओं में ही अद्वैततत्व के बीज भरे पड़े हैं, जिनका उद्बोधन तथा पल्लवीकरण उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। गौड़पादाचार्य ने 'माण्डूक्यकारिकाओं' में मायावाद का वर्णन किया है, परन्तु आचार्य ने अपने भाष्यों में इस सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन अनेक पहलुओं से किया है। अद्वैत को तर्क के ऊपर प्रतिष्ठित करने का समस्त श्रेय शङ्कर को ही मिलना चाहिए। इस प्रसंग में यह भूलना न चाहिए कि 'अद्वैत' विद्वानों की मनोरम कल्पना का विलासमात्र नहीं है, अपितु समग्र संसार के लिए उपयोगी व्यावहारिक धर्म है। दाराशिकोह ने 'रिसाल-ए-हकनुमा' में स्पष्ट लिखा है कि 'कुरान' के सिद्धांतों को समझने की कुंजी अद्वैतप्रतिपादक उपनिषद् है, जिनकी ओर 'कुरान' में साफ तौर से संकेत किया गया है। ईसाई मजहब को भी समझने में अद्वैत उपयोगी है। ईसा का उपदेश है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो, परन्तु उससे हम प्रेम क्यों करें? उससे हमारा कौन मतलब सिद्ध होगा? इन प्रश्नों का उत्तर 'बाइबिल' नहीं देती। अद्वैत वेदांत इसका उत्तर देता है—आखिर पड़ोसी भी तुम्हारी ही आत्मा है। अतः उससे प्रेम करना अपने से ही प्रेम करना है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त निपट व्यावहारिक धर्म है। इस मत को युक्ति और तर्क, शास्त्र तथा लोक की सहायता से सिद्ध करना आचार्य का महान् कार्य है।

आचार्य शंकर व्यवहार-कुशल यथार्थवादी थे। यही तो उनकी भारी विशेषता है। ऊँचे अध्यात्मवेत्ता होने पर भी वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल हैं। वेद तथा धर्म के रक्षणकार्य को भविष्य में सुचारुरूप से चलाने के लिए उन्होंने परोपकारपरायण संन्यासियों को संघरूप में

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n266/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघटित किया तथा भारत के चारों धामों में उन्होंने चार मठों की स्थापना की—शृंगेरीमठ (दक्षिण भारत मैसूर में), गोवर्धनमठ (जगन्नाथपुरी में), शारदामठ (द्वारिका में) तथा ज्योतिर्मठ (बदरी-धाम—विख्यात नाम जोशीमठ)। इन दोनों संस्थाओं ने आचार्य के उद्देश्यों की पूर्ति अच्छे ढंग से की है। संन्यासी लोग ही भारत के धार्मिक नेता सदा से होते आये हैं। आज भी परोपकारव्रती विद्वान्, शङ्कराचार्यों को आस्तिक हिन्दू जनता अपने धर्म की, वेद की, शास्त्र की मर्यादा-रक्षा करने से परम श्रद्धा के साथ देखती है। १४वीं शताब्दी में जब यवनलोग दक्षिण भारत में वैदिकधर्म के विध्वंस करने तथा हिन्दुओं का उत्पीडन करने पर तुले थे, तब शृंगेरी के अध्यक्ष विद्यारण्य स्वामी ने हरिहर तथा बुक्कराय को उत्साहित कर विजयनगर राज्य की स्थापना में सहयोग दिया। यदि यह राज्य स्थापित न होता, तो दक्षिणभारत में मुसलमानों का आधिपत्य सर्वथा सम्पन्न हो गया रहता। आचार्य ने समग्र भारत को चार खण्डों में बाँटकर उसकी धार्मिक रक्षा का काम इन्हीं पीठाध्यक्षों के सुपुर्द कर दिया था।

इस प्रकार शङ्कराचार्य में हम बहुमुखी प्रतिभा पाते हैं। एक ओर उनमें पाण्डित्य की पराकाष्ठा है, तो दूसरी ओर इनमें सरसता तथा सहृदयता की प्रतिष्ठा है। वे अध्यात्मशास्त्रों के परम निष्णात दार्शनिक थे, साथ ही साथ व्यवहारकुशल यथार्थवादी थे। उनका पवित्र उद्देश्य था जगत् का मंगलसाधन और इसी की पूर्ति में उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। आइये, हम आप मिलकर भारत के इस सच्चे महात्मा के प्रति आज अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें। उनके जीवनचरित को पढ़ें, उनके उपदेशामृत का पानकर अपने जीवन को कृतकृत्य बनायें। 'शंकरं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्। सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥'

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n267/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वैत वेदांत

(७) श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवाद

भारतीय वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों में श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवाद अपना विशेष महत्त्व रखता है। जहाँ शङ्कराचार्यजी अद्वैतवाद का प्रचार करते हुए इस कर्मप्रधान जगत् को मिथ्या बताते हैं, वहाँ श्रीमध्वाचार्यजी जीवन की वास्तविकता को नहीं भूलते हुए, द्वैतवाद का उपदेश देते हुए, असंख्य महापुरुषों की कर्मस्थली इस जगत् को सत्य प्रतिपादित करते हैं। जहाँ शंकर का अद्वैतवाद हमें प्रत्यक्ष दृश्यमान सत्तात्मक वस्तु को भी झूठा समझने के लिये विवश करता है, वहाँ श्रीमध्व का द्वैतमत सच्ची व्यावहारिकता का पल्ला पकड़े हुए तथा जगत् को सच्चा बताता हुआ हमें त्यागमार्गी न बनकर कर्ममार्गी बनने का आदेश देता है। यदि वास्तव में देखा जाय तो शंकर के प्रसिद्ध अद्वैतवाद से इस मत की नितान्त प्रतिकूलता ही इसकी सर्वोपरि विशेषता है।

श्रीमध्वाचार्य के द्वैत-मत की विस्तृत आलोचना प्रस्तुत करने के पूर्व हम इनके मत के सारांश को एक शार्दूलविक्रीडित छन्द में उद्धृत करते हैं—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः
सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा
नीचोच्चभावं गताः।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n268/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला
भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिला-
म्नायैकवेद्यो हरिः ॥

अर्थात्—मध्व-सम्प्रदाय के अनुसार (१) श्रीविष्णु ही सर्वोच्च-तत्त्व हैं; (२) जगत् सत्य है; (३) भेद वास्तविक हैं; (४) जीवगण सब ईश्वर के अधीन हैं; (५) जीवों में तारतम्य है; (६) आत्मा के आन्तरिक सुखों का अनुभव ही मुक्ति है; (७) शुद्ध भक्ति ही उसका साधन है; (८) प्रत्यक्ष आदि तीन प्रमाण हैं; तथा (९) वेदों के द्वारा ही हरि जाने जा सकते हैं। संक्षेप में मध्वाचार्य के ये ही सिद्धान्त हैं। इनमें से प्रत्येक का वर्णन यथास्थान विस्तार से किया जायगा।

प्रमाण-मीमांसा

श्रीमध्वाचार्य के मतानुसार केवल तीन ही प्रमाण हैं (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) शब्द। अन्य प्रमाण इन्हीं तीनों प्रमाणों के अन्तर्भूत हैं।

श्रीमध्वाचार्य ने 'प्रमाण' शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है[१]— (१) यथार्थ ज्ञान और (२) यथार्थ ज्ञान का साधन। पहले को उन्होंने 'केवल प्रमाण' कहा है और दूसरे को 'अनुप्रमाण'। किसी वस्तु का यथार्थ अर्थात् ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना 'केवल प्रमाण' है और जिस वस्तु के द्वारा हमें वह पदार्थ-ज्ञान प्राप्त होता है, अर्थात् जो यथार्थ ज्ञान का साधन है, उसे 'अनुप्रमाण' कहते हैं।

---

१. यथार्थज्ञानं केवलम्। तत्साधनमनुप्रमाणम्॥
(प्रमाणलक्षणम्)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n269/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु के इन्द्रिय के साथ निर्दोष सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष कहते हैं[1]। यदि वस्तु अथवा इन्द्रिय में दोष हो तो उस प्रत्यक्ष के द्वारा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि इन्द्रियाँ विकृत हों अथवा वस्तु अत्यन्त निकट या दूर हो, अत्यन्त छोटी अथवा अत्यन्त बड़ी हो या परिस्थिति अनुकूल न हो, तो प्रत्यक्ष के द्वारा यथार्थ-ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। अतएव प्रत्यक्ष के द्वारा यथार्थ ज्ञान होने के लिये वस्तु तथा इन्द्रिय की निर्दोषता अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्यक्ष सात प्रकार का होता है। पाँच प्रकार का प्रत्यक्ष तो पाँच इंन्द्रियों पर अवलम्बित रहता है, छठा मन पर; और सातवाँ आत्मा अर्थात् साक्षी से सम्बन्ध रखता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के साधनों में भी एक साधन है; इसीलिये इसे साधन या करण भी कहते हैं। जिस प्रकार साधन-रूप कुल्हाड़ी के बिना पेड़ नहीं काटा जा सकता, उसी प्रकार वस्तु तथा इन्द्रिय की सत्ता होने पर भी प्रत्यक्षरूपी साधन के बिना यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा हम इन्द्रियों के सन्निकर्ष में आयी हुई वस्तुओं के ही यथार्थज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। परन्तु जो वस्तुएँ हमारी इन्द्रियों के सन्निकर्ष में नहीं आतीं, उनका यथार्थज्ञान हम कैसे कर सकते हैं? इसलिये श्रीमध्व ने अनुमान प्रमाण को भी माना है। आपके मत से निर्दोष उपपत्ति ही अनुमान है[2]। यह अनुमान दो प्रकार का होता है—(१) स्वार्थानुमान और (२) परार्थानुमान। परार्थानुमान में पञ्चावयव वाक्यों का प्रयोग होता है, जिसका विस्तृत वर्णन न्याय के ग्रन्थों में पाया जाता है।

---

१. निर्दोषार्थेन्द्रियसन्निकर्षः प्रत्यक्षम्। (प्रमाणलक्षणम्).

२. निर्दोषोपपत्तिरनुमानम्। (प्रमाणलक्षणम्)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n270/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमध्वाचार्य का मत है कि परार्थानुमान में जिन पञ्चावयव वाक्यों के प्रयोग का नियम किया जाता है, वह नितांत अशुद्ध है। इन पाँच अवयवों में से चौथा और पाँचवाँ अवयव—अर्थात् उपनय और निगमन—बिल्कुल व्यर्थ हैं। शुद्ध न्याय-पद्धति तो यह बतलाती है कि केवल उतना ही किसी वस्तु का कथन करना चाहिये, जितना ज्ञान के लिये आवश्यक हो। यह बात केवल एक या दो अवयवों के द्वारा की जा सकती हो, तो उतना ही पर्याप्त होगा। श्रीमध्व केवल तीन अवयवों को स्वीकार करते हुए पञ्चावयव के सिद्धांत को नहीं मानते। उनका मत है कि नैयायिकों ने व्यर्थ ही निग्रहस्थानों को इतना अधिक बढ़ा दिया हैं। इसी प्रकार नैयायिकों के द्वारा वर्णित पञ्च हेत्वाभास भी ठीक नहीं हैं। उनका मत है कि नैयायिकों द्वारा प्रतिपादित उपमान प्रमाण कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, वह अनुमान के ही अन्तर्गत है।

श्रीमध्व का तीसरा प्रमाण 'आगम' है, जिसकी परिभाषा 'निर्दोष शब्द है। शब्द के अन्तर्गत मौखिक तथा लिखित—दोनों प्रकार के शब्द माने जाते हैं। कोई शब्द निर्दोष तभी माना जाता है, जब वह किसी निश्चित अर्थ का बोध कराता है और वह किसी वस्तु का यथार्थ वर्णन करता है। शब्द उन्हीं लोगों का प्रमाण माना जा सकता है, जो 'आप्त' हैं। आगम दो प्रकार का होता है—(१) पौरुषेय और (२) अपौरुषेय। महाभारत, रामायण आदि पौरुषेय ग्रन्थ हैं और वेद अपौरुषेय। इनमें से पौरुषेय आगम को हम तभी प्रमाण मान सकते हैं, जब उनके कर्ता आप्त हों; परन्तु अपौरुषेय आगम सर्वदा प्रमाणभूत है। यदि केवल आप्त वाक्य को ही प्रमाण न माना जाय तो एक कुलटा के कथन को भी प्रमाण मानना पड़ेगा, जिसकी अप्रामाणिकता प्रसिद्ध है। अतएव आप्तवाक्य तथा अपौरुषेय आगम को ही हम शब्द-प्रमाण के अन्तर्गत मान सकते हैं; अन्य किसीको कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n271/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व-मीमांसा

वेदान्त के आचार्यों में 'जगत् सत्य है या मिथ्या' इस विषय पर घोर विरोध पाया जाता है। कोई जगत् को पूर्णतः मिथ्या बतलाता है, कोई आंशिकरूप में सत्य कहता है तो कोई बिल्कुल सत्य स्थिर करता है। जहाँ चार्वाक–जैसे भूतवादियों के लिये जगत् के अतिरिक्त कोई भी वस्तु सत्य नहीं है, वहाँ शंकर–जैसे अद्वैतवादी के लिये सारा जगत् ही मिथ्या है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' प्रसिद्ध ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि जगत् के विषय में नितान्त प्रतिकूल सिद्धान्त पाये जाते हैं। चार्वाक तथा शङ्कर के इन प्रतिकूल मार्गों की तुलना में श्रीमध्व के जगत्-सम्बन्धी सिद्धान्त को यदि हम 'मध्यम मार्ग' कहें तो कुछ अनुचित न होगा। श्रीमध्व ने उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तरूपी छोरों को छोड़कर बीच के मार्ग का अवलम्बन किया है। आपके मत से ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी। श्रीमध्व ने शङ्कर के मायावाद का खण्डन कर यह स्पष्ट प्रमाणित कर दिया है कि यह जगत् माया नहीं प्रत्युत सत्य है। इस प्रकार आपने न तो ब्रह्म को न मानकर भूतवाद का आश्रय लिया है और न शङ्कर की तरह जगत् को मिथ्या ठहराकर जीवन के व्यावहारिक पक्ष का तिरस्कार किया है। दर्शनशास्त्र के रहस्यमय क्षेत्र में श्रीमध्व का यह मत भले ही सदोष जान पड़े, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने पर इनका सिद्धान्त अत्यन्त तर्कयुक्त और बुद्धिसम्मत जान पड़ता है। जिस जगत् में हम रहते हैं, खेलते हैं, कूदते हैं, अनेक वीरता, दया तथा परोपकार के काम करते हैं, उस जगत् को हम मिथ्या कैसे मान लें? जिस संसार को महापुरुषों ने अपनी क्रीड़ा-स्थली तथा कर्म-भूमि बनाकर अनेक लोकोत्तर सार्वजनिक कार्य किये तथा अमरत्व प्राप्त किया, उसी संसार को हम झूठा या मिथ्या कैसे स्वीकार कर सकते हैं? अतएव व्यावहारिक पक्ष से तथा तर्कपक्ष से जब हम विचार

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n272/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं तो श्रीमध्वाचार्य का मत अत्यन्त तर्कयुक्त तथा बुद्धिसम्मत ज्ञात होता है।

शङ्कराचार्य का कथन है कि संसार में अविद्या या माया नाम की एक ऐसी वस्तु है, जो इस जगत् को सत्य प्रतिभासित करती है; परन्तु वास्तव में यह जगत् है मिथ्या ही। परन्तु श्रीमध्वाचार्य के मत से यह सिद्धान्त गलत है। जगत् न तो माया है और न मिथ्या, बल्कि यह सत्य है[1]। आपने जगत् की सत्यता के विषय में अनेक प्रमाण देकर यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि जगत् मिथ्या नहीं है। श्रीमध्व का प्रथम सिद्धान्त यह है कि अतीन्द्रिय प्रश्नों के विषय में केवल वेद ही अन्तिम प्रमाण हैं। आपका दूसरा सिद्धान्त है कि चित् और अचित् में महान् अन्तर है और वे दोनों कदापि एक नहीं हो सकते। तीसरा सिद्धान्त यह है कि जब तक प्रत्यक्ष ज्ञान मिथ्या या असत्य न सिद्ध कर दिया जाय, तब तक उसे अवश्य सत्य मानना चाहिये। यदि हम इन तीन सिद्धान्तों पर ध्यान दें, तो श्रीमध्व के जगत्-तत्त्व के सत्यत्व के सिद्धांत को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

श्रीमध्व के तीसरे सिद्धान्त के अनुसार जिस वस्तु का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है, वह तब तक सत्य माना जायगा, जब तक हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान दूषित न ठहरा दिया जाय। जैसे हम किसी वृक्ष या नदी का अपने चक्षुरिन्द्रिय से प्रत्यक्ष ज्ञान करते हैं। हम देखते हैं कि हमारी आँखों के सामने एक विशाल वृक्ष खड़ा है तथा अपनी सुशीलता छाया और फल से हमें सुख प्रदान कर रहा है। ऐसी दशा में हम उसे मिथ्या कैसे स्वीकार कर लें? उसे मिथ्या स्वीकार करना अपनी बुद्धि को तिला-

१ जगत्प्रवाहः सत्योऽयं नैव मिथ्या कथञ्चन।
ये त्वेदन्यथा ब्रूयुः सर्वहन्तार एव ते॥
२ छान्दोग्य-भाष्य। (भागवत-तात्पर्य)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n273/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ञ्जलि देना होगा। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात वस्तु को हम मिथ्या नहीं मान सकते। चूँकि हम जगत् के भिभिन्न पदार्थों का अवलोकन या ज्ञान अपनी इन्द्रियों के द्वारा करते हैं, अतः प्रपञ्चात्मक जगत् मिथ्या नहीं, प्रत्युत सत्य है।

श्रीमध्व का पहला सिद्धान्त अतिन्द्रिय प्रश्नों के विषय में वेद को ही प्रमाण मानना है। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, यह मिथ्या है या सत्य—इन प्रश्नों का उत्तर इन्द्रियों द्वारा नहीं किया जा सकता; क्योंकि यह अतीन्द्रिय विषय है। अतः हमें अब यह देखना है कि जगत् के विषय में वेदों की क्या सम्मति है। तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्म के द्वारा ही इस जगम् की उत्पत्ति हुई है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'। चूँकि मध्व-मतानुसार ब्रह्म सत्य है, अतः उससे उत्पन्न वस्तु भी सत्य ही है। ब्रह्म जगत् की सृष्टि के आदि में उत्पन्न करता है और प्रलय के समय उसका संकोच करता है। वह अपनी लीला के रूप में इस जगत् को उत्पन्न करता है। इन उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि जगत् सत्य है।

श्रीमध्वाचार्य के मतानुसार ब्रह्म तथा जीव में नितान्त भेद है। आपने स्पष्ट ही कह दिया है कि इन दोनों में 'तत्त्वतो भेदः' अर्थात् वास्तव में भेद है। यह भेद पाँच प्रकार का होता है (१) ब्रह्म तथा जीव में भेद, (२) ब्रह्म तथा जगत् में भेद, (३) जीव और जगत् में भेद, (४) जीवों में परस्पर भेद और (५) जगत् का वस्तुओं और परमाणुओंमें भेद—भेद वास्तव में होते हुए भी अनेक कारणों से दिखायी नहीं पड़ते। इन पाँचों भेदों में ब्रह्म तथा जीव का भेद ही प्रधान है, अतः इसीका विस्तृत वर्णन आगे प्रस्तुत किया जाता है।

श्रीमध्व समानता तथा एकता के अन्तर पर बहुत जोर देते हैं। आपका मत है कि दो वस्तुओं में समानता होने पर भी उन दोनों की एकता नहीं मानी जा सकती। बालू के दो विभिन्न कणों में समनता

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n274/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर भी दोनों को एक कहना भूल है; क्योंकि दोनों के गुणों में अन्तर है। इसी प्रकार ब्रह्म तथा जीव में और जगत् के अन्य पदार्थों में अनेक अंशों में समानता होने पर भी उनमें एकता स्थापित करना अनुचित है।

श्रुति हमें यह बतलाती है कि ब्रह्म से जीवों की उत्पत्ति उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार वह्नि से स्फुलिङ्गों की। यह जगत् ब्रह्म से उसी तरह पैदा होता है, जिस तरह मकड़ी से जाला; परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि क्या स्फुलिङ्ग तथा जाले की सत्ता वह्नि तथा मकड़ी से पृथक् है ? श्रीमध्वाचार्य इसका उत्तर स्वीकारात्मक देते हैं। आप कहते हैं कि जिस प्रकार मकड़ी जाले को सुनकर उससे पृथक् हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म जीव तथा जगत् को अपने ही अंशों से उत्पन्न कर उनसे पृथक् हो जाता है। इस प्रकार जीव तथा जगत् ब्रह्म के अंश स्वरूप होने पर भी उस अंशी से सर्वथा पृथक् हैं। यदि अंश और अंशी के पार्थक्य को न स्वीकार कर हम दोनों की एकता मानने लगेंगे, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। बाल मनुष्य के सिर से पैदा होता है। यदि हम बाल और सिर में एकता मानने लगें तो बाल कटाते समय सिर को भी कटाना पड़ेगा। परन्तु कोई ऐसा नहीं करता। अतएव अंश और अंशी में एकता कदापि स्वीकार नहीं की जा सकती। चूँकि ब्रह्म अंशी है और जीव अंश, अतः दोनों एक नहीं हैं—दोनों में वास्तविक अन्तर है।

अद्वैतवादी इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि 'ब्रह्म ही सत्य है और यह समस्त जगत् मिथ्या है। जीव भी ब्रह्म ही है, अन्य नहीं'[1]। यह ब्रह्म अविद्या से युक्त रहता है। यह अविद्या

१. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
(शङ्कराचार्य)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n275/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिर्वचनीय है; न तो यह सत् है और न असत्, किन्तु दोनों से विलक्षण है। जीव, जो वास्तव में ब्रह्म का ही अंश है, ब्रह्म से अपने को उपाधि के कारण पृथक् समझता है। यह उपाधि अविद्या से ही उत्पन्न होती है। इसी उपाधि से अभिभूत होकर सत्, चित् और आनन्द स्वरूप ब्रह्म असत्, अचित् तथा दुःख स्वरूप दिखायी पड़ता है। जिस प्रकार दर्पण पर मैल जम जाने से उसमें मनुष्य का प्रतिबिम्ब ठीक नहीं पड़ता—उसकी आकृति छोटी, बड़ी या भद्दी दिखायी देती है, उसी प्रकार उपाधि-रूप मैल के कारण हम दर्पण रूप ब्रह्म में जीवरूप प्रतिबिम्ब को नहीं देख पाते। इस प्रकार अद्वैतवादियों के सिद्धान्त का सारांश यह है कि ब्रह्म और जीव वास्तव में एक हैं; परन्तु अविद्या के द्वारा पृथक् प्रतिभासित होते हैं[1]।

श्रीमध्वाचार्य ने बड़ी प्रबल युक्तियों द्वारा शङ्कराचार्य के इस उपर्युक्त सिद्धान्त का खण्डन किया है और यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्म और जीव में वास्तविक भेद है। श्रीमध्व का कथन है कि अद्वैतवादियों का ब्रह्म, जो सत् और चित् से युक्त है, अविद्या से प्रभावित कैसे हो सकता है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार का एकत्र रहना असम्भव है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का अविद्या से प्रभावित होना भी असंगत है; अतः अविद्या के द्वारा जगत् में भेद की उत्पत्ति कहना नितान्त भ्रम-पूर्ण है। श्रीमध्व कहते हैं कि यदि यह अविद्या सत्य है तो अद्वैत का सिद्धान्त पूर्णतया खण्डित हो जाता है और यदि यह असत्य है तो इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। अत एव इन युक्तियों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि अद्वैत-वादियों का मायावाद सिद्धांत गलत है तथा इसके द्वारा ब्रह्म और जीव में जो अभेद की स्थापना की गयी है, वह भी तर्क-युक्त नहीं है।

१ शारीरक-भाष्य।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n276/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्वैतवादी 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि'—इन श्रुति-वाक्यों के आधार पर यह कहते हैं कि ब्रह्म और जीव एक ही है ; परन्तु मध्वाचार्य जी ने अपने ग्रन्थों में स्पष्ट प्रमाणित कर दिया है कि इन वाक्यों का जो अर्थ अद्वैतवादी करते हैं, उससे इनका अर्थ वस्तुतः भिन्न है। यदि हम अद्वैतवादियों के अर्थ को स्वीकार करते हैं तो निम्नाङ्कित श्रुति वाक्य से विरोध पड़ता है—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।'

—इस श्रुति से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म तथा जीव में भेद है। इस प्रकार अद्वैतवादियों के समस्त सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए मध्वाचार्य ने स्पष्ट प्रमाणित कर दिया है कि ब्रह्म और जीव नितान्त भिन्न हैं।

ऊपर यह दिखलाया गया कि ब्रह्म और जीव में भेद है ; परन्तु यह भेद होते हुए भी जीव ब्रह्म के ऊपर अवलम्ति है। वह पहले ही बतलाया जा चुका है कि ब्रह्म और जीव में अंशी और अंश का सम्बन्ध है। अतः जिस प्रकार अंश अंशी के ऊपर अवलम्बित रहता है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म के ऊपर अवलम्बि है। जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। वह ब्रह्म का अंश भी कहा जाता है। इस लिये ब्रह्म की तरह जीव में भी सत्, चित् और आनन्द का निवास है। जीव की सत्ता ब्रह्म से पृथक् नहीं रह सकती और न यह कोई स्वतन्त्र कार्य ही कर सकता है। यह सदा ब्रह्म की अधीनता में रहता है। जीव में जो कुछ कार्य करने की स्वतन्त्रता दिखायी पड़ती है, वह ब्रह्म की दी हुई है। एक ब्रह्म ही स्वतन्त्र हैं, जीव सारे परतन्त्र हैं। यद्यपि जीव नित्य है, फिर भी उसकी परतन्त्रता में कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि यह नित्यता उसे ब्रह्म से ही मिली है। ब्रह्म की इच्छा ही जीवों को नित्यता प्रदान करती है। इस प्रकार जीव ब्रह्म पर सर्वथा अवलम्बित दिखलायी पड़ता है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n277/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमध्वाचार्य का यह मत है कि जीवों में परस्पर भेद है तथा उनमें तारतम्य—ऊँच, नीच का विभाग भी है। जीवों का यह भेद सांसारिक दशा में ही नहीं होता, बल्कि मोक्षावस्था में भी रहता है। ये सब जीव प्रकृति के द्वारा प्रभावित होने के कारण 'संसार' कहलाते हैं। जब तक ये मुक्ति को प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक प्रकृति के बन्धन में पड़े रहते हैं। जीवों में सर्व-श्रेष्ठ जीव देवता माने जाते हैं। इन देवों के भी अनेक भेद हैं। देवों के सर्व-श्रेष्ठ विभाग को ऋजुस् कहते हैं। ये अन्त में ब्रह्म बन जाते हैं। नीच जीवों में दैत्य, राक्षस और पिशाचों की गणना है। मध्यम कोटि में मनुष्य आते हैं, जो न बहुत बुरे और न भले हैं। इस प्रकार जीवों में भी भेद है।

जिस प्रकार शङ्कराचार्य ब्रह्म को सर्व-श्रेष्ठ तथा सच्चिदानन्द-स्वरूप मानते हैं, उसी प्रकार श्रीमध्वाचार्य जी हरि अथवा नारायण को सर्व व्यापी, सच्चिदानन्द-स्वरूप तथा सर्व-श्रेष्ठ वस्तु स्वीकार करते हैं। 'विष्णु-तत्त्व-निर्णय' के प्रारम्भ में आपने एक श्लोक लिखा है, जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

सदागमैकविज्ञेयं समतीतं क्षराक्षरम्।
नारायणं सदा वन्दे निर्दोषाशेषसद्गुणम्॥

इस श्लोक से यह भी पता चलता है कि श्रीमध्व की नारायण के सम्बन्ध में क्या धारणा थी। यह नारायण केवल वेदों के द्वारा ज्ञेय हैं, क्षर-अक्षर दोनों से अतीत हैं, दोषों से रहित हैं तथा सम्पूर्ण सद्-गुणों से युक्त हैं। इसी नारायण को कभी-कभी आपने हरि के नाम से भी स्मरण किया है। हरिवंश के निम्नाङ्कित श्लोक को श्रीमध्वाचार्य जी ने अनेक स्थानों पर उद्धरण रूप में दिया है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

श्रीमध्व के मतानुसार हरि परम ब्रह्म है, इससे बड़ी जगत् में कोई

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n278/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु नहीं है। यह स्वतन्त्र है तथा इसके समान जगत् में कोई दूसरा नहीं है ('एकमेवाद्वितीयम्')। हरि एक होते हुए भी अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र तथा अदिति आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध है। वेद कहते हैं कि 'वह एक ही है, परन्तु पण्डित लोग उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं[1]।' वह अकेला ही अनेक देवताओं के नाम को धारण करता है। 'यो देवानां नामधा एक एव'। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि मध्वाचार्य जी ने 'हरि' या 'नारायण' शब्द का प्रयोग किसी देवता विशेष के लिये नहीं किया है, प्रत्युत सर्व-व्यापक सर्वोपरि शक्ति के लिये ही किया है। अद्वैत-वेदान्तियों के लिये जो ब्रह्म है, वही इनके लिये हरि है।

श्रीमध्वाचार्य के मतानुसार हरि सत्, चित् तथा आनन्द-स्वरूप है। एकमात्र हरि ही स्वतन्त्र रूप से स्थिर है। शाश्वतिक पदार्थों में सबसे शाश्वत वही है[2]। वह दूसरों को अपनी अनुकम्पा से नित्यता प्रदान करता है, अतः वह सत् है। वह चित् है, क्योंकि संसार की समस्त वस्तुओं को जानता है तथा चेतना-सम्पन्न है। हरि आनन्द-स्वरूप है; क्योंकि वह आनन्द की राशि है तथा दूसरों को भी आनन्द प्रदान करता है[3]। वह दिक् तथा काल से अनवच्छिन्न है। वह अनन्त गुणों का सागर है। उसकी दया, शक्ति, प्रेम तथा महिमा अपार है। हरि केवल अंशतः जाना जा सकता है। सम्पूर्णतया वह स्वयं ही अपने को जान सकता है। दूसरे लोग उसे जानने में समग्र रूप से असमर्थ हैं। अतः इस दृष्टि से वह अज्ञेय भी है।

---

१. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। अग्निं मित्रं मातरिश्वानमाहुः॥

२. नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनामा-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।

३. रसो वै सः।

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n279/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरि ज्ञान रूप भी कहा गया है, क्योंकि ज्ञान ही उसका परम तत्त्व है। उसका ज्ञान चिरस्थायी है। अनन्त होने के कारण न तो वह ज्ञान कभी घटता है और न बढ़ता ही है। हरि तथा उसके ज्ञान में कुछ भी अन्तर नहीं है। उसके कार्यों में भी कुछ अन्तर नहीं है[1]। हरि एक रहस्य के समान है। उसके पास अत्यधिक शक्ति है ('अचिन्त्यभूतशक्तिः')। वह छोटी-से-छोटी वस्तु से भी छोटा है ('अणोरणीयान्') तथा बड़ी-से-बड़ी वस्तु से भी बड़ा है ('महतो महीयान्') वह बैठा हुआ भी दूर तक चला जाता है ('आसीनो दूरं व्रजति') तथा सोता हुआ भी चारों ओर घूमता-फिरता है ('शयानो याति सर्वतः')। बिना आँख के भी वह देखता है और बिना हाथों के भी ग्रहण करता है। वह दूर-से-दूर तथा नजदीक-से-नजदीक है। श्रुति कहती है—

'दुराद् दूरतरं यत्तु तदेवान्तिकमन्तिकात् ।'

शङ्कराचार्य ब्रह्म के दो रूप मानते हैं—निर्गुण तथा सगुण। उनके मत से सगुण ब्रह्म ही व्यक्तिगत ईश्वर है, जो संसार का कर्ता, पालयिता और संहर्ता है। यही ईश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। निर्गुण ब्रह्म उपाधिरहित अज्ञेय तत्त्व है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म को 'केवलो निर्गुणश्च' कहा गया है। श्रीमध्व भी सगुण ईश्वर को मानते हैं। ईश्वर अन्य रूपों की भाँति मनुष्य रूप भी धारण करता है। उस समय उसके शरीर के विभिन्न अंगों में भेद नहीं रहता। सत्, चित् तथा आनन्दस्वरूप होने के कारण उसका प्रत्येक अंग समस्त कार्यों का सम्पादन कर सकता है। ईश्वर में स्वगतभेद नहीं है। वह सिर के बालों से पैर के नखों तक पूर्ण, चित्स्वरूप, सुखमय तथा शान्ति से युक्त है। यह ईश्वर साकार रूप में सृष्टि का निर्माता,

१. अभेदो हरिरूपाणां गुणानां च क्रियासु च ॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n280/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालनकर्ता तथा नाश करने वाला है। इसी सगुण ईश्वर की भक्ति करके जीव मुक्ति को प्राप्त करता है।

शङ्कर की भाँति श्रीमध्वाचार्य भी निराकार ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जो त्रिगुणातीत अर्थात् सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से अलिप्त है। वह स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी तथा सर्वान्तर्यामी है। वह सबसे पृथक् है, क्योंकि वह अद्वितीय है। वह अभेद्य है, नित्य है, अनन्त ज्ञान की राशि है। वह दोषों से रहित है। अनेक नामों से पुकारा जाता हुआ भी वह एक है। वह कर्मबन्धन से परे है। संक्षेप में वह निराकार ब्रह्म सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् तथा त्रिगुणातीत है[1]।

आचार-मीमांसा

हमारे शास्त्रों ने मनुष्य-जीवन के चार उद्देश्य बतलाये हैं, जिनको प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इन उद्देश्यों को 'पुरुषार्थ' कहते हैं—जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन चारो पुरुषार्थों में मोक्ष या मुक्ति अन्तिम तथा मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ समझा जाता है कि भक्ति की चर्चा भारतीय समस्त दर्शनों में पायी जाती है। बौद्ध लोग इसी मुक्ति को निर्वाण के नाम से पुकारते हैं, जिसका अर्थ है—कर्म-बन्धनों से छुटकारा पा जाना। श्रीमध्वाचार्य के अनुसार मुक्ति का अर्थ है—आत्मा का अभिव्यंजन, विकास तथा उसकी स्वानुभूति। जबतक स्वानुभूति नहीं होती, तबतक मुक्ति की प्राप्ति कठिन ही समझनी चाहिये। शङ्कराचार्य तथा मध्वाचार्य दोनों ही स्वानुभूति को मुक्ति का मार्ग समझते हैं; परन्तु इस अनुभूति का

१. माध्वमत के सिद्धान्तों के लिये देखिपे—पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित 'भारतीय दर्शन,' पृ० ४६५-५०४।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n281/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो परिणाम होता है, उसके विषय में दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि शंकर तथा श्रीमध्व की मोक्ष-विषयक धारणा में अत्यधिक अन्तर है। श्रीशङ्कराचार्य के अनुसार मुक्ति को प्राप्त कर लेने पर मुक्त जीव अपने को ब्रह्म समझता हुआ निर्गुण, निराकर तथा अनिर्वचनीय जानने लगता है अर्थात् ब्रह्म के साथ उसका तादात्म्य हो जाता है। परन्तु श्रीमध्वाचार्य के अनुसार मुक्त आत्मा ब्रह्म के साथ अभिन्नता को नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत अपनी अभिन्नता तथा पृथक्ता को और भी स्पष्ट रीति से अनुभव करने लगता है। वह मुक्त तथा अमुक आत्माओं से भी अपनी पृथक्ता को समझने लगता है। इस प्रकार जहाँ शङ्कर के मत से विमुक्तात्मा ब्रह्म के साथ अपनी अभिन्नता का अनुभव करता है, वहाँ मध्व के अनुसार वह भिन्नता का अनुभव करता है।

समस्त भारतीय दर्शन इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं की मुक्ति शाश्वतिकी होती है। इसका आशय यह है कि जो मनुष्य एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेता है, वह सदा के लिये आवागमन के बन्धन से छूट जाता है, उसका पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद् में स्पष्ट ही कहा है कि मुक्तात्मा लौट कर फिर नहीं आता—

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते।'

मुक्ति की दूसरी विशेषता है—दुःख, अशान्ति, अविवेक, राग, द्वेग, लोभ तथा तृष्णा आदि का सर्वथा विनाश हो जाना। मुक्तात्मा न किसी कष्ट का अनुभव करता है और न किसी बुरी भावना का। मुक्ति प्राप्त कर लेने पर आत्मा आनन्द, शान्ति तथा सन्तोष के सागर में गोते लगाने लगता है। श्रीमध्व का मत है कि वैकुण्ठ या स्वर्ग एक आध्या-

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n282/mode/1up
1961 -Dharma Aur Darshan (1332)
realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मिक जगत् हैं, जो प्रकृति से अलिप्त है। विमुक्त आत्मा अपने आध्यात्मिक अङ्गों के द्वारा सारे कार्यों का निष्पादन करता है। वह भौतिक शरीर के द्वारा इन कार्यों को नहीं करता। न्याय-विवरण' में यही बात इस प्रकार लिखी मिलती है—

'विमुक्तस्य चिन्मात्र एव देहो भवति, चिन्मात्राणि करणानि'

इस प्रकार विमुक्तात्मा सब प्रकार के सुखों का अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उपभोग करते हुए भी ईश्वर के प्रेम या भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ सुख स्वीकार करते हैं—

हरेरुपासना चात्र सदैव सुखरूपिणी।
न तु साधनभूता सा सिद्धिरेवात्र सा यता॥

श्रीमध्वाचार्य ने आत्माओं की तीन श्रेणियाँ मानी हैं। प्रथम तो वे हैं, जो नित्य सुख के अधिकारी हैं; द्वितीय वे हैं, जो शाश्वतिक दुःख के भागी हैं तथा तीसरे वे हैं जो संसार के लिये उपयुक्त हैं। प्रथम प्रकार के आत्माओं में चित् और आनन्द पाया जाता है, द्वितीय श्रेणी में चित् और दुःख है तथा तीसरी श्रेणी के आत्माओं में चित्, कुछ सुख तथा कुछ दुःख वर्तमान रहता है। इन तीनों प्रकार के आत्माओं को मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब आत्मा के सत्य स्वरूप को ढकने वाला आवरण नष्ट हो जायगा। श्रीमध्व का आशय यह कदापि नहीं है कि किसी एक श्रेणी का आत्मा ही शाश्वतिक रूप से स्वर्ग को प्राप्त करेगा तथा दूसरा आत्मा सदा नरक भोगेगा। क्योंकि इस प्रकार का विचार मनुष्यता की कल्पना के बिलकुल विपरीत है।

श्रीमध्वाचार्य के अनुसार मुक्ति केवल किसी विशेष जाति या आश्रम तक ही सीमित नहीं है। किसी विशेष जाति में उत्पन्न हुआ मनुष्य अथवा किसी विशेष आश्रम (जीवन की अवस्था) में वर्तमान पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी है—यह कथन नितान्त अनुचित है। यह मुक्ति चारों वर्णों के मनुष्यों को, चारों आश्रमों में वर्तमान जीवों को—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n283/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं तक नहीं, बल्कि जातिबहिष्कृत व्यक्तियों, अछूतों तथा निम्नतम श्रेणी के पुरुषों को भी प्राप्त हो सकती है। छान्दोग्य-भाष्य में स्पष्ट लिखा है—

सर्ववर्णाश्रमाणां च ज्ञानान्मोक्षो विनिश्चितः।
अन्त्यानां स्थावराणां वा तथापि यतिरुत्तम॥

शङ्कर के अद्वैतवाद में 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' के सिद्धान्तानुसार स्त्री तथा शूद्रों को अज्ञान में लिप्त रहने के कारण मोक्ष का अधिकार नहीं है। परन्तु श्रीमध्वाचार्यजी ने मुक्ति का साधन भक्ति को बतला कर स्त्री तथा शूद्रों के लिये भी मुक्ति का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार श्रीमध्व की मुक्तिविषयक धारणा बड़ी व्यापक तथा गम्भीर है। यही इसकी विशेषता है।

श्रीमध्वाचार्यजी ने सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मुक्ति का प्रतिपादन करते हुए भक्ति को उसका साधन बतलाया है—'भक्तिश्च तत्साधनम्।' बिना भक्ति के मुक्ति की प्राप्ति असम्भव है। अतएव समस्त जीवों को भगवान् की भक्ति के द्वारा ही अपनी मुक्ति का प्रयत्न करना चाहिये। शङ्कराचार्य ने ज्ञान को मुक्ति का साधन बतलाया है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' परन्तु श्रीमध्व का मत है कि ज्ञान के साथ-साथ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। भक्ति और कर्म से विरहित ज्ञान के द्वारा मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। वास्तव में सर्वोत्तम भक्ति साधन रूप ही नहीं, अपितु साध्य रूप हो जाती है—

साधनानि तु सर्वाणि भक्तिज्ञानप्रवृद्धये।
नैवान्यसाधनं भक्तिः फलरूपा हि सा यतः॥

(बृहदारण्यक-भाष्य)

श्रीमध्व का यहाँ तक कहना है कि भक्ति और कर्म मुक्ति के लिये केवल आवश्यक ही नहीं हैं; प्रत्युत विमुक्त आत्मा भी भगवान् की भक्ति तथा निष्काम कर्म सदा करता रहता है। मुक्त होने पर भी

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n284/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी भक्ति में कोई कमी नहीं आती। सारांश यह है कि जहाँ शङ्कराचार्य ज्ञान को मुक्ति का अनन्य साधन बतलाते हैं, वहाँ मध्वाचार्यजी भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन सिद्ध करते हैं।

अब हमें यह देखना है कि भक्ति का अर्थ क्या है। 'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय' में श्रीमध्वाचार्य लिखते हैं कि भगवान् की निश्चल महत्ता के ज्ञान से उत्पन्न प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भगवान् का यह प्रेम सांसारिक वस्तुओं के प्रेम को अतिक्रमण कर जाता है[1]। इसी भक्ति के द्वारा मुक्ति मिल सकती है, अन्य किसी उपाय के द्वारा नहीं[2]।

यदि ईश्वर की इच्छा से ही बन्धन और मुक्ति की प्राप्ति होती है तो हमें ईश्वरेच्छा को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करना चाहिये। ईश्वरेच्छा को जानने के पहले हमें ईश्वर को जानना होगा और ईश्वर को सत्यरूप से जानने के लिये हमें उससे प्रेम करना पड़ेगा; क्योंकि किसी वस्तु का ज्ञान तथा उससे प्रेम अन्योन्याश्रय हैं। ईश्वर के विषय में हम जितना ही अधिक जानेंगे, उतना ही अधिक उससे प्रेम करेंगे। कार्लायल का मत ठीक है कि किसी वस्तु को जानने के पहले उससे प्रेम तथा सहानुभूति प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम ईश्वर को जानना चाहते हैं तो हमें उसकी भक्ति करनी होगी।

भक्ति का प्रथम सोपान वैराग्य है। यदि हम ईश्वर की सच्ची भक्ति करना चाहते हैं तो हमें सांसारिक सुख तथा वैभव से मुख मोड़ना पड़ेगा। अपने सगे सम्बन्धियों तथा अपने आत्मा के भी मोह को छोड़ ईश्वर से नेह जोड़ना पड़ेगा। सांसारिक वैभवों में फँसे रहनेवाले मनुष्य को भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते। कठोपनिषद् में भी लिखा है—

---

१ माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढस्सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः।

२ तथा मुक्तिर्न चान्यथा।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n285/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढम् ।'[१]

मुक्ति की साधनरूपा भक्ति ईश्वर की महत्ता के ज्ञान पर अवलम्बित होनी चाहिये। यह अविराम तथा निश्चल होनी चाहिये, इसलिये भगवान् की स्तुति में 'निश्चला भक्तिरस्तु' की प्रार्थना की जाती है। भगवान् की भक्ति अन्य सांसारिक पदार्थों तथा अपने आत्मा के प्रति प्रेम से कोटिगुनी अधिक होनी चाहिये। हमें केवल सुख में ही ईश्वर का स्मरण नहीं करना चाहिये; बल्कि महान्-से-महान् आपत्तियों से घिरे रहने पर भी उसकी भक्ति में चित्त लगाना चाहिये। भवभूति के शब्दों में वह 'अद्वैतं सुखदुःखयो' होनी चाहिये। ऐसी ही भक्ति मुक्ति को प्राप्त करा सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भगद्गीता में स्पष्ट कहा है कि 'अनन्य भक्ति के द्वारा ही मैं प्राप्त किया जा सकता हूँ।'

समीक्षा

द्वैतवाद के साहित्य तथा सिद्धान्त का परिचय पाठकों को देकर अब हम समीक्षा की ओर आते हैं। शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद के वास्तविक रहस्य को न समझने के कारण 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धांत के फलस्वरूप साधारण जनता में जीवन की उपेक्षा होने लगी थी। लोगों ने 'जगन्मिथ्या' के वास्तविक अर्थ को न समझ कर भ्रम से इस संसार को वास्तव में असत्य मान लिया। इसका दूषित परिणाम यह हुआ कि जनता में निराशावाद का प्रचार होने लगा तथा लोग जीवन के कर्मक्षेत्र से हटकर ऊपरी वैराग्य से ही मुक्ति की आशा करने लगे। इसके फलस्वरूप लोगों में अकर्मण्यता फैलने लगी। ऐसे समय में श्रीमध्वाचार्य ने अपने द्वैतमत का प्रचार करके भारतीय जनता का बड़ा ही उपकार किया। आपने यह उपदेश दिया कि जगत् मिथ्या नहीं है बल्कि यह भी सत्य है। संसार में रहते हुए कर्म करना अत्यन्त आवश्यक है। जिस संसार में हम रहते हैं, दुःख-सुख का अनुभव करते हैं,

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n286/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह झूठा कैसे हो सकता है? यह ऐसा उपदेश था, जो तर्कयुक्त होने के कारण साधारण मनुष्य की भी समझ में आ सकता था। इस प्रकार जनता में निराशा तथा अकर्मण्यता के स्थान पर आशा तथा कर्म की प्रवृत्ति का सञ्चार हुआ। इसके लिये हमें मध्वाचार्यजी का अत्यन्त ऋणी होना चाहिये।

श्रीमध्वाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त न तो चार्वाक-मत की तरह जड़वादी या भाग्यवादी है और न शंकर के अद्वैतवाद की तरह आदर्शवादी। द्वैतवाद में उपयुक्त दोनों मतों का सामंजस्य पाया जाता है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। ब्रह्म तथा जगत् दोनों की सत्ता को स्वीकार कर एक ओर तो वह अध्यात्मवाद की ओर झुका है और दूसरी ओर व्यवहारवाद की ओर। साधारण जनता के बुद्धिगम्य तथा तर्कगम्य होने के कारण इसे 'कामनसेन्स फिलासफी'[1] कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

इस मत की दूसरी विशेषता यह है कि भक्ति को मुक्ति का साधन बतलाकर श्रीमध्व ने चारों वर्णों के लिये मोक्ष का द्वार खोल दिया। इस प्रकार स्त्रियों तथा शूद्रों को भी आपने मोक्ष का अधिकारी बतलाया है। संक्षेप में भारतीय समाज तथा भारतीय दर्शन को ये आपकी दो प्रधान देनें हैं।

---

१ 'Commonsense Philosohy'

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n287/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धाद्वैत मत

(८) पुष्टिमार्ग के सिद्धांत और उनका उद्गमस्थान

श्रीवल्लभाचार्य ने सिद्धान्तरूप से शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया है। भक्तिसम्प्रदाय में उनके मत को 'पुष्टिमार्ग' के नाम से पुकारते हैं। महाप्रभु जीव तथा ब्रह्म की नितान्त एकता के पक्षपाती हैं। अतः अद्वैत के वे पक्के माननेवाले हैं। परन्तु माया-शबल ब्रह्म के माननेवाले शांकर वेदान्त से अपने मत की भिन्नता प्रतिपादन करने के विचार से उन्होंने अद्वैत के पूर्व 'शुद्ध' शब्द का व्यवहार किया है तथा अपने सिद्धान्त को 'शुद्धाद्वैत' के नाम से व्यवहृत किया है। शुद्धाद्वैतमार्तण्ड में इस नामकरण का यही कारण बतलाया गया है।

मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥
(चौखंभा सं०, प० २८, पृ० २४)

यह परब्रह्म सत्, चित् तथा आनन्दस्वरूप है। भगवान् अखिल-रसामृतमूर्ति, अखिल लीलानिकेतन श्रीकृष्ण ही वह परब्रह्म है[1]। अग्नि से स्फुलिंगों के समान उस परब्रह्म से जीवों का आविर्भाव होता है[2]। जगत् भगवान् की लीला का विकास है। आविर्भाव तथा तिरोभाव नामक भगवत्-शक्तियों के कारण इस जगत् का विकास तथा लय होता है[3]। इत्यादि।

---

१ देखिये—'प्रमेयरत्नार्णव' पृ० ११—१५

२ देखिये—शुद्ध द्वैतमार्तण्ड पृ० ७

३ ,, ,, ,, पृ० ८—१३

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n288/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्टिमार्ग—आवश्यकता तथा विशिष्टता

यह संसार विपत्तियों का आगार है। चारों ओर से विपत्तियाँ आकर हमें थपेड़ा मार रही हैं। जिधर दृष्टि डालिये उधर ही हमारे लिये दुःख का सागर उमड़ रहा है। अतः सब आचार्यों के सामने सब समय यही विकट प्रश्न उपस्थित होता आया है कि इस जगत् के त्रिविध दुःखों से सदा के लिये (आत्यन्तिकी) निवृत्ति किस प्रकार होगी। कौन ऐसा सुगम उपाय है जो मानव जीवों को इन बन्धनों से छुड़ाकर आनन्द के मार्ग पर लगा देगा। प्राचीन आचार्यों ने ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के मार्ग मुमुक्षु जनों के लिये इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिये ही निर्दिष्ट किये हैं। वल्लभाचार्य इन मार्गों की उपयोगिता को मानते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि में इन साधनों का ठीक-ठीक आचरण इस कलिकाल में नहीं हो सकता। महाप्रभु ने अपने कृष्णाश्रय-स्तोत्र में इस कुटिल काल का बड़ा ही सजीला वर्णन किया है[1]। समस्त देश म्लेच्छों के आक्रमणों से ध्वस्त हो गये हैं; गंगादि तीर्थों को पापियों ने घेर रक्खा है तथा उनके अधिष्ठातृदेवता अन्तर्धान हो गये हैं। ऐसे विपरीत समय में क्या ज्ञान की निष्ठा हो सकती है? यज्ञ-यागादिकों का यथोचित अनुष्ठान हो सकता है? अथवा भक्ति मार्ग का ही क्या आचरण भली-भाँति हो सकता है? नहीं, कभी नहीं। यदि हो भी

१—म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥ १॥
गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥ ३॥
अहङ्कारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥ ४॥
(कृष्णाश्रयस्तोत्र)

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n289/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है, तो केवल वेदाध्ययननिरत त्रिवर्ण के पुरुषों को ही हो सकता है। शूद्रों तथा स्त्रियों की मुक्ति भला इन दुर्गम मार्गों के अनुसरण से कभी हो सकती है? उनके लिये तो कोई सीधा राजमार्ग होना चाहिये जिस पर चल कर वे लोग–निराश्रय तथा निःसहाय जन–इस संसार के समस्त बन्धनों से अनायास ही मुक्त हो जायँ। इन निराश्रयों का उद्धार सदा की भाँति आज भी एक विषम समस्या है। महाप्रभु ने इन्हीं लोगों के कल्याण के लिये अपना पुष्टिमार्ग चलाया। इस मार्ग में परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान्[1] का अनुग्रह ही एकमात्र साधन है। जो लोग प्रसिद्ध साधनत्रय के निष्पादन में अपने को असमर्थ पाते हैं, उन्हें चाहिये कि अपनी समस्त वस्तुएँ, अपना सर्वस्व भगवान् के चरणारविन्दों में समर्पण कर दें। यदि पूर्ण भक्ति के साथ हम श्रीकृष्ण के पादपद्मों में अपने निराश्रय आत्मा को डाल दें, तो क्या वह करुणावरुणालय हमारा उद्धार न करेगा? क्या वह विश्वम्भर हमारा भरण-पोषण न करेगा? क्या वह व्रजविहारी हमारे आर्त चित्त को अपनी मधुर वंशी की तान से आप्यायित न कर देगा? अवश्य करेगा, जरूर करेगा। परन्तु हम में चाहिये उसके अनुग्रह में पूरा विश्वास, उसकी अलौकिक कृपा पर नितान्त भरोसा।

वल्लभ ने पुष्टिमार्ग की मर्यादामार्ग से विशिष्टता स्पष्ट रूप से दिखलायी है। मर्यादामार्ग में जीव फल के लिये अपने कर्मों के अधीन है। जैसा वह कर्म करेगा, वैसा फल भगवान् उसे देंगे। 'कर्मानुरूपं

१—भगवान् श्रीकृष्ण ही परमसत्तारूप है। देखिये—

(क) परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत् ॥ ३ ॥
(सिद्धान्तमुक्तावली)

(ख) कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ॥ १ ॥
(अन्तःकरणप्रबोध)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n290/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलम्' मर्यादामार्ग का प्रसिद्ध सिद्धान्त है, परन्तु पुष्टिमार्ग में कर्म की क्या आवश्यकता[1] ? मर्यादामार्ग में शास्त्रविहित ज्ञानकर्म के आचरण से ही मुक्ति रूपी फल मिलता है परन्तु पुष्टिमार्ग में ज्ञानकर्म की नितान्त निरपेक्षता बनी रहती है[2]। इसी कारण से सब निराश्रय दीन जीवों का एकमात्र मोक्षसाधन तथा उद्धारोपाय है—पुष्टिमार्ग, जिसमें भगवान् अपने में कर्मणा मनसा वाचा आत्मसमर्पणशील जीवों का प्रपञ्च से उद्धार अपनी दया के बल से कर देते हैं[3]। अतः यह मार्ग सब जीवों के लिये—वर्ण, जाति, देश किसी भी देहभाव के बिना—सर्वदा तथा सर्वथा उपादेय है। यही इस मार्ग की विशेषता है। मर्यादामार्ग से इस मार्ग की यही विशिष्ठता है[4]।

१—फलदाने कर्मापेक्षः। कर्मकारणे प्रयत्नापेक्षः। प्रयत्ने कामापेक्षः। कामे प्रवाहापेक्षः। इति मर्यादारक्षार्थं वेदं चकार। ततो ब्रह्मणि न दोषगन्धोऽपि। न चानीश्वरत्वम्। मर्यादामार्गस्य तथैव निर्माणात्। यत्रान्यथा स पुष्टिमध्य इति। (ब्र० सू० २। ३। ४२ पर अणुभाष्य)

२—अत एव पुष्टिमार्गेऽङ्गीकृतस्य ज्ञानादिनैरपेक्ष्यं मर्यादायामङ्गीकृतस्य तु तदपेक्षितत्वमत्र युक्तमेवेति भावः।
(ब्र० सू० ३। ३। २९ पर अणुभाष्य)

३—पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैकसाध्यः प्रमाणमार्गाद्विलक्षणः।
(ब्र० सू० ४। ४९ पर अ० भा०)

४—इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिये देखिये श्रीहरिराय जी कृत पुष्टिमार्गीय कारिकाएँ—प्रमेयरत्नार्णव पृ० १८।२४ नमूने के तौर पर एक कारिका नीचे दी जाती है—

समस्तविषयत्यागः सर्वभावेन यत्र हि।
समर्पणं च देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n291/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मसम्बन्ध का अनुष्ठान

यह तो हुआ पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त, परन्तु अब इस सिद्धान्त को व्यवहार में किस प्रकार लाने की व्यवस्था आचार्य-चरणों ने बतलायी है उसका विचार करना भी समुचित है। इसे व्यावहारिक रूप जिस विधि के द्वारा दिया जाता है उसका नाम इस सम्प्रदाय में है ब्रह्म-सम्बन्ध[1]। इस अनुष्ठान का विधान वल्लभाचार्य जी को स्वयं भगवान् ने बतलाया था, इसका उल्लेख हमें उनके **सिद्धान्तरहस्य** नामक स्तोत्र में (पहले श्लोक में) किया मिलता है। इस अनुष्ठान के द्वारा गुरु प्रत्येक शिष्य का भगवान् के साथ सम्बन्ध करा देता है। मुमुक्षु शिष्य को ज्ञाननिरत तथा भागवत तत्त्वज्ञ गुरु की खोज करनी चाहिये। अनुरूप गुरु की प्राप्ति हो जाने पर उसे अपना अभिप्राय बतलाना चाहिये। तब गुरु उसे सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे शरण हैं इस अर्थ वाला 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मन्त्र बतलाते हैं। इसे **शरण-मन्त्र** के नाम से पुकारते हैं। वल्लभाचार्यजी ने **नवरत्न** में स्वयं इस मन्त्र के विषय में कहा है—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ ६ ॥

इसके अनन्दर वह गुरु शिष्य को भगवान् के विग्रह के पास ले जाता है, तुलसी की माला देता तथा दीक्षा मन्त्र का उपदेश करता है तथा शिष्य से उच्चारण कराता है। यह मन्त्र नितरां गोप्य माना जाता है। इस मन्त्र की **आत्मनिवेदनमन्त्र** के नाम से प्रसिद्धि है। इसमें भक्त अपनी समस्त वस्तुओं को, अपनी देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः-

१—ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि····················॥
(सि० र०)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n292/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण को उनके धर्मों के साथ, अपनी आत्मा को भगवान् को निवेदन कर देता है। यह मन्त्र यों है—

सहस्रपरिवत्सरमितकालजात कृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्दतिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि तद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहापराणि आत्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि।

प्रसिद्धि है कि श्रीकृष्ण ने यह मन्त्र आचार्यजी को स्वयं बतलाया था। इस मन्त्रोपदेश के अनन्तर उस नवीन श्रद्धालु भक्त को गोपियों को अपना आदर्श मान कर अपना समर्पणनिरत जीवन बिताना चाहिये तथा भगवान् की पूजा-अर्चा ही में अपना कालयापन करना चाहिये, उसे अपने जीवन पर तनिक भी ममता नहीं, स्वतन्त्रता नहीं। वह तो अब भगवान् का दास बन गया। जीवन भी भगवान् ही का है। उसके जितने कर्म हैं, चेष्टाएँ हैं, मन-वचन-कर्म के जितने विविध विधान हैं, वे सब श्रीकृष्ण को ही समर्पण किये जाते हैं। इस प्रकार वह सर्वात्मना भगवान् का दास बन कर अपनी ऐहिक लीला की समाप्ति के अनन्तर भगवदनुग्रह से गोलोक की विपुल शांति में जा विराजता है।

पुष्टिमार्ग का उद्गम स्थान

पुष्टि मार्ग में संक्षेप में यही सिद्धान्त है तथा यही व्यवहारिक विधान है। आचार्य श्रीवल्लभ ने इस नवीन मत की उद्भावना कहाँ से की है? इसकी कुछ खोज करनी है। वल्लभाचार्य अपने मत को नवीन नहीं बतलाते, बल्कि अपने को विष्णु-स्वामी के प्राचीन संप्रदाय का अनुयायी बतलाते हैं। फिर भी विष्णु स्वामी के लुप्त होते हुए सम्प्रदाय को जीवन प्रदान कर एक शक्तिशाली वैष्णव-सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित करना अत्यन्त असाधारण कार्य है। महाप्रभुजी ने यही कर दिखलाया। इसके लिये उन्हें प्रेरणा कहाँ से हुई? किस ग्रन्थ के सुचारु अध्ययन प्रभुजी के भावुक हृदय में इन सिद्धान्तों की रूप-रेखा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n293/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को खड़ा किया ? प्राचीन आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय के दार्शनिक आधार के लिये सदा ही प्रस्थानत्रयी—वेद (उपनिषद्), ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता को मूल माना है । महाप्रभु ने भी वैसा ही किया है, परन्तु लेखक बहुत वर्षों के अध्ययन के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि आचार्य का यह समग्र सिद्धान्त-समुच्चय, पुष्टिमार्ग का यह समस्त अनुष्ठान, शुद्धाद्वैत का यह परिमार्जित सिद्धान्त—यह सब तत्त्व पुराणाग्रगण्य साक्षात् भगवद् रूप श्रीमद्भागवत् की जाज्वल्यमान विभूति है । 'सुबोधिनी' हमारे कथन के लिये पर्याप्त प्रमाण उपस्थित करती है कि वल्लभाचार्य भागवत के निगूढ़ तत्त्वों के सुबोध ज्ञाता थे । उन्होंने भागवत के अमृत फल को खूब ही अधिक अनुराग तथा विमल भक्ति-भाव के साथ चखा था । निःसन्देह ही यह ग्रन्थ-रत्न निगमकल्पतरु का गलित फल है (निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्) वेद-वेदान्त का सार है,[1] प्रस्थानत्रय के स्तरों में निहित गूढ़ अर्थों का सर्व-साधारण के सामने सीधी भाषा में प्रकट करनेवाला व्याख्यान ग्रन्थ है; अतः इसके सिद्धान्तों को वैदिक सिद्धान्तों का सार मानने में किसी को विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती । तथापि हमें तो यह बात विवाद-शून्य प्रतीत होती है कि वल्लभाचार्य जी के ऊपर इसी पुराण-रत्न ने सबसे अधिक अन्तरङ्ग-रूपेण अपना प्रभाव डाला जिसका फल हमें 'पुष्टि' की भक्तिमयी साधना पद पद पर दिखलायी देता है ।

'पुष्टि' का अर्थ

'पुष्टि' शब्द ही को देखिये । बहुत-से देशी तथा विदेशी विद्वान् इस शब्द से अन्न-पान के द्वारा शरीर की पुष्टि करनेवाले सम्प्रदाय की

१—सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥
(भा० १२।१३।१५)

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n294/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना करते हैं और उनके भ्रान्त विचार के अनुसार 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' की ही गूँज वल्लभाचार्य के पवित्र सिद्धान्तों में सुन पड़ती है! परन्तु आंचार्य ने ऐसे जीवन की बड़ी निन्दा की है[1]। इस कठिन शब्द के अज्ञान से ही समुज्जृम्भित ये सब अनर्गल कल्पनाएँ हैं। यह शब्द आचार्य को भागवत से प्राप्त हुआ। भागवत के द्वितीय स्कन्ध १० वें अध्याय के चतुर्थ श्लोक में पुष्टि या पोषण का अर्थ भगवान् का अनुग्रह बतलाया गया है—पोषणं तदनुग्रहः। इसी श्लोकांश के आधार पर वल्लभ ने अपने सिद्धान्त को 'पुष्टि' के नाम से पुकारा है। इस शब्द का यह उत्पत्तिस्थल ही स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर रहा है कि यह श्रीमद्भागवत की देन है। आचार्यजी ने इसे भागवत से प्राप्त किया।

पुष्टिमार्ग की प्राचीनता

श्रीभगवान् के अनुग्रह को ही मुक्ति का एकमात्र साधन बतलाने का सिद्धान्त आधुनिक नहीं है। यह तो वेदकाल से चला आता है। यह उपनिषदों में यत्र तत्र सूत्ररूप से पाया जाता है। देखिये, मुण्डक उपनिषद् ने आत्मा की उपलब्धि का कारण बतलाते समय न तो प्रवचन को कारण माना है, न मेधा को और न बहुशास्त्रश्रवण को, प्रत्युत यही बतलाया है कि जिस पर उसकी कृपा होती है वही उसे प्राप्त कर सकता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

कठोपनिषद् में भी (१।२।२०) 'तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु-

[1] विषमाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।
(संन्यासनिर्णय ६)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n295/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादान्महिमानमात्मानः' कहकर भगवान् के प्रसाद से ही आत्मस्वरूप के दर्शन करने की बात कही गयी है। अतः भगवदनुग्रह का यह सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है, वैदिक है, परन्तु आचार्यचरण ने इसे ही मुक्ति की मूल भित्ति मानकर अपना जो पुष्टिमार्ग चलाया उसमें श्रीमद्भागवत ही प्रधान कारण प्रतीत होता है। भागवत में वैदिक सिद्धान्तों की ही तो विस्तृत व्याख्या है। श्रुति में जो सूत्ररूप से है उसका भाष्य हमें भागवत में उपलब्ध होता है। भागवत में भगवद्नुग्रह को बड़ा महत्त्व दिया गया है। ज्यों ही भक्त भगवान् के सम्मुख होता है, भगवान् दया करके उसके समस्त पातकों को जलाकर उसे अपना लेते हैं तथा दुःखों से मुक्ति की व्यवस्था कर देते हैं। वह तो भक्तवत्सल ठहरे, भागवत का कहना है कि भगवान् कल्पतरु-से स्वभाव वाले हैं—

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः॥
(भाग० ८। २३। ८)

जो कामी भक्त हैं, भगवान् से याचना करते हैं उन्हें तो उसका मुँह माँगा फल दे ही देते हैं, परन्तु अनिच्छुक अकामी भक्तों को भी स्वयं अपना चरण-कमल प्रदान कर देते हैं जिससे उनकी सब इच्छाएँ ही आप-से-आप समाप्त हो जाती हैं। अहा, भगवान् कैसे कृपालु हैं—

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥
(भाग० ५। १९। २७)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n296/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनिवेदन की विशिष्टता

भक्ति के द्वारा ही भगवान् का अनुग्रह हमें प्राप्त हो सकता है। बिना भक्ति के ज्ञान, कर्म हस्तिस्नान की तरह बिल्कुल निष्फल हैं। प्रह्लादजी ने दान, व्रत, शौच आदि को व्यर्थ बतलाकर भगवान् की प्रीति सम्पादन करने के लिये निर्मला—निष्काम-भक्ति को ही एकमात्र साधन बतलाया है—

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥
(भाग० ७।७।५२)

परन्तु भक्ति तो नवधा ठहरी। श्रवण, कीर्तन, वन्दनादि के द्वारा भक्ति की जाती है, परन्तु श्रवणादि भक्ति के बहिरङ्ग साधन के समान प्रतीत होते हैं। इनमें भक्त की भगवान् से पृथक् ही सत्ता बनी रहती है, तादात्म्य का पक्का रंग अभी तक चढ़ा हुआ नहीं देख पड़ता। 'एकात्मता' की ऊँची सीढ़ी अभी दूर ही दृष्टिगोचर होती है। इसके लिये अन्तिम भक्ति-प्रकार आत्मनिवेदन ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। गीता में इसका सूत्र मिलता है, भागवत में इसका भाष्य। भागवत ने आत्मनिवेदन से सद्यः अमृतत्वलाभ तथा कृष्णैकात्म्य की प्राप्ति बतलायी है। एकादश में भगवान् का स्वयं कहना है—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥
(११।२९।३४)

जब तक भगवदर्पण नहीं किया जाय, वेदविहित त्रिवर्ग एकदम मिथ्या हैं, यह प्रह्लादजी का कथन (७।३।२६) बिल्कुल सत्य है।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n297/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः भक्ति के सब प्रकारों में आचार्यजी ने आत्मनिवेदन को जो अपना मन्त्र बनाया, वह भागवत के सर्वथा सम्मत ही है।

शरणागति

श्रीकृष्ण के शरण में बिना गये मनुष्य का कल्याण साधन नहीं हो सकता। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' गीता बतलाती है। भागवत में भी इस विषय का बड़ा ही प्रभावोत्पादक वर्णन हम पाते हैं। जो मनुष्य भगवान् को छोड़कर दूसरे की शरण में जाता है, वह मूर्ख कुत्ते की पूँछ पकड़ कर समुद्र को पार करना चाहता है—

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम्।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम्॥
(भाग० ६।६।२२)

तापत्रय से सन्तप्त मनुष्य के लिये भगवान् का पादपद्म ही तो एकमात्र शरण है। उद्धवजी का कथन है—

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे
सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश।
पश्यामि नान्यच्छरणं तावङ्घ्रि-
द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात्॥
(११।१६।६)

ऐसे मनुष्य को किसी प्रकार के क्लेश बाधा नहीं पहुँचाते (भाग० ३।२२।३५) तथा अपनी भ्रुकुटि से समस्त विश्व को ध्वंस करनेवाला यमराज भी ऐसे मनुष्य को अपने प्रभाव के बाहर समझता है (३।२६।५६)। ऐसा होना उचित ही है, क्योंकि भगवान् के पादपद्म 'अभयं' सर्वतो भावशून्य हैं, 'ऋतं' अविनाशी हैं तथा 'अशोकं' नितरां शोकरहित हैं—

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n298/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
न्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥
(१०।५१।५६)

जब तक हम भगवान् के शरणापन्न नहीं हैं, तभी तक ही यह गृह कारागृह है, राग-द्वेष चोर हैं, मोह पादबन्धन है। शरणागति के अनन्तर तो भगवद्भक्ति के साधक होने से इनमें स्वार्थ के कीड़े मर जाते हैं; ये सब परार्थ होने से श्लाघनीय बन जाते हैं।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावद् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥

अतः मुक्तिसाधन में शरणागति का बड़ा उपयोग है। महाप्रभुजी ने शरण मन्त्र को अपनाकर अपनी भागवत तत्त्वज्ञता का गहरा परिचय दिया है।

उपसंहार

अब तक के विवेचन से यह बात किसी भी आलोचक को स्पष्ट मालूम पड़ जायगी कि पुष्टिमार्ग का उपरिविवेचित रूप भागवत के आधार पर है। इसलिये इस मत के आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के बाद 'व्यास की समाधि भाषा'—भागवत—को भी प्रमाण—चतुष्टय में ठीक ही गिनाया है[1]। सच तो यह है कि श्रीमद्भागवत की महिमा अमित है। सब वैष्णव-सम्प्रदायों पर भागवत की अमिट छाप लगी हुई है, विशेषकर वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय पर।

———

१ वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ ६६ ॥
(शुद्धाद्वैतमार्तण्ड पृ० ४६)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n299/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैव तन्त्र

(६) पाशुपत मत

वैदिक धर्म के इतिहास में शैवधर्म का अभ्युदय बहुत महत्त्वशाली है। प्राचीनता तथा व्यापकता दोनों दृष्टि से 'शैवधर्म की महत्ता माननी पड़ती है। सिन्धु की उपत्यका में आविर्भूत सभ्यता को विद्वान् लोग आर्य या अनार्य, वैदिक अथवा पूर्व-वैदिक, किसी भी नाम से पुकारें, इतना तो निश्चित है कि मोहन-जो-दड़ो की उस सभ्यता में शिव की पूजा अवश्य ही प्रचलित थी। वैदिक संहिताओं में भगवान् रुद्र की भव्य स्तुतियाँ उपलब्ध होती ही हैं। आर्य सभ्यता के नवीन केन्द्रभूत आर्य उपनिवेशों में भी वैदिक धर्म के साथ साथ शिव की उपासना प्रचुर मात्रा में प्रचारित जान पड़ती है। जहाँ भारतीय आर्यों ने अपने ऐहिक अभ्युदय की सिद्धि के लिये या वैदिक संस्कृति के प्रचार के लिये नये उपनिवेशों की स्थापना की, वहाँ शिव की आराधना ने भी अपना पैर जमाया। सुमात्रा, जावा, बालि तथा चम्पा में शिवमूर्तियों के मिलने का प्रधान कारण यही है। जावा की प्राचीन भाषा में निर्मित 'सूर्यसेवन' नामक ग्रन्थ में आदित्यरूप में शिव की ही उपासना वर्णित है। बालिद्वीप से प्राप्त शिवस्तवों का संपादन स्व० डा० लेवी ने किया है। ये स्तव "बालिद्वीपग्रंथाः" नाम से गायकवाड़-सीरीज (नं० ६७) में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्हें पढ़कर तथा इनकी भाषा और भाव को देखकर कौन कह सकता है कि इनकी रचना इस पवित्र आर्यावर्त से कहीं बाहर हुई होगी?—

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n300/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवः कर्ता शिवो धाता शिवो दत्तवरप्रदः।
शिवो रक्षतु मां नित्यं शिवाय च नमोऽस्तु ते॥
शिवो भोक्ता शिवो भोग्यं दासकं च शिवात्मकम्।
यजमानः शिवश्चापि मां रक्षतु नमोऽस्तु ते॥

बालिद्वीप के शिवोपासक 'पेदण्ड' (पुरोहित=ब्राह्मण) भक्तिभाव-संवलित हृदय से इन श्लोकों का उच्चारण कर आज भी अपनी अटूट शैव-श्रद्धा का परिचय देते हैं। अतः भारतीय संस्कृति के बहुमुख प्रसार से भली भाँति परिचय पाने के लिये शिव के वैदिक तथा तान्त्रिक स्वरूप को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

रुद्र-शिव की कल्पना नितान्त आर्य और वैदिक है। पश्चिमी विद्वान् तथा उनके अन्धाधुन्ध अनुयायी कतिपय भारतीय वैदिक स्कालर लोग भी रुद्र की कल्पना को अनार्य द्रविड़ धर्म के सम्पर्क का फल बतलाने में नहीं हिचकते, परन्तु वैदिकधर्म के मर्मस्थल के पारखी विद्वज्जनों की दृष्टि में यह कथन विशेष मूल्य नहीं रखता। वैदिक संहिताओं में रुद्र, शङ्कर, शिव, शर्व, आदि का प्रयोग एक ही देवता के लिये दृष्टिगोचर होता है। शिव अग्नि के ही प्रतीक हैं। वैदिक आर्यगण अग्निदेव के उपासक थे ही। अरघे के भीतर लिङ्गमय शिव की कल्पना में वेदी के भीतर दुग्ध या हविष्य से प्रज्ज्वलित अग्निशिखा का ही प्रतिनिधित्व दृष्टिगत होता है। इस प्रसङ्ग में 'ज्योतिर्लिङ्ग' शब्द पर ध्यान देना आवश्यक है। शुक्लयजुर्वेदसंहिता के शतरुद्रिय अध्याय में रुद्र की प्रकृष्ट महनीयता का प्रतिपादन किया गया है। रुद्र के ही लिये भव, शर्व, पशुपति, नीलग्रीव तथा शितिकण्ठ शब्दों का प्रयोग किया गया है[1]। सुख के उदयस्थान होने से रुद्र ही 'शम्भव' हैं;

---

१ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठायच॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n301/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐहिक सुख के उत्पादक होने के कारण उनकी संज्ञा 'शंकर' है तथा मोक्षरूपी आनन्द के देने से उनका ही नाम 'मयोभव' है (स्रक्चन्दनादिरूपेण लौकिकसुखकारित्वं शास्त्रादिरूपेण ज्ञानप्रदत्वात् मोक्षसुखकारित्वमित्यर्थः—यजुःसंहिता, १६।४१ पर महीधरभाष्य)। उपनिषदों के अनुशीलन से रुद्र की 'महादेवता' तथा व्यापकता का काफी परिचय मिलता है। इस प्रसङ्ग में 'अथर्वशिर'-उपनिषद् का पर्याप्त महत्त्व है। इस उपनिषद् के आरम्भ में रुद्र ब्रह्मा, विष्णु, स्कन्द, चन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य आदि समग्र देवात्मक माने गए हैं। जगत् के समस्त पदार्थ रुद्ररूप ही हैं। श्वेताश्वतर'-उपनिषद् की दृष्टि में रुद्र एक ही है—दूसरा नहीं—जो अपनी शक्तियों से इन लोकों को वश में रखता है।

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ (३।२)

इस उपनिषद् में रुद्र तथा शिव की एकता मानकर शिव के विराट् रूप का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया गया है (श्वेता० ३।११)। 'रुद्रहृदय'-उपनिषद् में रुद्र की व्यापकता का विस्तृत विवेचन है। रुद्र तथा उमा की युगल मूर्ति जगत् के समस्त पदार्थों की प्रतीक बताई गई है। ब्रह्मा-वाणी, विष्णु-लक्ष्मी, सूर्य-छाया, सोम-तारा, दिवा-रात्रि, यज्ञ-वेदि, वह्नि-स्वाहा, वृक्ष-वल्ली—यावत् स्त्री-पुरुषमय विश्व का समावेश रुद्र-उमा के युगल रूप में हो जाता है। अतः रुद्र की श्रेष्ठता सर्वतोमुखी है—

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधाकृता ॥
—रुद्रहृदयोपनिषत्, ८

पुराणों के अध्ययन से शैव धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की स्थिति

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n302/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता चलता है। महाभारत, शिवपुराण, वायुपुराण, कूर्मपुराण आदि ग्रन्थों में शैव धर्म का बड़ा विस्तार दिखलाई पड़ता है। वामनपुराण के अनुसार शैवों के चार विख्यात सम्प्रदाय थे—शैव, पाशुपत, कालादमन तथा कापालिक। ब्रह्मसूत्रों के तर्कपाद (द्वितीय अध्याय के दूसरे पाद) में ईश्वर को केवल निमित्त-कारण माननेवाले पाशुपतों के इस विषय के मत का खण्डन किया गया है। ब्रह्मसूत्र (२।२।३७) के भाष्य तथा टीकाओं में सम्प्रदाय-विषयक अनेक महत्त्व की बातों की ओर संकेत किया गया है। शाङ्करभाष्य की भामती तथा रत्नप्रभा में माहेश्वरों के चारों सम्प्रदायों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं—शैव, पाशुपात, कारुणिक-सिद्धान्ती तथा कापालिक। इस सूची के तीसरे नाम के विषय में मतभेद दीखता है, क्योंकि भास्कर ने अपने भास्कर भाष्य में इसके स्थान पर 'काठक-सिद्धान्ती' तथा यामुनाचार्य ने 'आगम-प्रामाण्य'-ग्रन्थ में 'कालामुख' नाम दिया है। कालामुख नाम के अधिक लोकप्रिय होने के कारण हम भी माहेश्वरों के सम्प्रदाय-चतुष्टय में इसी को स्थान देते हैं। ये समस्त मत शैवतन्त्रों के आधार पर प्रतिष्ठित हैं। इन शैवतन्त्रों की प्रामाणिकता के विषय में प्राचीन आचार्यों में स्पष्टतः दो मत दृष्टिगत होते हैं। एक मत पाशुपतों को वेदबाह्य मानता है। महिम्नःस्तोत्र की यह उक्ति 'त्रयी सांख्ययोगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति' पाशुपत मत की वेदबाह्यता की समर्थक है। ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद में इसका खण्डन इसी दृष्टिकोण से किया गया है। परन्तु शैवागम के पारंगत आचार्यों की माननीय सम्मति में पाशुपत सम्प्रदाय नितान्त वैदिक है। श्रीकण्ठाचार्य शैवतन्त्रों को वेदों के समान ही माननीय, प्रामाणिक तथा प्राचीन बतलाते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में शिव ही दोनों के रचयिता हैं[१]। श्रीकण्ठभाष्य की 'शिवकर्मणिदीपिका'-व्याख्या में

१ वयं तु वेदशिवागमयोर्भेदं न पश्यामः। वेदेऽपि शिवागम इति

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n303/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध दार्शनिक अप्पयदीक्षित ने शैव तन्त्रों को वैदिक तथा अवैदिक रूप से द्विविध मानकर भी दोनों का प्रमाण्य समान भाव से स्वीकार किया है। अधिकारी भी अधिकार-भेद से दो तरह के हैं। वेदाधिकारियों के लिये वैदिक शैवतन्त्रों की उपादेयता है, परन्तु वेदानधिकारी स्त्री-शूद्रादिकों के लिये अवैदिक तन्त्रों की। इस प्रकार शैवमत के इन प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मति में शैवतन्त्र अप्रामाणिक नहीं है। अतः पाशुपत सम्प्रदाय की भी प्रामाणिकता तथा उपादेयता निःसन्दिग्ध मान्य है।

इतिहास

इन चारों सम्प्रदायों में से प्राचीनतम पाशुपत मत का संक्षिप्त वर्णन इस छोटे-से लेख में किया जाता है। तान्त्रिक शैवमतों में पाशुपतों की प्राचीनता उनके लिये गौरव की चीज है। अथर्वशिर-उपनिषद् में पाशुपतों के विशिष्ट 'व्रत' तथा पशु-पाश-पति आदि पारिभाषिक शब्दों से साफ मालूम होता है कि अवान्तर उपनिषत्काल में इस तान्त्रिक सम्प्रदाय का जन्म हो चुका था तथा यह विकासोन्मुख हो चला था। महाभारत, शिवपुराण तथा वायुपुराण में पाशुपतों के विशिष्ट सिद्धान्तों का भली भाँति परिचय मिलता है। महाभारत के कथनानुसार भगवान् पशुपति ने ही मानवजनों के कल्याणार्थ इस मत के सिद्धान्तों की उद्भावना की थी। उस समय उपमन्यु पाशुपत-सम्प्रदाय के इतने बड़े आचार्य थे कि स्वयं श्रीकृष्ण ने इस शास्त्र के विषय में उनकी शिष्यता ग्रहण की थी। वायुपुराण में 'पाशुपतयोग' का विशेष विवेचन किया गया है। श्रीमद्भागवतपुराण (४ स्कन्ध,

---

व्यवहारो युक्तः। तस्य तत्कर्तृत्वात्। अतः शिवागमो द्विविधः त्रैवर्णिकविषयः सर्वविषयश्चेति। उभयोरेकः कर्ता शिवः। उभावपि प्रमाणभूतौ वेदागमौ।—श्रीकण्ठभाष्य, २।२।३८

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n304/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—५ अध्याय) में सती के भस्म होने तथा दक्ष के यज्ञविध्वंस के प्रसङ्ग से अनुशीलनकर्ता को यह ज्ञात हुए बिना न रहेगा कि उस समय ऐसे शैव सम्प्रदायों का जन्म हो चुका था जो अनेक अंशों में वैदिक मार्ग के विपरीत चलनेवाले थे तथा वैदिक मार्गों में उन्हें भाग देना किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं माना जाता था।*

पाशुपत सम्प्रदाय के ऐतिहासिक संस्थापक का नाम लकुलीश या नकुलीश था। शिवपुराणान्तर्गत कारवण-माहात्म्य से पता चलता है कि लकुलीश का जन्म कारवण ग्राम में हुआ था जो आज भी बड़ौदा रियासत में भड़ोंच के आसपास एक छोटा-सा गाँव है। लकुलीश की मूर्तियाँ राजपूताना, गुजरात, मालवा, दक्षिण-भारत तथा गौड़देश में भी पाई जाती हैं। इन मूर्तियों की वाह्य वेशभूषा ही उन्हें अन्य मूर्तियों से पृथक् करने के लिये पर्याप्त मानी जा सकती है। माथे पर घना केशकलाप, एक हाथ में बीजपूरक का फूल और दूसरे में लगुड (दण्ड)—इन मूर्तियों की विशेषताएँ हैं। लगुली या लकुटी धारण करने के कारण ही लकुलीश की लकुलीशता है। शिव के १८ विभिन्न अवतारों में लकुलीश आद्य अवतार माने जाते हैं। मथुरा में उपलब्ध शैवस्तम्भ तथा उस पर उत्कीर्ण शिलालेख के अध्ययन से लकुलीश के आविर्भावकाल का पता चलता है। यह शिलालेख† गुप्तसंवत् ६१

---

* भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥२८
नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥२९
—भागवत ४।२

† देखिए 'एपिग्राफिका इंडिका,' १९३१, डा० भाण्डारकर का एतद्विषयक निबन्ध।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n305/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सन् ३८० ईस्वी) का है तथा गुप्तनरेश चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल से सम्बद्ध है। इसमें उदिताचार्य नामक पाशुपताचार्य के द्वारा एक शैव मन्दिर की प्रतिष्ठा तथा उसमें अपने गुरुओं की मूर्तियों के प्रतीकरूप उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर नामक शिवलिंगों की स्थापना का वर्णन मिलता है। उदिताचार्य अपने को कुशिक से दशम बतलाते हैं और ये कुशिक लकुलीश के साक्षात् शिष्य थे। अतः उदिताचार्य और लकुलीश के समय में ग्यारह पीढ़ियों का अन्तर है। यदि एक पीढ़ी के लिये बीस साल का समय माना जाय, तो लकुलीश का समय द्वितीय शताब्दी का अन्तिम भाग ठहरता है और यह वही युग है जिसमें कुषाणवंशीय नरेश हुविष्क की सुवर्णमुद्राओं पर लकुटधारी मूर्तियाँ मिलती हैं। इस प्रकार विक्रम के दो सौ वर्ष बाद लकुलीश ने इस सम्प्रदाय को गुजरात में चलाया और वहीं से यह धर्म धीरे धीरे समग्र भारत में फैल गया। न्याय-वैशेषिक दर्शन का पाशुपत मत से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। गुणरत्न के अनुसार न्याय के अनुयायी 'शिव' के उपासक थे तथा वैशेषिक के मतावलम्बी 'पशुपति' के (—द्रष्टव्य 'षड्दर्शनसमुच्चय' की वृत्ति)। न्याय-वार्तिक के रचयिता उद्योतकर ने 'पाशुपताचार्य' उपाधि धारण करने की बात लिखी है। काश्मीर के विख्यात नैयायिक भासर्वज्ञ ने तो 'गण-कारिका'-जैसे मान्य पाशुपत ग्रन्थ की रचना ही की है। दशम शताब्दी के अनन्तर पाशुपतों की लोकप्रियता में ह्रास दीख पड़ता है।

पाशुपत साहित्य

पाशुपत सम्प्रदाय के ग्रन्थों की स्वल्पता का यही कारण है। पुराणों को छोड़ देने पर केवल इसी मत के प्रतिपादक विशेष ग्रंथों की न्यूनता बेतरह खटकती है। माधवाचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध 'सर्वदर्शन-संग्रह' में 'नकुलीशपाशुपत' नाम से जो कुछ लिखा है वही बहुत दिनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n306/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक इस मत का केवलमात्र विवेचन माना जाता था। जैन दार्शनिक राजशेखर सूरि के 'षड्दर्शनसमुच्चय' में 'यौगमत' के नाम से इस सम्प्रदाय का वर्णन उतना प्रसिद्ध नहीं है। गुणरत्न ने अपनी वृत्ति में अनेक प्रामाणिक बातों का संग्रह किया है। 'न्यायसार' के रचयिता भासर्वज्ञ (८०० ई०) ने गणकारिका में केवल आठ कारिकाओं में पाशुपत तत्त्वों का सारांश उपस्थित किया है, परन्तु इसकी किसी अज्ञातनामा लेखक के द्वारा विरचित 'रत्नटीका' पाशुपत सिद्धांतों के विद्योतन के लिये वस्तुतः रत्नरूपा है। इस ग्रन्थ में समस्त तत्त्वों की छानबीन बड़े विस्तार के साथ की गई है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से इस मत के दार्शनिक रूप का सजीव चित्र सामने खड़ा हो जाता है। इसका प्रकाशन बड़ौदे से 'गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज' में हुआ है। परंतु सौभाग्यवश पाशुपतों का मूल सूत्रग्रन्थ प्राचीन माननीय भाष्य के साथ अभी हाल ही में उपलब्ध हुआ है और अनन्तशयन-संस्कृत-ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ है। इसके पाँच अध्याय हैं और सूत्रों की संख्या १६८ है। भगवान् पशुपति के द्वारा रचे हुए इन सूत्रों का प्राचीन भाष्य—कौण्डिन्यकृत पञ्चार्थभाष्य—भी प्रकाशित हुआ है। यह नितान्त प्रामाणिक, प्राचीन तथा महत्त्वशाली है। माधवाचार्य ने 'राशीकरभाष्य' के नाम से इसी का अनेक बार उल्लेख किया है। राशीकर व्यक्तिगत नाम प्रतीत होता है और कौण्डिन्य गोत्र-नाम। अभी तक पाशुपत-साहित्य का इतना ही अंश उपलब्ध तथा प्रकाशित हो पाया है।

सिद्धान्त

पाशुपत मत की आध्यात्मिक दृष्टि द्वैतवाद की है। जीव वस्तुतः शिवरूप ही है, परन्तु वह अनेक पाशों में जकड़ा हुआ अपने को उसी भाँति पराधीन तथा निःसहाय पाता है जिस प्रकार सींकड़ों में बँधा

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n307/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ पशु। इसी समता के बल पर वह 'पशु'-पदवाच्य होता है। शिवरूप होकर भी जीव माया के बन्धनों के कारण इतना संसारी बन गया है कि वह अपने को शिव से पृथक् समझने लगता है। योग तथा विधि के अनुष्ठान से वह शिवरूपता को प्राप्त कर लेता है, पर शिव के साथ तादात्म्य नहीं प्राप्त कर सकता; मुक्तावस्था की उन्नत दशाओं में भी जीव तथा शिव में किञ्चिन्मात्र अन्तर बना ही रहता है। 'शैवसिद्धान्त' के अनुयायी भी द्वैतवादी ही हैं, परन्तु इन दोनों मतों के सिद्धान्तों में गहरा मतभेद है।

पाशुपतों के अनुसार पाँच ही पदार्थ होते हैं जिनका ज्ञान शिवत्व-प्राप्ति का द्वार माना जाता है। इन पदार्थों के नाम हैं (१) कारण, (२) कार्य, (३) योग, (४) विधि, और (५) दुःखान्त। इनमें 'कारण' से साक्षात् पशुपति शिव का बोध होता है। वह निरतिशय ऐश्वर्य-सम्पन्न होता है। वह इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश का कारण होता है तथा क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति का आश्रय होता है। व्याकरण शास्त्र भी शैवागम में ही अन्तर्भुक्त स्वीकृत किया गया है। अतः महर्षि पाणिनि-रचित कर्तृत्व की परिभाषा 'स्वतन्त्रः कर्ता' शैवतन्त्रों को भी उतनी ही माननीय है। स्वतन्त्रता कर्तृत्व की प्रधान परिचायिका है। जो पदार्थ किसी भी अन्य वस्तु पर अवलम्बित हुए बिना—स्वनिरपेक्ष भाव से—कार्य-सम्पादन की योग्यता धारण करता है, वही 'कर्ता' है। शिव में निरतिशय स्वातन्त्र्य होने के कारण ही उनमें कर्तृत्व की स्थिति है। वे किसी अन्य कारण की सहायता के बिना ही समग्र व्यापार के संचालन में कृतकार्य हैं, इसीलिये उनके वास्ते 'कारण'-पद का प्रयोग किया है—

कर्मादिनिरपेक्षस्तु स्वेच्छाचारी यतो ह्ययम्।
अतः कारणतः शास्त्रे सर्वकारणकारणम्॥

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n308/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) कार्य—कारण के द्वारा निर्मित पदार्थ 'कार्य' कहलाता है। अतः अपनी सत्ता के लिये कारणद्रव्य पर प्रधानतया आश्रित होने के कारण कार्य सदा परतन्त्र रहता है (यदस्वतन्त्रं तत्कार्यम्)। यह तीन प्रकार का होता है—(क) विद्या, (ख) कला, (ग) पशु। विद्या विवेक तथा अविवेक-प्रवृत्ति-जनक होने से द्विविधा मानी गई है। विवेकप्रवृत्ति का ही अन्य नाम चित्त है। अबोध पशुओं के अधर्म का उत्पादक है। (ख) चेतन के परतन्त्र होनेवाले स्वयं अचेतन द्रव्य की संज्ञा 'कला' है। (चेतनपरतन्त्रत्वे सति अचेतना कला)। यह दो प्रकार की होती है—कार्यरूपाकला, पृथिव्यादिभूतपञ्चक तथा रूपरसादि विषयपञ्चक-संवलित होने से सहज में दशविध है; करणरूपाकला के अन्तर्गत पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा बुद्धि-अहङ्कार-मनरूप अन्तःकरणत्रय की गणना की जाती है। (ग) 'पशु' से तात्पर्य बद्ध जीव से है। कौण्डिन्यभाष्य में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'पश्यनात् पाशनाच्च पशवः। पाशा नाम कार्यकरणाख्याः कलाः। ताभिः पाशिता बद्धा सन्निरुद्धा शब्दादिविषयपरवशा भूत्वाऽवतिष्ठन्ते।' अर्थात् कलाओं के द्वारा वशीभूत किए जाने के कारण ही जीव 'पशु'-पदवाच्य होता है। वह पाशुपतों की दृष्टि में दो प्रकार का होता है—सांजन और निरंजन। शरीरेन्द्रियधारी जीव 'सांजन' और उससे विरहित जीव 'निरंजन' कहलाता है।

(३) योग—चित्त के द्वारा आत्मा और ईश्वर के संयोग को 'योग' कहते हैं (चित्तद्वारेण आत्मेश्वरसंयोगो योगः)। यह भी दो प्रकार का होता है—क्रियालक्षण तथा क्रियोपरमलक्षण। जप्य देवता की ध्यान-धारणा करना क्रियात्मक योग है। संविद्गत्यादि-संज्ञक योग की गणना दूसरे प्रकार में है। वायुपुराण के अनेक अध्यायों में (११-१६ अ०) पाशुपत योग के स्वरूप, भेद अन्तराय तथा सिद्धियों का विशद-विस्तृत वर्णन मिलता है। जिज्ञासु पाठक उसे वहीं देखें।

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n309/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) विधि—योग यदि मानस आचार का द्योतक है, तो विधि बाह्य आचार का। इसका बड़ा विस्तार है जिसके अनुशीलन से पाशुपत मत के वैशिष्ट्य का पता चलता है। कुछ विधियाँ प्रधान और कुछ गौण होती हैं। प्रधान विधि व्रत तथा द्वार-भेद से दो प्रकार की होती है। पाशुपतों के प्रधान व्रतों में भस्मस्नान, भस्मशयन, उपहार (नियम), जप तथा प्रदक्षिणा की गणना है। उपहार के छः भेद पाशुपत्रसूत्रों में निर्दिष्ट किये गये हैं :—(१) हसित (अट्टहास करना), (२) गीत (शैवपदों का नियमानुकूल गायन) (३) नृत्य या नाट्य (नाट्यशास्त्रानुकूल नाचना) (४) हुडुक्कार—जीभ तालु के संयोग से बैल के समान 'हुड्' 'हुड्' शब्द करना (५) नमस्कार, (६) जप्य। 'द्वार' के अनेक भेद बतलाए जाते हैं :—(१) क्रथन—न सोए हुए पुरुष का सुप्त पुरुष की भाँति चेष्टा करना, (२) स्पन्दन—लकवा से अभिभूत के समान अंगों का कम्पन, (३) मन्दन—लँगड़े के भाँति लँगड़ाते हुए चलना, (४) शृङ्गारण—रूपयौवनसम्पन्ना सुन्दरी के सामने कामीजन के समान शृंगारिक चेष्टाओं का प्रदर्शन, (५) अवितत्करण—लोकविनिन्दित कार्यों का सम्पादन, (६) अविद्भाषण—ऊटपटाँग, अनर्गल बातों का कहना। गौणविधि में उच्छिष्टभक्षण आदि अनेक वस्तुओं का ग्रहण होता है। इन विधियों का सम्पादन करना पाशुपतों के लिये नितान्त आवश्यक है। प्राचीन ग्रन्थों में 'पाशुपत-व्रत' शब्द के द्वारा इन्हीं विशिष्ट अनुष्ठानों की ओर संकेत किया गया है।

(५) दुःखान्त—जिन्हें अन्य दर्शनों में सामान्यतः 'मोक्ष' कहते हैं। यह दो प्रकार का है—अनात्मक तथा सात्मक। त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिकी निवृत्ति को अनात्मक (निषेधमूलक) दुःखान्त कहते हैं, परन्तु परमैश्वर्य की उपलब्धि 'सात्मक' कही जाती है। तान्त्रिकी मुक्ति की कल्पना भावात्मक है, अभावरूप नहीं। त्रिविध ताप के निवृत्त

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n310/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर भी अन्य दर्शनों द्वारा अभिमत मोक्ष किसी भाव पदार्थ को प्राप्ति नहीं करता; अतः वह उपादेय नहीं हो सकता। परन्तु-शास्त्र में मुक्ति लाभ करते ही ज्ञान-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति का उदय स्वतःसिद्ध हो जाता है। ज्ञान के आविर्भाव से मुक्त पुरुष सूक्ष्म, विप्रकृष्ट तथा व्यवहित पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है (दर्शन), अशेष शब्दों को सुन सकता है (श्रवण), समस्त वस्तुओं के चिन्तन में सिद्धि लाभ करता है (मनन), समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करता है (विज्ञान), अतीत तथा अनागत समग्र पदार्थों का सर्वदा तथा सर्वथा ज्ञान प्राप्त कर लेता है (सर्वज्ञत्व)। तन्त्र क्रिया तथा ज्ञान का सामंजस्य मानता है। अतः ज्ञान के साथ ही साथ क्रिया-शक्ति का भी आविर्भाव एक ही समय निष्पन्न हो जाता है जिससे पुरुष किसी भी कार्य को निरतिशय वेग से सिद्ध कर लेता है (मनोजवित्व), कर्म के बिना स्वेच्छया विलक्षण कार्यों का संपादन करता है (कामरूपित्व) तथा शरीरेन्द्रियहीन होने पर भी निरतिशय ऐश्वर्य से वह संसिद्ध बन जाता है (विकरणधर्मित्व)। इतनी योग्यता की प्राप्ति तन्त्र की दृष्टि में मुक्ति की सहचारिणी होती है। जीव जब शिवरूप बन जाता है, तब भला उसकी इच्छा का विघात कभी हो सकता है? कहना न होगा कि इन विविध आचारों की सार्थकता भक्ति की कल्पना पर निर्भर होती है। भक्ति-भाव से आप्यायित भक्त योग तथा विधि का अनुष्ठान कर उस परमैश्वर्यपद को पा सकता है। पाशुपत-तन्त्र की यह शिक्षा कितनी महनीय तथा माननीय है!

———

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n311/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समन्वयवाद

(१०) भारतीय दर्शनों का समन्वय

भारतीय तत्त्वज्ञान की विविध विचित्र धाराओं के अनुशीलन से इस चिन्ता धारा की मुख्य दिशा का परिचय भली-भाँति पाठकों को मिल सकता है। भारतीय विचार शास्त्र का मुख्य उद्देश्य इस क्लेश-बहुल प्रपंच के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति कर परमानन्द की उपलब्धि है। अतः इसकी विशेषता 'साधना' में है और इसी साधना के निर्धारण करने के लिए तत्त्वमीमांसा का पर्याप्त उपयोग है। अब प्रश्न यह है कि भिन्न-भिन्न दर्शनों में क्या पारस्परिक विरोध हैं ? सत्य की खोज में लगनेवाले इन दर्शनों में क्या विरोध होना उचित है, जब कि 'सत्य' का स्वरूप निश्चय रूप से एक ही प्रकार का है। यह समस्या बड़ी विषम है, परंतु प्राचीन आचार्यों की दृष्टि इस समस्या की ओर स्वभावतः गयी थी और उन्होंने इसकी बड़ी सुंदर मीमांसा की है।

सबसे पहले यह बात ध्यान देने योग्य है कि शास्त्र का प्रयोजन लोकसिद्ध अर्थ के व्युत्पादन में नहीं है। जो वस्तु आपामर प्रसिद्ध है, उसके सिद्ध करने के लिए शास्त्र युक्तियों का व्यूह निर्माण करेगा, इसकी क्या आवश्यकता है ? लोक-व्यवहार के निरीक्षण से भेद—द्वैत—लोकसिद्ध प्रतीत होता है। लौकिक प्रवृत्ति का मूल इसी भेद पर आश्रित है। 'मैं, तुम'—'मेरा और तेरा' आदि भेद को लेकर ही तो जगत् के समस्त व्यापार चलते हैं। अतः लोकसिद्ध भेद का निराकरण कर अभेद का प्रतिपादन ही शास्त्र का मुख्य प्रयोजन प्रतीत होता है। शास्त्रों में लोकसिद्ध बातों का यदि विवरण उपलब्ध होता है, तो वह

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n312/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद-मात्र है, इसी लिए वाचस्पतिमिश्र का कहना है—"भेदो लोकसिद्धत्वादनूद्यते। अभेदस्तु तदपवादेन प्रतिपादनमर्हति॥" अतः यदि अभेद का व्युत्पादन शास्त्र का मुख्य लक्ष्य है, तो भेदप्रतिपादक न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा आदि दर्शनों की गति क्या होगी? उनकी सङ्गति क्योंकर हो सकेगी? इसके उत्तर में शास्त्रज्ञों की सम्मति है—"अधिकारिविभेदेन शास्त्राण्युक्तान्यशेषतः" अर्थात् अधिकारी के भेद से ही विभिन्न शास्त्रों का कथन किया गया है, अन्यथा शास्त्रकर्ता ऋषिजनों को भी भ्रान्त मानने की अनवस्था उपस्थित हो जाती है। प्रस्थान-भेद के अन्त में मधुसूदन सरस्वती ने प्रधानतया तीन ही प्रस्थान स्वीकृत किये हैं—आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। आरम्भवाद की दृष्टि न्याय-वैशेषिक तथा मीमांसा की है, परिणामवाद सांख्य-योग, भर्तृप्रपञ्च और वैष्णव दार्शनिकों को सम्मत है। विवर्तवाद बौद्धों में विज्ञानवादियों तथा शून्यवादियों को और ब्राह्मणों में अद्वैतवादियों को अभिष्ट है। भारतीय दर्शन-शास्त्र का प्रधान लक्ष्य अद्वैततत्त्व ही है, परन्तु अद्वैततत्त्व इतना सूक्ष्म तथा कुशल-बुद्धिगम्य है कि उसका ग्रहण एक ही बार सद्यः प्रतिपादन से हो नहीं सकता। स्थूल विषयग्राही मानवों के उपकारार्थ मुनियों ने न्यायादि शास्त्रों की रचना की है, जिससे मनुष्य स्थूल से होकर सूक्ष्म वस्तु का ग्रहण क्रम-पूर्वक सुभीते के साथ कर सके। अतः भारतीय दर्शन तो एक ही है और वह है अद्वैत वेदान्त। अन्य दर्शन तो उस पर पहुँचने के लिए सोपानमात्र हैं। मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में ही उसका सिद्धान्त यों है—"न हि ते मुनयो भ्रान्ताः सर्वज्ञत्वात् तेषां, किन्तु बहिर्विषयप्रवणानामापाततः परमपुरुषार्थे प्रवेशो न भवतीति नास्तिक्य-निवारणाय तैः प्रकारभेदाः प्रदर्शिताः सर्वेषां प्रस्थानकर्तॄणां मुनीनां विवर्तवादपर्यवसानेन अद्वितीये परमेश्वर एव वेदान्तप्रतिपाद्ये तात्पर्यम्।"

जगत् को परमाणुओं का कार्य बतलानेवाले आरम्भवाद की दृष्टि

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n313/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त स्थूल है। कारण में कार्य की सत्ता मानने वाले परिणामवाद की दृष्टि उससे सूक्ष्म है, परन्तु विवर्तवाद इन तीनों में सूक्ष्मतम है। विवर्तवाद के अनुसार ब्रह्म ही एक परमार्थभूत तत्त्व है और यह दृश्यमान जगत् उसी का अतात्त्विक विकार है। न्यायदर्शन का मुख्य उद्देश्य कुतार्किकों के मतों के खण्डन करने के लिए युक्तिबहुल प्रमाणों की प्रकृष्ट मीमांसा करना है। इसी लिए एक प्राचीन न्यायाचार्य का कथन है—"इदं तु कण्टकावरणं, तत्त्वं तु बादरायणात्"। जिस प्रकार शस्य रक्षा करने के लिए क्षेत्र के चारों ओर कण्टकमयी वृति लगा दी जाती है, उसी प्रकार अद्वैत-प्रतिपादक उपनिषद्-ज्ञान को तर्ककुशल बौद्धादि नास्तिकों के कुतर्कों से बचाने के लिए न्याय की वृति लगा दी गयी है, परन्तु वास्तव तत्त्व तो बादरायण से प्राप्त करना चाहिए अर्थात् अद्वैत तत्त्व ही वास्तविक है। दर्शनों के प्रयोजन के न जानने से ही उन पर आक्षेप करने का अवसर आता है। 'आत्मा' के विषय में दर्शनों के विवेचन में स्पष्टतः पार्थक्य दीख पड़ता है, परन्तु प्रयोजन की भिन्नता होने से उनमें वास्तव विरोध नहीं है। न्याय का प्रयोजन आत्मा को देह, प्राण और इन्द्रियों से भिन्न सिद्ध करने में है। वह अवश्यमेव आत्मा को जड़ और इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष होने पर ज्ञान-सुखादि गुणों का आश्रय मानता है, परन्तु यह गुणाश्रयिता लोकसिद्ध वस्तु का अनुवाद-मात्र है। इस अंश में विरोध होने पर भी न्याय का पूरा विवेचन अग्राह्य नहीं माना जा सकता। अतः शङ्कराचार्य ने पूर्व अंश का खण्डन न कर उत्तर अंश का ही प्रबल युक्तियों से खण्डन किया है। इसी प्रकार सांख्य का उद्देश्य आत्मा को असङ्ग, निर्लेप, निर्गुण और चैतन्य रूप प्रतिपादन करने में है, पुरुष का बहुत्व तथा भोक्तृत्व लोकसिद्ध वस्तु का अनुवाद-मात्र है, प्रधान विषय नहीं। अतः विरुद्ध अंश के परित्याग करने पर अवशिष्ट अंश का ग्रहण नितान्त न्याय्य और सुसङ्गत है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रख कर विज्ञानभिक्षु ने दर्शनों का समन्वय दिखलाया है—

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n314/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"न्यायवैशेषिकाभ्यां हि मुक्ति-दुःखपरिवृत्तो देहादिमात्रविवेकेन आत्मा प्रथमभूमिकायामनुमापितः एकदा परसूक्ष्मे प्रवेशासंभवात् ।"

सांख्ययोग के आचार्य विज्ञानभिक्षु भारतीय दार्शनिक जगत् में अपनी समन्वय दृष्टि के लिए प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उनके मत में विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों में आपाततः विरोध दीख पड़ने पर भी उनके भीतर परमार्थतः एकता विद्यमान है। इनसे बहुत पहले उदयनाचार्य ने भी इस विरोध का परिहार कर समन्वय की ओर अपनी दृष्टि डाली थी। 'आत्म-तत्त्व-विवेक' में उन्होंने अन्य दर्शनों को मोक्षनगरी का अपद्वार बतलाया है और वेदान्त को पुरद्वार स्वीकृत किया है और स्पष्टतः उपदेश दिया है कि अभ्यास-काम पुरुष अपद्वारों को छोड़ कर पुरद्वार से प्रवेश करे—'तस्मादभ्यासकामोऽप्यपद्वाराणि विहाय पुरद्वारं प्रविशेत् ।' यह कथन वेदान्त की उत्कृष्टता बतलाने में पर्याप्त माना जा सकता है। इसी प्रकार 'न्याय-कुसुमांजलि' में उन्होंने इस समन्वय का निर्देश किया है—"इत्येषा सहकारशक्तिरसमा माया दुरुन्नीतितो मूलत्वात् प्रकृतिः प्रबोधभयतोऽविद्येति यस्योदिता ।" इसका आशय यह है कि ईश्वर अदृष्ट की सहायता से जगत् की सृष्टि करता है, अतः अदृष्ट का ही नाम 'सहकार शक्ति' है। दुर्ज्ञेय होने से यही अदृष्ट 'माया', जगत् का मूल होने से 'प्रकृति' और तत्त्वज्ञान के उदय होने से नष्ट होने के कारण 'अविद्या' पदवाच्य है। अतः जगत् की सृष्टि के विषय में मूल-तत्त्व एक ही है, केवल भिन्न-भिन्न नामों के ही प्रयोग से वह पृथक् प्रतीयमान है। नैयायिकों के मत में अदृष्ट, तान्त्रिकों की 'शक्ति', वेदान्तियों की 'माया' और 'अविद्या' तथा सांख्यों की 'प्रकृति' एक ही मूलतत्त्व की विभिन्न संज्ञामात्र है।

हमने पहले कहा है कि ये तीनों प्रस्थान सोपान की तरह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हुए मूल अद्वैततत्त्व की ओर अग्रसर होते हैं। थोड़ी व्याख्या के अनन्तर यह सिद्धान्त हृदयङ्गम होगा। जगत् के प्रत्येक

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n315/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव-व्यापार में दो अंग होते हैं—अनुभवकर्ता और अनुभव-विषय या शङ्कराचार्य के शब्दों में 'अस्मत्प्रत्ययगोचर' और 'युष्मत्प्रत्ययगोचर'। एक होता है द्रष्टा और दूसरा होता है दृश्य। न्याय-वैशेषिकों की कल्पना के अनुसार यह द्रष्टा 'आत्मा' है और दृश्य पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये भूतपंचक हैं। द्रष्टा के द्वारा दृश्य की अनुभूति के लिए 'मन' की कल्पना है। ज्येष्ठ और कनिष्ठ के लोक-व्यवहार के लिए 'काल' और 'यहाँ', 'वहाँ' व्यवहार के लिए 'दिक्' स्वतन्त्र पदार्थ माने गये हैं। इस प्रकार द्रष्टा और दृश्य रूप में विभक्त जगत् के यथार्थ विश्लेषण के लिए न्याय-वैशेषिक को पंचभूत, काल, दिक्, मन और आत्मा—नौ पदार्थों की पृथक्, स्वतन्त्र सत्ता माननी पड़ती है। अतः प्रथम प्रस्थान की आध्यात्मिक दृष्टि 'बहुत्ववाद' की है। द्वितीय प्रस्थान में भी स्वतन्त्र पदार्थों को घटा कर दो ही मूल पदार्थ स्वीकृत किये गये हैं। द्रष्टा 'पुरुष' रूप में तथा समस्त दृश्य 'प्रकृति' रूप में अङ्गीकृत किये हैं। न्याय का 'आत्मा' सांख्ययोग में 'पुरुष' कहलाता है, परन्तु दोनों प्रस्थानों में यही भेद है कि आत्मा जड़ और चैतन्य, ज्ञान आदि गुणों का अधिष्ठानमात्र है, परन्तु 'पुरुष' चैतन्याश्रय न होकर स्वयं चित्स्वरूप है। मन को वहाँ 'अन्तःकरण' रूप में और चारों क्षित्यादि-परमाणुओं तथा आकाश को पंच 'तन्मात्रा' रूप में स्वीकृत किया गया है। दिक्-काल सांख्यमत में पृथक् पदार्थ नहीं माने जाते। व्यासभाष्य में 'काल' वस्तु शून्य, विकल्पमात्र सिद्ध किया गया है—"स खल्वयं कालो वस्तुशून्योऽपि बुद्धिनिर्माणः शब्दज्ञानानुपाती लौकिकानां व्युत्थितदर्शनानां वस्तुस्वरूप इवावभासते" (व्यास-भाष्य ३।५२)। क्षणों के सन्तान का व्यावहारिक नाम 'काल' है। भिन्न-भिन्न पदार्थों के साथ आकाश के सम्बन्ध होने पर देश की कल्पना व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं। इस प्रकार प्रथम प्रस्थान के नौ पदार्थों के स्थान पर पुरुष और प्रकृति ये ही दो स्वतन्त्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n316/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नित्य पदार्थ माने गये । सांख्य-प्रस्थान में न्याय-प्रस्थान के बहुत्व-वाद के स्थान पर 'द्वैतवाद' की प्रतिष्ठा की गयी । तृतीय प्रस्थान में पूर्ण अद्वैतवाद की स्थापना की गयी है । सांख्यों की प्रकृति 'माया' रूप में तथा पुरुष 'ब्रह्म' रूप में गृहीत हुआ, परन्तु एक विशेषता के साथ । माया ब्रह्म की शक्ति मान ली गयी, जिससे ब्रह्म ही विश्व का अभिन्ननिमित्तोपादन कारण एक अद्वैत तत्त्व बन गया । ब्रह्म ही सत्य है, यह जगत् अनिर्वचनीया माया का कल्पनामात्र है । परन्तु शाक्त-दर्शन में 'अद्वैत' की कल्पना इससे विलक्षण है । सांख्य पुरुष का स्थान ले लिया 'शिव' ने तथा प्रकृति का 'शक्ति' ने । दोनों में अन्तर यह हुआ है कि पुरुष के बहुत्व के जगह शिव की एकत्व-कल्पना की गयी तथा जड़ात्मिका प्रकृति के स्थान चिद्रूपिणी शक्ति विराजने लगी । षड्दर्शनों में शक्ति जड़ात्मिका ही है । केवल शाक्त दर्शनों में वह चैतन्यमयी स्वीकृत की गयी है । ये शिव-शक्ति एक ही तत्त्व के द्विविध स्थित्यात्मक और क्रियात्मक रूप हैं । मूल परमार्थ तत्त्व शिव-शक्ति का सामरस्य है । स्थित्यात्मक भाव शिव है और क्रियात्मक भाव शक्ति । चैतन्य के दो भाव होते हैं—बहिर्मुख चैतन्य की ही संज्ञा 'शक्ति' तथा अन्तर्मुख चैतन्य का ही दूसरा नाम 'शिव' है । अन्तर्मुख चैतन्य की पूर्णावस्था में न तो कोई कर्ता है, न कोई विषय; परन्तु बहिर्मुखावस्था में विषय ('इदं'=यह, जगत्) स्फुटित होने लगता है, पहले आत्मा (अहं) के अंशरूप में और पीछे स्वतन्त्र रूप से । 'पर संवित्' में विद्यमान 'अहं' और 'इदं' के इस क्रमशः उन्मेष से ही विश्वप्रपञ्च का उदय होता है । परन्तु मूल तत्त्व तत्त्वातीत है, क्योंकि वह शिव-शक्ति की साम्यावस्था है । यही अद्वय तत्त्व है । इसी तत्त्व को भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते है । शिवशक्ति की सामरस्य मूर्ति को वैष्णवगण 'युगल', बौद्धगण 'युगनद्ध', वज्रयानी लोग 'प्रज्ञोपाय' तथा तान्त्रिक लोग 'यामल' कहते हैं । यह मूर्ति दो होते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n317/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भी अद्वय है, सम है, एक है। 'अद्वय' शब्द के द्वारा भी उसका यथार्थ परिचय नहीं दिया जा सकता। वह द्वैताद्वैत उभय कोटि से भिन्न, पृथक् तथा स्वतन्त्र है। 'कुलार्णव'तन्त्र' (१।११०) में शङ्कर का इस कथन का तात्पर्य यही है—

"अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥"

भारतीय दार्शनिकों ने वैदिक दर्शनों की कौन कहे, अवैदिक दर्शनों के भीतर छिपे हुए तत्त्व को भलीभाँति पहचान कर दोनों के बीच एक प्रकाण्ड समन्वय उपस्थित करने का महान् प्रयत्न किया है। जिस समन्वय-बुद्धि का संकेत निम्नलिखित पद्य में है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है—

"श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्तव्यः पुनरार्हतः।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः॥"

दार्शनिक तत्त्वों का यह पञ्चामृत किस सहृदय के आह्लाद का कारण न होगा?

---

(११) धर्म और दर्शन

अब तक भारत के प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों का तथा मान्य दर्शनों का थोड़ा परिचय ऊपर दिया गया है। इसके अध्ययन से धर्म और दर्शन की प्रवृत्ति का पता पाठकों को भली भाँति चल गया होगा। हमारे देश में धर्म तथा दर्शन में परस्पर सामञ्जस्य है। आर्यावर्त के प्राचीन तपोनिष्ठ महर्षियों ने इस विश्व की पहेली को समझाने के लिए जिन विचारों को जन्म दिया है वे हमारे दर्शन के सर्वस्व हैं। यह जगत् अनेक-रूपात्मक है—क्षण-क्षण में विलक्षण रूप धारण करने वाले पदार्थों का पुञ्ज है। इन पदार्थों के बाह्य, आपाततः विरोधी स्वरूपों के भीतर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Link: http://www.realpatidar.com/library
email: mail@realpatidar.com

https://archive.org/details/bk1332/page/n318/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1664

एक-समान-रूपता विद्यमान है। इसी अनेकता के भीतर एकता की उपलब्धि हमारे ऋषियों की महती देन है। जिस प्रकार परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड के भीतर एक अपरिवर्तनशील तत्त्व का सद्भाव है, उसी प्रकार इस पिण्ड के भीतर भी एक अपरिवर्तनशील तत्त्व की सत्ता विद्यमान है। ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता का नाम 'ब्रह्म' है और इस पिण्डाण्ड (शरीर) की नियामक सत्ता की संज्ञा 'आत्मा' है। ब्रह्म तथा आत्मा एक हैं। ब्रह्म तथा आत्मा की एकता सर्वतोभावेन माननीय है। ब्रह्म सामान्य दृष्टि से तो अलभ्य पदार्थ प्रतीत होता है, परन्तु प्रत्येक प्राणी अपने भीतर अन्तर्यामी आत्मा के रूप से उसी की सत्ता का अनुभव करता है। इसलिए ब्रह्म के साक्षात्कार करने का सब से बड़ा उपाय इसी आत्मा का साक्षात्कार है।

जगत् के समस्त पदार्थों में प्रियतम वस्तु यही 'आत्मा' है। किसी स्थान से प्रिय वस्तुओं की गणना आरम्भ की जाय, पर्यवसान आत्मा में ही होता है। इस विशाल वृत्तस्थानीय जगत् का केन्द्र यही आत्मा है। केन्द्र निश्चित है, परन्तु परिधि अनन्त, असीम है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसी आत्मा के साक्षात्कार को मोक्ष का स्वरूप बतलाया है। जगत् का कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है। आज की चीजें देखते कल नष्ट हो जाती हैं। यदि कोई टिकने वाला अनश्वर पदार्थ है, तो वह आत्मा ही है। इसी का साक्षात् अनुभव करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। इसके अनुभव के निमित्त पुत्रवत्सला माता की तरह भगवती श्रुति सुन्दर शब्दों में हमें शिक्षा देती है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन
मत्या विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति ॥
(बृहदारण्यक २।४।५)

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n319/mode/1up

1961 -Dharma Aur Darshan (1332)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा का श्रवण करो, मनन करो तथा ध्यान करो। आत्मा के विज्ञान से सब विज्ञात हो जाता है। आत्मतत्त्व का श्रवण श्रुति-वाक्यों के द्वारा करना चाहिए, मनन तार्किक युक्तियों से करना चाहिए तथा योगप्रतिपादित उपायों के द्वारा उसका निदिध्यासन करना चाहिए। ये ही तीनों आत्म-दर्शन के उपाय हैं—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयः, एते दर्शन-हेतवः॥

आत्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हमें उन्हीं ग्रन्थों से करना चाहिए जिनमें आत्मनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता पुरुषों के साक्षात् किये गये अनुभव का सङ्कलन है। ये ही हमारे परम माननीय वेद हैं। श्रवण से ही हमारे कर्त्तव्य की समाप्ति नहीं होती। मनन की भी आवश्यकता रहती है। युक्तियों के सहारे वेदविहित तथ्यों के स्वरूप को ठीक ढंग से समझना 'मनन' है। योग के मार्ग से उस निश्चित तत्त्व का लगातार चिन्तन करते रहना 'निदिध्यासन' है। इन उपायों से आत्माका दर्शन मिलता है।

धर्म का लक्षण महर्षि कणाद के शब्दों में है—यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति तथा पार-लौकिक कल्याण की सिद्धि हो वही धर्म है। धर्म संसार में उन्नति की काङ्क्षा रखता है, पर उसके पास मोक्ष की सिद्धि भी उसका लक्ष्य है। यदि वह एक ही पर ध्यान दे, तो उसका उद्देश्य कथमपि पूर्ण नहीं कहा जा सकेगा। पाश्चात्य देशों में धर्म दर्शन का बाधक रहा है, साधक नहीं। विरोधी रहा है, सहायक नहीं। इसीलिए तो वहाँ शुद्ध तर्क के द्वारा विवेचन करनेवाले अनेक विद्वानों को पादरी लोगों ने शूली पर चढ़ा उनके प्राण ले लिए। इसका कारण यह है कि ईसाई धर्म कतिपय अन्ध-विश्वासों को ही विशेष महत्त्व देता है। जहाँ कहीं किसी ने इन विश्वासों से विपरीत कहना शुरू किया, वहाँ धर्म अड़ जाता है। आध्यात्मिक तत्त्व के पारखियों को जीवन बिताना कठिन हो जाता है। परन्तु भारत-

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n320/mode/1up

realpatidar.com
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

realpatidar.com
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

https://archive.org/details/bk1332/page/n321/mode/1up

realpatidar.com Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

realpatidar.com

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.